RNI Number : MPHIN/2016/70609

ISSN NUMBER : 2455-9814

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 8, अंक : 30
जुलाई-सितम्बर 2023
मूल्य 50 रुपये

Dhingra Family Foundation
USA

शिवना प्रकाशन के सम्मानों की घोषणा

वर्ष 2021 तथा 22 के लिए

अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान

हरि भटनागर
'दो गज़ जमीन'
वर्ष 2021 हेतु
'अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान'

नीलेश रघुवंशी
'शहर से दस किलोमीटर'
वर्ष 2022 हेतु
'अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान'

वर्ष 2021 तथा 22 के लिए

शिवना कृति सम्मान

अवधेश प्रताप सिंह
'विधानमण्डल पद्धति एवं प्रकिया'
वर्ष 2022 हेतु
'शिवना कृति सम्मान'

ओमप्रकाश शर्मा
'नर्मदा के पथिक'
वर्ष 2021 हेतु
'शिवना कृति सम्मान'

आदित्य श्रीवास्तव
'वायरस से वैक्सीन तक'
वर्ष 2021 हेतु
'शिवना कृति सम्मान'

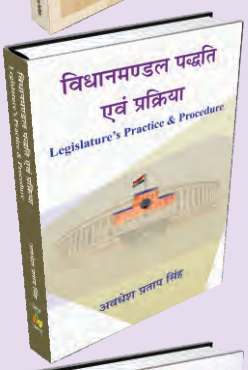

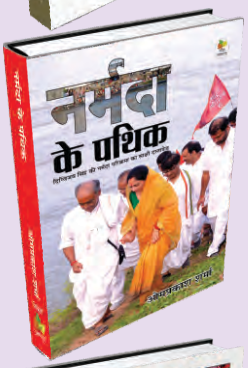

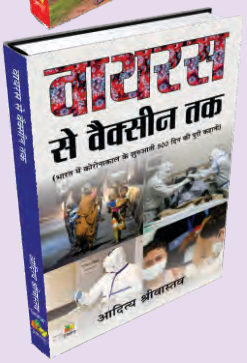

वर्ष 2021 के लिए 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान' शिवना प्रकाशन से प्रकाशित उपन्यास 'दो गज़ ज़मीन' के लिए हिन्दी के प्रतिष्ठित कथाकार हरि भटनागर को प्रदान किया जायेगा। वर्ष 2021 के लिए 'शिवना कृति सम्मान' दो पुस्तकों- यात्रा संस्मरण 'नर्मदा के पथिक' के लिए लेखक ओमप्रकाश शर्मा को तथा शोध रिपोर्ताज 'वायरस से वैक्सीन तक' युवा पत्रकार, लेखक आदित्य श्रीवास्तव को संयुक्त रूप से प्रदान किया जायेगा। वर्ष 2022 के लिए 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान' राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित उपन्यास 'शहर से दस किलोमीटर' के लिए हिन्दी की प्रतिष्ठित कवयित्री नीलेश रघुवंशी को प्रदान किया जायेगा। वर्ष 2022 के लिए 'शिवना कृति सम्मान' विधानसभा तथा लोकसभा की कार्यवाही को लेकर प्रकाशित महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'विधानमण्डल पद्धति एवं प्रकिया' के लिए मध्यप्रदेश विधानसभा के प्रमुख सचिव अवधेश प्रताप सिंह को प्रदान किया जायेगा।

शिवना प्रकाशन विभोम-स्वर SHIVNA CREATIONS Dhingra Family Foundation USA Dhingra Family Foundation India शिवना साहित्यिकी

संरक्षक एवं
प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह, सनी गोस्वामी
डिज़ायनिंग
सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 8, अंक : 30, त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2023
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

वर्षा-जल से भीगे इस पुष्प के कई नाम हैं- गुड़हल, जवाकुसुम, अड़हुल या जासौन। भिण्डी और कपास के मालवेसी कुल में शामिल पौधे का बॉटनिकल नाम 'हीबिस्कस रोज़ा साइनेंसिस' है।

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वर्ष : 8, अंक : 30,

जुलाई-सितम्बर 2023

संपादकीय 3

मित्रनामा 5

साक्षात्कार

कहानीकार-उपन्यासकार प्रज्ञा से

आकाश माथुर की बातचीत 10

विस्मृति के द्वार से

कहानी का सफ़र

नरेंद्र नागदेव 13

कथा कहानी

वह लड़की

नीलिमा शर्मा 17

टेडी बियर

डॉ. रंजना जायसवाल 21

अंतराल

रजनी गुप्त 25

प्रेम यात्रा

अश्विनीकुमार दुबे 32

मैग्नोलिया जैसी खिली

वीणा विज 'उदित' 38

रामोतार की फोटो

डॉ. जया आनंद 41

माँ का बक्सा

टीना रावल 45

हाजरा का बुर्क़ा ढीला है

डॉ. तबस्सुम जहाँ 47

शुभम की मुक्ति

दीपक गिरकर 49

भाषांतर

हाथों से झरती रेत

प्रवासी पंजाबी कहानी

मूल लेखक : रविंदर सिंह सोढी

अनुवाद : प्रो. नव संगीत सिंह 51

मेरी माँ वैश्या थीं

बांग्लादेश से

बांग्ला कहानी

मूल लेखक : मुजफ़्फ़र हुसैन

अनुवाद : नीलम शर्मा 'अंशु' 54

दगड़ू मामा

मराठी कहानी

मूल लेखक : उत्तम कांबले

अनुवाद : किशोर दिवसे 57

लघुकथा

आनंद आश्रम

अशोक वाधवाणी 24

हिस्सेदार

जिज्ञासा सिंह 31

अंजाम

मनमोहन चौरे 72

व्यंग्य

फूड इंस्पेक्टर की दावत

हनुमान मुक्त 66

ख़बर की ख़बर

रेखा शाह आरबी 67

संस्मरण

साइकिल ने बनाया राणा साँगा

गोविन्द सेन 61

कैसे -कैसे लोग

कादम्बरी मेहरा 68

रेखाचित्र

गंगा प्रसाद विमल

पूनम सिंह 63

ग़ज़ल

अशोक 'अंजुम' 73

कविताएँ

सुमन केशरी 74

अरुण सातले 75

सुशील स्वतंत्र 76

डॉ. शैलजा सक्सेना 77

सुनील गज्जाणी 78

मुकेश पोपली 79

आख़िरी पन्ना 88

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is "Zero")

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक (यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

यह दौर आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक निराशा और नैतिक मूल्यों के टूटने का है

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोरिंस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

पूरे विश्व में एक ऐसी मानसिकता पनप रही है, जो भविष्य में मानव हितों के लिए बेहद घातक हो सकती है। सरकार से असहमतियों पर विरोध प्रकट करना सदियों से चला रहा है। पर वर्तमान समय में विरोध विद्रोह का रूप ले रहे हैं, अपनी बात कहने और मनवाने के लिए धरने पर बैठने वाले लोग उग्र होकर आक्रमणकारी हो रहे हैं। हिंसा, आगजनी आम बात हो गई है। क्या सरकारी इमारतें, सरकारी बसें जलाना उनकी समस्या का हल है? कोई भी यह नहीं सोचता कि यह नुकसान सरकार का नहीं, उनका अपना है। उन्हीं से वसूल किये गए कर का है। पर भीड़ की मानसिकता सोचने-समझने से परे हो जाती है। पूरे विश्व में यही देखने को मिल रहा है।

अंग्रेज़ों से आज़ादी की लड़ाई में विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करते हुए उन्हें जलाया जाता था। पर आज़ादी के बाद अर्थ ही बदल गए। विरोध का मतलब तोड़फोड़, इमारतें, कारें और बसें जलाना हो गया। विदेशों में सरकार से असमतियों के प्रदर्शन होते थे, पर कभी तोड़फोड़ या आगज़नी नहीं होती थी। पर अब स्थितियाँ बदल गई हैं। मणिपुर का प्रदर्शन हिंसक रूप धारण कर गया तो पेरिस का विरोध उग्र होकर विध्वंसकारी हो गया। हिंसा के मामले में देश विदेश एक हो गए।

मैं पहले भी कई बार लिख चुकी हूँ कि सोशल मीडिया के बहुत से लाभ हैं, पर उसके दुष्परिणाम भी कम नहीं। विश्व में कहीं भी कोई दुर्घटना होती है तो सोशल मीडिया पर बैठे स्वार्थी और निजी हित साधती कुछ संस्थाएँ, ग्रुप, गुट और लोग उसी दुर्घटना को अपने हितों अनुसार रूप देकर बढ़ा-चढ़ाकर पेश करते हैं, लोगों को सोचने और सही कारणों तक पहुँचने का समय ही नहीं मिलता। इतना समय दिया ही नहीं जाता, जो सूचनाएँ वे लोगों तक पहुँचाना चाहते हैं, उनकी भरमार लगा दी जाती है। कई संस्थाओं, राजनीतिक गुटों और धार्मिक ग्रुपों का उद्देश्य ही लोगों में उत्तेजना, असंतोष फैला कर अपना फ़ायदा उठाना होता है। वह किसी भी दुर्घटना या घटना को इस तरह सोशल मीडिया पर परोसते हैं कि लोग प्रभावित हुए बिना नहीं

संपादकीय

रहते। कभी-कभी यह प्रभाव उनमें उत्तेजना पैदा कर देता है।

यह दौर आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक निराशा और नैतिक मूल्यों के टूटने का है। अवसाद से घिरा समय है, जो हरेक के भीतर पसर चुका है, दिखाई किसी को नहीं देता, समय-समय पर वह प्रदर्शन ज़रूर कर देता है। आत्महत्या करने की इच्छा, मानसिक विकार और रोग, युवा पीढ़ी में बहुत तेज़ी से बढ़ रहे हैं। इस मानसिकता के प्रति परिवारों को बहुत सजग और सतर्क रहने की आवश्यकता है। मानव मस्तिष्क की इन्हीं कमज़ोरियों का हिंसक प्रवृति के लोग फायदा उठा रहे हैं। व्यक्ति के भीतर कितनी कुंठा और निराशा है, जो छोटी-छोटी बात पर मरने-मारने को तैयार हो जाता है। अंदर का अवसाद ही उसे तोड़फोड़ और आगजनी का हिस्सा बना रहा है।

मनोविशेषज्ञ व्यक्ति में बढ़ रहे गुस्से, रोष और आक्रोश से भी चिंतित हैं। उन कारणों की पड़ताल कर रहे हैं, जो ऐसी मानसिकता की उत्पत्ति और विकास करते हैं। मेंटल हेल्थ एंड वैलनेस मैगज़ीन में विशेषज्ञों ने लोगों की सच्ची कहानियाँ देकर यह बताने की कोशिश की है कि, बाहरी कारणों के इतर पारिवारिक पृष्ठभूमि, माँ-बाप के आपसी संबंध, रिश्तेदारों से मेल मिलाप और मित्रों का चुनाव तथा जीवन में उनकी सहभागिता भी बहुत बड़ा कारक व घटक होते हैं।

छोटे-छोटे बच्चों के हाथों में माँ-बाप फ़ोन थमा देते हैं, वे कौन से संदेश देखते और पढ़ते हैं, माँ-बाप को पता भी नहीं चलता। बहुत से बच्चे कच्ची उम्र में सोशल मीडिया से जुड़े हुए हैं उनके भीतर किस तरह की सोच पैदा हो कर अपना आकार फैला रही है, कोई जान नहीं पाता, जब तक कोई काण्ड नहीं हो जाता।

हेल्दी लिविंग मैगज़ीन में कई विशेषज्ञों ने अपने जर्नल में लिखा है कि आर्थिक तंगी, पारिवारिक शोषण, माँ-बाप के झगड़ों से परेशान अधिकतर युवाओं ने अपना आक्रोश तोड़फोड़ और आगज़नी में निकाला है।

मनोवैज्ञानिक ऐसी मानसिकता को जिसका ज़िक्र मैंने शुरू में किया है, दिमाग़ और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारण मानते हैं। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक और सोशल मिडिया के अतिरिक्त वे अन्य कारणों को भी ढूँढ़ रहे हैं जो ऐसी मानसिकता को बढ़ावा दे रहे हैं। सोशल मीडिया ने जहाँ विश्व को एक कर दिया है वहीं यह भी पता चलता है कि किसी भी देश में घटी घटना और दुर्घटना का असर दूसरे देशों पर भी पड़ता है। असहमतियाँ हिंसात्मक न हों, इसकी रोकथाम के लिए सोचना भी आवश्यक है, इससे पहले कि देर हो जाए।

4 जुलाई को शिवना प्रकाशन के सम्मानों की घोषणा की गई। सभी सम्मानित लेखकों को विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की टीम की ओर से बहुत-बहुत बधाई!!!

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

पृथ्वी एक सह-आवास स्थल है, जिस पर केवल इंसानों का ही अधिकार नहीं है बल्कि सभी पशु-पक्षियों का भी है। यह सह-आवास तभी ख़ुशहाल होगा जब इंसान पृथ्वी पर मौजूद पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, सभी का ध्यान रखे और उसी प्रकार रखे जिस प्रकार घर का मुखिया पूरे परिवार का ध्यान रखता है।

मित्रनामा

अप्रैल-जून 2023 अंक में छपी सुधा जुगरान की कहानी 'मन न भये दस बीस' पर खंडवा में साहित्य संवाद तथा वीणा संवाद ने चर्चा की। इस चर्चा के संयोजक गोविन्द शर्मा तथा समन्वयक राजश्री शर्मा थे।

बिल्कुल सहज कहानी

सुधा जुगरान की यह कहानी आज के परिवेश की कहानी लगती है। जीवन में हर कार्य के समय पर सम्पन्न न होने से आए एक अधूरेपन की कहानी है। लेखिका ने एक जगह लिखा है -"एक स्त्री के लिए ज़िंदगी के तराजू में सन्तुलन क्यों नहीं रहता है।" नायिका अपने जीवन में मनचाहा मुकाम पा जाने के बाद भी जो छूट गया है उसे पकड़ना चाहती है, जहाँ एक ओर वह अपनी सखी का मज़ाक उड़ाते हुए कहती है -"बन जा तू लज्जा की नायिका...." और फ़िर ख़ुद ही लज्जा की नायिका बनना चाहती है। इसी ताने -बाने को लेखिका ने बड़े ही शानदार तरीके से कहानी में बुना है।

भाषा सरल, सहज और रोचकता लिए हुए, सखियों का वार्तालाप, बिल्कुल सहज, कहानी को रोचक बनाता हुआ। पाठक की उत्सुकता अन्त तक कहानी पढ़ने को विवश करती है यह लेखिका की सफलता है। बढ़िया कहानी के लिए सुधा जुगरान जी को बधाई। भाई गोविन्द शर्मा एवं राजश्री जी को पुन: धन्यवाद इतनी अच्छी कहानी के चयन के लिए।

-प्रतिमा आनन्द तिवारी
खण्डवा (म. प्र.)

000

बड़ी मोहक कहानी

प्रस्तुत कहानी बड़ी मोहक है, जहाँ मुख्य पात्र अरुषि, जो किन्ही परिस्थितियोंवश बड़ी उम्र तक विवाह न कर पाई है, उसे समाज के कैसे-कैसे लोगों को झेलना पड़ता है, यहाँ तक कि अधेड़ उम्र के पुरुषों की व्यर्थ की सलाह भी, जो कि उनके महिलाओं की सुडौल देहयष्टि के प्रति आकर्षण का ही एक हिस्सा है।

ऐसा नहीं है कि मुख्य पात्र के मन में नारी सुलभ लालसाएँ नहीं हैं पर लोगों के प्रति उसने जो छवि बना रखी है, उसे निभाने के लिए एक ही तरह के सादे, पश्चिमी कपड़े ही पहनने होते हैं।

यूँ ही कहानी आगे बढ़ती है फिर एक सुंदर मोड़ आता है, जहाँ अरुषि जिस पुरुष के प्रति आकर्षित हुई है, उसके तलाक की ख़बर उसके भीतर सोई स्त्री को जगा देती है और वह सखी की सलाह मान लड़कियों वाले कपड़ों के सेक्शन की ओर बढ़ जाती है।

सहेलियों की गप-शप, अरुषि के मन में तरंगित भावनाओं का वर्णन बड़ा सहज है। अंत पाठकों पर छोड़ दिया गया है। कहानी बड़ी सुंदर बन पड़ी है, जिसके लिए मैं इससे जुड़े सभी सदस्यों का अभिनंदन करती हूँ।

-साधना शर्मा, पुणे

000

अच्छी भाषा शैली

इस कहानी से दो बातें निकलकर आती हैं। एक तो यह कि कोई भी लड़की किसी परिस्थितवश या अकड़ू स्वभाव के चलते एक लंबी उम्र अविवाहित रहकर व्यतीत कर दे लेकिन उसके मन में पुरुष से मिलन की चाहत बनी रहती है।

आरुषि के भीतर 49-50 की उम्र में यह चाहत पार्क में टहलने जाने की दिनचर्या के मध्य सुंदर युवक शिशिर को देखकर जागती है। ऐसा नहीं कि इस उम्र तक आते-आते उसने किसी सुंदर कुँवारे युवक को देखा नहीं होगा। लेकिन वह कोई निर्णय नहीं कर पाई थी।

दूसरी बात जो पाठक के सामने आती है वह है समलैंगिक संबंधों की। यह एक नैसर्गिक सत्य है कि पुरुषों और महिलाओं में समलैंगिक संबंध में रुचि वाले लोग रहते हैं। विदेशों में इसके मानवीय पक्ष को ध्यान में रखकर प्रगतिशील सोच वाले देशों में कोर्ट द्वारा विवाह की अनुमति भी दी गई है। लेकिन हमारे यहाँ धार्मिक रूढ़िवादी सोच के चलते यह मामला फिलहाल अदालत के विचाराधीन है।

शिशिर के बारे में आरुषि की सहेली के द्वारा उससे विवाहित लड़की के लेस्बियन (महिला समलैंगिक) होने का प्रसंग सामने आता है और वह शिशिर पर गे पुरुष समलैंगिक होने का आरोप लगाकर तलाक ले लेती है जब कि शिशिर गे नहीं है। लेकिन इस बदनाम करने वाले जीवन प्रसंग के कारण उसे लड़कियों से घृणा हो जाती है तथा वह अकेले ही रहता है।

अपनी सहेली से शिशिर के बारे में सब कुछ जानने के बाद आरुषि उससे विवाह का मन बनाती है।

इस निर्णय को कहानीकार ने सांकेतिक ढंग से कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है जब आरुषि मॉल में लड़कियों वाले कपड़े खरीदने के लिए राज़ी होती है, वर्ना उसका इस उम्र तक का पहनावे के प्रति रुझान पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित पुरुषोचित कपड़ों के प्रति रहा है। और वह अगले संडे अपनी सहेली के साथ शिशिर के घर जाने का कार्यक्रम बनाती है।

कहानी की भाषा शैली अच्छी है। वर्णन रोचक है। कहानी में अनावश्यक विवरण नहीं डाले गए हैं।

एक पक्ष पाठक से अनजाना रहता है कि गे के रूप में बदनाम शिशिर जो लड़कियों से दूर रहता है वह आरुषि के प्रति आकर्षित है या नहीं। उसने विवाह के बारे में कोई निर्णय लिया या नहीं। कहानी में मात्र आरुषि को ही फोकस में रखा है। एक अच्छी कहानी के लिए सुधाजी को बधाइयाँ। संयोजक और समन्वयक को साधुवाद।

-कुँअर उदयसिंह अनुज

000

कहानी सामयिक है

सुधा जुगरान की कहानी सामयिक है। आज जब समलैंगिकता पर पूरे राष्ट्र में बहस चल रही है, वहाँ यह कहानी सच की पड़ताल का आग्रह करती है। आरुषि और शिशिर की यह कथा समाज में एक और बुराई को सामने लाती है। झूठ, फरेब कहीं कारगर नहीं होते। रूमा से शिशिर की हक़ीक़त जान आरुषि का आकर्षण उसके प्रति और बढ़ जाता है। कहानी का देशकाल, संवाद, शिल्प भाषा

रोचक है। उद्देश्यपरक कहानी प्रस्तुत करने के लिए संयोजक और समन्वयक दोनों का आभार।

-सुधीर देशपांडे

000

लुभावनी कहानी

एक ही साँस में पूरी पढ़ जाने वाली लुभावनी कहानी है और एक नए विषय को लेकर लिखी गई है। चिर अविवाहित आरुषि के मन को लिफ्ट में रोज़ मिलने वाला विभोर ज़रा भी भाव विभोर नहीं कर पाया।

उसकी अपवित्र नज़रें आरुषि के मन में कोफ़्त पैदा करती थीं।

विभोर के सन्मुख आने को टालने के प्रयास वह रोज़ करती और उसी दौरान अपनी पुरानी सखी से बात करती है जो कि इस बात को उजागर करती है कि आरुषि के दिल में भी किसी के प्रेम का अंकुर पल रहा होगा।

आरुषि के अब तक विवाह न करने की एक वजह अपने कॅरियर के प्रति अति सजगता भी बन गई थी शायद, यह बात सहेली से बात करते सामने आती है। लेखिका ने एक विशेष बात की ओर ध्यान आकर्षित करवाने का प्रयास किया है कि जाह्नवी अच्छे स्वभाव की धनी होने की वजह से किस्मत की भी धनी थी तथा तत्काल बात को पढ़ाई की महत्ता की ओर ले जाकर विराम दे दिया। ऑफ़िसर आरुषि भी स्त्री सुलभ भावनाओं में सरोबार तो थी, बस उसका रुतबे वाला पद उसको प्रेम में पहल करने के आड़े आ जाता यह पशोपेश आरुषि के मन में चलता रहता।

घूमने जाने के मार्ग पर नित्य दिखाई देने वाले अजनबी ने उसके रिक्त मन में कब जगह बना ली इस बात का पता तब चला जब उसका मार्ग पर मिलना बंद हो गया। आरुषि बेचैन होने के साथ चिंतित भी हो चली थी।

उसके मन की शिद्दत ने आख़िरकार अनजान साथी से ऑफ़िस में साथ काम करने वाली सहेली के ज़रिये एक मॉल में मिलवा दिया। शिशिर नाम था अजनबी का, जो कि ऑफ़िस मित्र रूमा का परिचित था।

रूमा और आरुषि ने मूवी देखने जाने का प्लान किया, फ़िल्म देखने के बाद खाना खाया और कपड़े खरीदने के लिए रूमा आरुषि से सिम्पल कपड़ों की जगह सूट दिलाने के लिए सूट सेक्शन की तरफ बढ़ने लगी तब शिशिर का सामने आना, रूमा द्वारा उसकी अतीत की कहानी मालूम होना और शिशिर के तलाक की वजह एक चौंकाने वाली बात का सामने आना, शिशिर का डिप्रेशन में जाना, सब रहस्य एक के बाद एक खुलते जाते हैं।

रूमा ने आरुषि से पूछा कि तुम कैसे जानती हो शिशिर को तब वह घूमने जानी वाली बात बताती है और फिर अचानक से ग़ायब हो जाने से परेशान हो जाने वाली बात भी बताते समय यह बात रूमा कहती है-

"तुमने उसको ज़्यादा ध्यान से तो नहीं देख लिया, शिशिर को तलाक की वजह से जो तकलीफ़ सहन करना पड़ी उससे वह औरतों से नफ़रत करने लगा है।" शिशिर की शादी माता-पिता ने तय करवाई थी इसलिए वह उसको निभाने के प्रयासरत रहने के साथ अपने सिर पर निराधार लगे इल्ज़ाम भी सहन करता रहा।

पत्नी द्वारा गे होने के बेबुनियाद इल्ज़ाम और तलाक की बदनामी की वजह से डिप्रेशन को तोड़कर बड़ी मुश्किल से बाहर निकले शिशिर ने आरुषि के प्रेम को महसूस कर लिया। यह बात आरुषि भी समझ गई और आकर्षक लगने के लिए सूट सेक्शन की तरफ जाने का निर्णय ले लिया।

यहाँ मैंने भी पढ़ते-पढ़ते मन बना लिया कि अब शिशिर आरुषि का सुखद मिलन ही कहानी का अंत होगा।

-दामिनी पगारे

000

बहुत ही सशक्त कहानी

लेखिका ने स्त्री विमर्श की बड़ी ही सशक्त कहानी लिखी है जिसे पढ़ने के बाद एक बात समझ आती है कि चाहे स्त्री किसी भी वय में हो उस पर अपवित्र निगाहें रखने वाले पुरुष हर जगह मिल ही जाते हैं। जबकि इस कहानी की नायिका आरुषि तो अविवाहित है और प्रतिदिन अपने पड़ोसी विभोर की निगाहों से बचने के बहाने ढूँढ़ती रहती है।

और तब वह अपनी बचपन की सहेली जाह्नवी को फ़ोन करती है जिसने कॅरियर को एक तरफ रखकर लज्जा नायिका बनना स्वीकार किया। उसका अफ़सर बन जाना और कड़क स्वभाव उसे स्त्रियोचित सरलता से परे करता है और वह विवाह से वंचित रह जाती है, लेकिन चाहत तो कहीं न कहीं दबी हुई है। वह सुबह की सैर पर जाते हुए एक अजनबी के प्रति आकर्षण महसूस करने लगती है, किन्तु इसके बारे में किसी को बता नहीं पाती। उसके बारे में बात करना ही चाहती थी कि उसे उसकी सहकर्मी रूमा का फ़ोन आता है दोनों शॉपिंग और मूवी देखने के बहाने मॉल में मिलतीं हैं।

रूमा आरुषि को उसके वैस्टर्न पहनावे के लिए टोकती हुई भारतीय गणवेश की दुकान पर ले जाने को होती है तभी आरुषि को उसका सुबह की सैर वाला बंदा शिशिर मिल जाता है, जो रूमा का विशेष पहचान वाला निकल जाता है। तब उसके और परिवार के बारे में जानकर आरुषि को ज्ञात होता है कि उसकी लेस्बियन पत्नी ने उस पर गे होने का आरोप लगा कर तलाक ले लिया था। इस बात से आरुषि मन में एक संकल्प लेती है और भारतीय गणवेश की दुकान की ओर बढ़ जाती है। साथ ही वह रूमा से शिशिर के घर चलने को भी कहती है।

लेखिका को साधुवाद जो उन्होंने दो ऐसे विषयों को उठाया जिस पर बात तक करना लोग पसंद नहीं करते। साथ ही उन्होंने एक प्रकार से पुरुषों की विवशता को भी दर्शाया है कि बेकसूर होते हुए भी वे ऐसी सज़ा सहते हैं जो उन्होंने कभी की ही नहीं होती है। डिप्रेशन से उभरते हुए नायक के मनोभावों को भी लेखिका ने बड़ी कुशलता से उकेरा है

बहुत ही सशक्त कहानी के लिये सुधा जी को सादर नमन। राजश्री जी एवं गोविंद जी को हार्दिक धन्यवाद जो उन्होंने इतनी सशक्त कहानी पढ़ने के लिए उपलब्ध करवाई।

-मनीषा अग्रवाल 'रक्स'

इंदौर मध्यप्रदेश

000

भाषा शैली पात्रों के अनुकूल

प्रस्तुत कहानी मन न भये दस बीस में कहानीकार ने अलग-अलग चरित्र पर प्रकाश डाला है। विभोर जैसे अधेड़ उम्र के पुरुष जो अपनी पत्नी में कमियाँ ही देखते हैं वहीं दूसरी स्त्रियों में ख़ूबियाँ देखते हैं उनसे बातचीत करने दोस्ती बढ़ाने के बहाने ढूँढ़ते हुए समाज में मिल जाते हैं। वहीं आरुषि कहानी की नायिका विवाह को बंधन समझ आज़ाद रहना पसंद करती है, उसे अपनी सहेलियों की तरह चूल्हे चौके में बँधने की अपेक्षा अपने कैरियर में आगे बढ़ना ज़्यादा पसंद है।

किन्तु कहानी के द्वारा लेखिका ने बताया है कि स्त्री कितना भी आगे बढ़ जाए स्वतंत्र विचार रखे, एक पड़ाव ऐसा आता है जब उसे ऊँचा पद, प्रतिष्ठा, धन बेमानी लगने लगता है उसे एक सहयात्री की ज़रूरत लगने लगती है। वह महसूस करती है एक ऐसा साथी मिले जो सिर्फ और सिर्फ उसका हो। अकेलेपन से ऊब होने लगती है।

जीवन की गाड़ी चलाने को एक साथी की आवश्यकता होने लगती है। और उसे रोज़ सुबह घूमने जाते समय एक अजनबी को देख कर जीवन की यह लालसा बढ़ने लगती है। उसका दो रोज़ दिखाई नहीं देना उसकी व्याकुलता बढ़ा देता है पाठक समझ जाते हैं स्त्री सुलभ भावनाओं का विस्तार हो चुका है।

वहीं शिशिर जो माता-पिता का संस्कारी बेटा अपने परिवार की बदनामी न हो इसकी वजह से पत्नी के द्वारा लगाए गए झूठे आरोप सहता है और तलाक के बाद डिप्रेशन में चला जाता हैं, जहाँ से धीरे-धीरे माँ बहन के प्रयासों से बाहर निकल कर आता है। लेखिका ने यह बताने की कोशिश की है कि पुरुष भी सहन करता है अपने परिवार के ख़ातिर चुप रहता है। झूठे आरोपों से स्त्री मात्र से नफ़रत करने लगता है। सब कुल मिलाकर कहानी बहुत अच्छी है, आगे क्या होगा पढ़ने की उत्सुकता बढ़ती जाती है। स्त्री-पुरुष के अलग-अलग चरित्रों का वर्णन किया है। भाषा शैली पात्रों के अनुकूल है।

कहानीकार आदरणीय सुधा जुगरान को बहुत-बहुत बधाई। इतनी अच्छी कहानी हम पाठकों तक पहुँचाने के लिए समन्वयक आदरणीय राजश्री शर्मा को एवं संयोजक गोविंद शर्मा का बहुत-बहुत आभार तथा धन्यवाद।

-मन्जुला शर्मा
सेंधवा

000

सुंदर, सटीक कहानी

मन न भये दस बीस स्त्री मनोदशा पर सुंदर, सटीक कहानी है।

कहानीकार सुधा जुगरान जी ने कहानी के माध्यम से नारी के भावों को सरलता से उकेरा है। स्त्री विमर्श पर एक सशक्त कहानी है।

कितनी भी नारी सक्षम रहे लेकिन अकेलापन उसे कहीं न कहीं खलता है। कहानी की नायिका आरुषि की मानसिकता इसका परिचय देती है। एक अविवाहित स्त्री को पग-पग पर समाज का सामना करना पड़ता है। इस कहानी में लेखिका के द्वारा इसे बहुत सुंदर तरीके से दिखाया गया है।

प्रवाहमय मोहक कहानी ने स्त्री-पुरुष दोनों की ही छुपी भावनाओं को दर्शाया है। साधुवाद की पात्र हैं लेखिका। नारी सुलभ भावों की सहज सुलभ प्रस्तुति है। भाव प्रधान कहानी है। लेखिका सुधा जुगरान जी, संयोजक गोविंद शर्मा, समन्वयक राजश्री शर्मा का सादर आभार।

-सुषमा शर्मा, इन्दौर

000

सहज भाव से लिखी कहानी

बहुत ही सहज भाव से लिखी कहानी लगती है। कहीं भी कुछ अतिरिक्त प्रयास लगाए नहीं लगते। इसीलिए यह हमारे आसपास की कहानी लगती है जो पाठकों को स्वयं अपनी ओर खींचती है।

प्रौढ़ होते पुरुष विभोर का आरुषि जैसी यानी सिंगल महिला में अपना स्कोप तलाशना फिर चाहे वह सिर्फ बातें ही करने के लिए क्यों न हो लेखिका ने बातों ही बातों में इस बात का ज़िक्र किया है। एक बात यहाँ ध्यान देने योग्य हैं कि ऐसे पुरुष अपनी पत्नी को कमतर बताने का हथकंडा इस्तेमाल करते हैं। यानी अपनी कलम से बड़ी ही चतुराई से यह बात कह दी।

यहाँ ज़रूर एक महिला चरित्र है जो अकेला है परंतु पुरुष भी हो तो भी एक साथ की ज़रूरत कहीं न कहीं महसूस होना स्वाभाविक है।

एक लड़की जो बंधन रहित जीवन चाहती है वह भी कहीं न कहीं कुछ कमी महसूस करने लगती है। शिशिर एक ऐसे विवाह को झेलता है जो उसके लिए अभिशाप बन जाता है। लेस्बियन पत्नी ख़ुद के बचाव के लिए उसपर गे होने का आरोप लगाती है हालाँकि यह आरोप यूँ ही नहीं लगाया जा सकता। ख़ैर ...हमारी नायिका को जैसे नायक की ज़रूरत थी बिल्कुल वैसे ही नायक शिशिर को जिस तरह गढ़ा गया निश्चित ही इस बात को बताता है कि कोई भी दुर्घटना को भूल कर आगे बढ़ना ही जीवन है, हम अपने साथ हुई घटना का सामान्यीकरण नहीं कर सकते।

एक सुखद राह की ओर इशारा करते हुए मुकम्मल होती इस कहानी के सहज लेखन शैली हेतु लेखिका को साधुवाद। समन्वयक राजश्री शर्मा एवं संयोजक गोविंद शर्मा का आत्मीय आभार।

- रश्मि स्थापक

000

सच सामने लाने वाली कहानी

कहानी मन न भए दस बीस आधुनिक समाज में पनपती सोच को पाठकों के सामने लाने वाली कहानी है। अच्छा पद, वेतन के चक्कर में शादी की उम्र बढ़ती जा रही है। लड़की को तो पद और शादी में से एक को चुनना पड़ता है। एक लड़की के मन में छिपे प्यार, कोमल भावना को बड़े सुन्दर तरीके से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। शादी टूटना वह भी ग़लत आरोप के साथ पुरुषों को भी अंदर से तोड़ देता है। कुँवारी लड़की को चाहे उसकी उम्र चालीस पार हो देखने का पुरुषों का नज़रिया कितना अलग होता है विभोर के माध्यम से बताया गया है।

सुन्दर कहानी के लिए लेखिका, समन्वयक, संयोजक महोदय का बहुत-बहुत धन्यवाद, आभार।

- संध्या पारे

000

हर महिला की कहानी

सुधा जुगरान जी द्वारा लिखित 'मन न भए दस बीस' कहानी में लेखिका ने कार्यकारी महिला और पढ़ी-लिखी घरेलू महिला के जीवन को एक बहुत ही सुंदर तुलनात्मक दृष्टिकोण के साथ एक सामान्य महिला के जीवन की अनेक विसंगतियों को अपनी कलम से उकेरा है। जिसके चलते यह कहानी हर महिला की कहानी प्रतीत होती है। कहानी में जिस तरह से आपने ज्वलंत विषय लेस्बियन को उठाया है, वह भी कहानी के साथ चलते हुए लेखक द्वारा एक पंथ दो काज जैसी भावना के साथ समाज को संदेश देती हुई प्रतीत होती है। कहीं कहीं विवरण थोड़ा दीर्घ प्रतीत हुआ। मगर कहानी पूरी तरह से बँधी हुई है। कहानी के पात्र जीवंत प्रतीत हो रहे हैं। लेखिका को बहुत बहुत बधाइयाँ

-संजय आरजू "बड़ौतवी"

000

विचारपूर्ण कहानी

सुधा जी की कहानी मन न भये दस बीस का शीर्षक ही इतना उम्दा है कि कहानी की मुख्य पात्र के इर्द गिर्द ही बुना हुआ प्रतीत होता है। आरुषि का विशिष्ट चरित्र कहानी का मुख्य आकर्षण है और निरंतर जिज्ञासा में बाँधे रखता है। विभोर जैसे पुरुष सिर्फ अपनी पत्नी में कमियाँ देखते हैं, दूसरी स्त्रियों में ख़ूब दिलचस्पी लेते हैं।

आरुषि विवाह बंधन से परे आज़ाद रहना पसंद करती है, उसे आम घरेलू महिला होना गवारा नहीं है, वह आज़ाद ख़यालों वाली कामकाजी महिला है। स्वतंत्र और उन्मुक्त जीवन शैली अपनाए हुए है। किन्तु कहानी कुछ इस तरह मोड़ लेती है की प्रतिष्ठा, पद, धन, सब नायिका को बेमानी लगने लगता है उसे एक दोस्त, एक हमसफ़र की ज़रूरत लगने लगती है। वह गंभीरता से सोचती है, जीवन साथी के बिना वह स्वयं को अधूरा पाती है। एक अजनबी के साथ वह ज़िंदगी को नए दृष्टिकोण से देखने लगती है।

नायिका की स्त्री सुलभ भावनाओं का चित्रण बख़ूबी किया गया है।

वहीं शिशिर जो एक संस्कारी परिवार का बेटा है अपने परिवार की बदनामी के डर से पत्नी द्वारा लगाए गए झूठे आरोपों के कारण तलाक के पश्चात डिप्रेशन में है, जहाँ से धीरे -धीरे अपनी माँ और बहनों के प्रयास से ठीक हो जाता है। कहानीकार ने एक पुरुष के इस त्रास का जीवंत चित्रण किया है। समाज में स्त्री-पुरुषों के संबंध से परे अन्य संबंधों को जिसे समाज द्वारा मान्य नहीं किया जाता, उस विषय पर कलम चलाकर अपनी प्रभावी लेखन क्षमता का परिचय दिया है। निरंतरता कहानी को विशेष बनाती है। कहानी का अंत पाठकों पर छोड़ा है और सभी इसका सुखद अंत ही देख पा रहे हैं। भाषा शैली पात्रों एवं चरित्रों के अनुकूल हैं। मस्तिष्क को विस्तृत विचारों से परिपूर्ण करती इस कहानी हेतु रचनाकार सुधा जुगरान को हार्दिक बधाई एवं अनंत शुभकामनाएँ। इतनी अच्छी कहानी इस पटल पर रखने के लिए समन्वयक आदरणीय राजश्री शर्मा को एवं संयोजक आदरणीय गोविंद शर्मा का बहुत बहुत आभार धन्यवाद।

-कल्पना दुबे

खण्डवा मध्यप्रदेश

000

बहुत ही रोचक कहानी

मन न भये दस बीस, सामान्य विषयों से अछूती नए ज्वलंत विषयों पर आधारित एक बहुत ही रोचक कहानी है। कहानीकार सुधा जुगरान ने नायिका की जीवनशैली से एक ओर नारी स्वावलम्बन के निर्णय द्वारा उसके सामाजिक दायित्वों से दुराव को दर्शाया तो वहीं दूसरी ओर पुरुष वर्ग के दोहरे चरित्र को भी बहुत ही रुचिकर शैली दमें बतलाया है। विभोर की ललचाई दृष्टि से पीड़ा तो दूसरी ओर शिशिर के संकोची स्वभाव का सच, आरुषि के निर्णयों में बदलाव को प्रतिपादित करता है।

अंतत: महिला सहकर्मी मित्र से सच्चाई जान अपने निर्णय में बदलाव स्वरूप देशी पहनावे की बात रख लेखिका ने बहुत ही बिम्बात्मक तरीके से कहानी को पूर्णता प्रदान की है।

-अनुराधा सुनील पारे

000

भावपूर्ण कहानी

आरुषि के मन की भावनाओं को बड़े ही सहज रूप में लेखिका जी ने उकेरा है।

उम्र तो गिनती है, परन्तु हदय में प्रेम- भाव हमेशा विद्यमान रहते हैं। पचास साल उम्र के बाद भी आरुषि अर्थात् नायिका का किसी का प्यार पाने को आज भी मन तरसता है इसे बहुत ही प्रवाह पूर्ण भाषा शैली में कथा के माध्यम से उतारा गया है।

अस्वीकृत भाव भी कब स्वीकृति में बदल गए उसको रंगमंचीय मंचन के दृश्य सा सुंदर प्रस्तुत किया है, इसलिए सुधा जुगरान प्रशंसा की पात्र हैं कहना उचित होगा।

बड़े ही सहजता से एक ही बात कह "मुझे कलरफुल सूट्स चलेंगे" कहानी का प्रभावित करने वाला मोड़ है। सुंदर सुखांत कथानक है। भावपूर्ण कहानी के लिए सुधा जुगरान जी को धन्यवाद।

-सुनीता परसाई

000

सुंदर कहानी

सामान्य कहानियों से अलग मन भये न दस बीस में सुधा जुगरान ने समाज के उस परिदृश्य को जीवंत कर दिया है, जो अक्सर आसपास घटित होता है पर उस ओर ध्यान हर किसी का नहीं जाता। जैसे किसी पुरुष के चरित्र से किसी आरुषि जैसी महिला का परेशान होना, पर कह ना पाना।

अच्छा ख़ासा काम, रुतबा और स्वास्थ्य होने के बाद भी एक समय के पश्चात् यह खालीपन आरुषि को खलने लगता है, कोई हाथ थाम ले, यह इच्छा बार-बार सिर उठाने लगती है, ऐसे में किसी अजनबी की तरफ कब झुकाव हो जाता है उसे पता ही नहीं चलता।

आरुषि के अफ़सरी रुतबे के कारण उसे कोई हमसफ़र नहीं मिल पाना इस ओर इशारा करता है कि आज भी समाज में ऐसे पुरुष बहुत कम है, जो स्त्री को अपने से ऊँचे पद पर देख सके। शिशिर का पात्र हमें बता रहा है कि हमेशा महिलाएँ ही धोखे का शिकार नहीं होती, पुरुष भी होते हैं।

आरुषि का वस्त्र चयन में बदलाव धीरे से

उसके हृदय में आए बदलाव को बता रहा है।

विभिन्न पहलुओं को समेटते हुए, इतनी सुंदर कहानी लिखने के लिए सुधा जुगरान को बहुत बहुत बधाई। और इसे हम तक पहुँचाने के लिए राजश्री शर्मा को, एवं गोविंद शर्मा को हार्दिक आभार।

-सविता खण्डेलवाल

झालरापाटन

000

बहुत ही प्रभावशाली कहानी

'मन न भये दस बीस' सामान्य रूप से लिये जाने विषयों से अलग, समसामयिक दृष्टिकोण से लिखी गई है।

नायिका के अपने जीवन में एक लक्ष्य निर्धारित करना और उसे एक अच्छी नौकरी के रूप में पूर्ण करने के बाद, बढ़ती उम्र में एक साथी की आकांक्षा मन में कहीं गहरे दबी हुई है लेकिन पुरुष प्रधान समाज में स्त्री का अपने आत्म-सम्मान के साथ जीना इतना भी सरल नहीं है। अकेली स्त्रियों के प्रति समाज का दोगला स्वभाव यत्र-तत्र प्रकट होता ही रहता है। इसे विभोर नामक पात्र को प्रतीक बनाकर और महिलाओं को उनसे उपजी असहजता को बहुत प्रभावी रूप से चित्रित किया गया है।

समाज में कानूनों, और मान्यताओं का दुरुपयोग किस प्रकार किया जाता है और पीड़ित को न्याय मिले इसकी अपेक्षा, षड्यंत्रकारी को मिली जीत, यह दिखाता है कि ऐसी अव्यवस्था का शिकार समाज में कोई भी हो सकता है चाहे वह स्त्री हो या पुरुष।

गहन बिम्बों एवं प्रतीकों के माध्यम से कहानी बहुत ही प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत हुई है। आदरणीया सुधा जी को बहुत बहुत बधाई। वीणा संवाद प्रकल्प, साहित्य संवाद खंडवा का हार्दिक आभार।

- गरिमा चवरे

000

मनोवैज्ञानिक कहानी

यह कहानी मनोवैज्ञानिक है। समय हमारे जीवन में सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। समय निकलने के बाद केवल महत्त्वाकांक्षा शेष रह जाती है जो रह रह कर एक कसक देती है। आरुषि कहानी की नायिका ख़ूबसूरत है, पढ़ लिखकर अधिकारी तो बन गई लेकिन विवाह जैसे महत्त्वपूर्ण निर्णय में पीछे रह गई। आख़िर उसे अपनी मंज़िल तो मिली लेकिन काफी देर से। वह भी मित्र के माध्यम से संयोग से। इसलिए कहानी का संदेश है कि समय पर हमें अपने जीवन के निर्णायक मोड़ों पर निर्णय लेने चाहिए। कहानी रोचक है। कहानी में प्रवाह है। कहानी का शिल्प बेहतर है। एक अच्छी और सामयिक कहानी के लिए सुधाजी को ख़ूब बधाई। संयोजक एवं समन्वयक को सुंदर कहानी के लिए साधुवाद।

-श्याम सुंदर तिवारी

खण्डवा

000

सन्तुलित कहानी

वीणा संवाद में प्रस्तुत कहानी आधुनिक विचार और पाश्चात्य सभ्यता पर आधारित है। यद्यपि कहानी दो सखियों की आपसी बातचीत पर आधारित है और इन्हीं बातचीत से नए रास्ते खुलते हैं और लगभग पचास वर्ष की नायिका के कुछ अधूरे स्वप्न पूर्ण होते दिखायी देते हैं। जैसा कि कहानी का शीर्षक भी है- "मन न भये दस बीस।" मन तो एक ही होता है।

बहरहाल, कहानी अंत में नायिका को अपने प्रति सकारात्मक बनाती है जब वह कुछ नए रंगीन कपड़े पहनने को खरीदने लगती है। यह वैचारिक बदलाव और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण किसी के अपने जीवन में आने से होता है।

गे और लेस्बियन, जिस पर वर्षों से वाद-विवाद रहा है। कहानी में यह भी शिक्षा दी गई है कि यदि कोई इनमें से एक हैं तो अन्य किसी का जीवन क्यों ख़राब करते हो?

कहानी सन्तुलित है, न अधिक बड़ी और न छोटी। पाठकों को अन्त तक बाँधकर रखती है। अविवाहित अधेड़ों के अकेलेपन और समाज की एक समस्या का हल भी इस कहानी में है।

-वैभव कोठारी

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

साक्षात्कार

लेखन शौकिया नहीं सरोकारों से जुड़ा होता है

कहानीकार-उपन्यासकार प्रज्ञा से आकाश माथुर की बातचीत

प्रज्ञा

एच 103, सेकेंड फ़्लोर, साउथ सिटी 2,
सेक्टर 50, गुरुग्राम, हरियाणा 122018

मोबाइल- 9811585399

ईमेल- pragya3k@gmail.com

प्रकाशित किताबें - कहानी संग्रह- रज्जो मिस्त्री, तक़्सीम, मन्नत टेलर्स, कथा-सप्तक। उपन्यास- गूदड़ बस्ती, धर्मपुर लॉज। नाट्यालोचना से संबंधित किताबें- नुक्कड़ नाटक : रचना और प्रस्तुति, जनता के बीच जनता की बात, नाटक से संवाद, नाटक : पाठ और मंचन, कथा एक अंक की। बाल-साहित्य- तारा की अलवर यात्रा। सामाजिक सरोकारों पर आधारित- 'आईने के सामने'। सम्प्रति- दिल्ली विवि के किरोड़ीमल कॉलेज के हिंदी विभाग में प्रोफ़ेसर।

आकाश माथुर

152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, सीहोर,
मप्र 466001,

मोबाइल- 9200004206

ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

आकाश : आपकी लंबी लेखन यात्रा पहले नाट्यालोचना से शुरू हुई फिर कहानी-उपन्यास तक आई। सबसे पहले इस सफ़र के बारे में आपसे जानना चाहेंगे, यह नया मोड़ कैसे आया?

प्रज्ञा : आकाश! मेरे नियमित लेखन की यात्रा अब ढाई दशक की हो चली है। छात्र जीवन को इसमें नहीं जोड़ रही हूँ तब तो कविताएँ लिखा करती थी। अक्सर लेखन की शुरूआत कविताओं से होती है, मेरी भी हुई। नाटकों से बचपन से ही जुड़ाव रहा। स्कूल-कॉलेज में नाटकों में हिस्सेदारी की। अभिनय किया। दिल्ली की नुक्कड़ नाटक संस्था निशांत नाट्य मंच के साथ बचपन में कुछ नाटकों में अभिनय किया। नाटक देखने में आरंभ से ही बड़ी दिलचस्पी रही। विवि के अनेक कॉलेजों में, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, श्रीराम सेंटर, मंडी हाउस, कमानी ऑडिटोरियम से लेकर पटेल चौक, कैंपस जहाँ नुक्कड़ नाटक होते देखने पहुँच जाती। धीरे-धीरे यह शौक गहरी अभिरुचि में बदल गया। पीएॅच.डी का समय आया तो मैंने 'हिंदी के नुक्कड़ नाटकों में जनवादी चेतना' विषय पर शोध करने का निर्णय लिया। इस लंबे शोध के बाद अगला पड़ाव था जब पहली किताब राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से प्रकाशित हुई-'नुक्कड़ नाटक : रचना और प्रस्तुति'। मुझे याद है रानावि के निदेशक का बड़ा आलीशान-सा कमरा था जिसमें किताब को लेकर उस समय के निदेशक प्रो.देवेंद्रराज अंकुर जी ने मुझसे पहला संवाद किया। इससे पूर्व पांडुलिपि का रिव्यू एक कमेटी कर चुकी थी। सन् 2006 के पुस्तक मेले में राजकमल प्रकाशन के स्टाल से इस किताब का विमोचन वरिष्ठ आलोचक नामवर सिंह जी ने किया। उसके बाद नाट्यालोचना के क्षेत्र में मैंने कभी विराम नहीं लिया। इस वर्ष भी आलोचना संबंधी मेरी पाँचवीं किताब 'हिंदी नाटक : स्त्री संदर्भ' प्रकाशित हुई है। साथ ही लेखन की दुनिया में कदम रखने के साथ अख़बार और पत्रिकाओं के लिए कथा-समीक्षा-आलोचना संबंधी काम भी किया और वह भी धीरे-धीरे परवान चढ़ता गया। उसने आलोचना की भाषा और उसके औज़ारों को पैना किया।

आप जिस नए मोड़ की बात कर रहे हैं वह मेरे लिए बहुत नया तो नहीं था। कहानियों के घर में मेरा जन्म हुआ था। बचपन से ही कहानियों के प्रति दीवानगी थी। कहानी सुनने और पढ़ने दोनों में। रूसी, चीनी, जापानी लोककथाएँ, प्रेमचंद की मानसरोवर, तोल्सतॉय की बच्चों के लिए लिखी कहानियों ने कभी चैन नहीं लेने दिया। वो मेरी कल्पना की दुनिया में अनेक रंग भरतीं। मेरा मानना है जीवन में ये मोड़ अचानक नहीं आ जाते, इनकी एक सतत प्रक्रिया नेपथ्य में कहीं ज़रूर चल रही होती है। मैं नाट्यालोचना और सामाजिक मुद्दों पर लेखन में सक्रिय थी साथ ही जनसत्ता का 'दुनिया मेरे आगे' कॉलम दस साल तक लिखा, नई दुनिया के लिए भी ऐसा ही एक कॉलम लिखा जिसे कहानीपन के कारण ही बहुत लोगों ने पसंद किया। मेरा मानना है लेखन भी जीवन की ही तरह है वहाँ विविधता आपको पुनर्नवा करती चलती है। यही मेरे साथ भी हुआ। कहानी लेखन का पहला विधिवत् प्रयास यदि कहूँ तो 2008 में प्रकाशित मेरी किताब 'तारा की अलवर यात्रा' से मान सकते हैं जब अलवर पर किए अपने शोध को बच्चों के लिए कहानी की शक्ल में उतारा। बाद में इस किताब को सूचना प्रसारण मंत्रालय की ओर से भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रथम पुरस्कार भी मिला। पहली कहानी 'मुखौटे' 'परिकथा' पत्रिका के जनवरी 2013,नवलेखन अंक में प्रकाशित हुई। पत्रिका के संपादक शंकर जी ने परिचय में साफ लिखा था कि प्रज्ञा, लेखन में नई नहीं हैं पर 'मुखौटे' उनकी पहली कहानी है। पहली कहानी दो हज़ार बारह में लिखी। कुछ प्रयास उससे पहले भी किया पर कारगर नहीं रहे। वो कहानियाँ आज भी रखी हैं मेरे पास। आज एक दशक से अधिक के समय में मेरे चार कहानी-संग्रह और दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। मुझे लगता है लेखन आपके द्वारा चुना गया वह काम है जिसके लिए आप भीतर से प्रेरित होते हैं। अपनी दिशा चुनते हैं।

आकाश : आपने कहा कहानियों के घर में आपका जन्म हुआ। आपके पिता वरिष्ठ कथाकार रमेश उपाध्याय का आपके लेखन पर क्या प्रभाव पड़ा?

प्रज्ञा : देखिए, परिस्थितियाँ, परिवेश और इंसानी क्षमताएँ ही मनुष्य को रचती हैं। मुझे भी इन्होंने रचा। घर में दो बेहद निष्ठावान शिक्षक माता-पिता हों, कला के प्रति समर्पित हों तो घर

का वातावरण भी बहुत कुछ सिखा देता है। अनुशासन, जनप्रतिबद्धता, आशावादिता और ज़िंदादिली मैंने विरासत में पाई। इनसे ही मेरा शिक्षक-लेखक और इंसान तैयार हुआ। पिता रमेश उपाध्याय का लेखन मुझे कई रूपों में प्रभावित करता रहा। वे आजीवन दृढ़ वैचारिकता की मिसाल रहे। आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक विभेदों का आजीवन विरोध, समाज-परिवार में जनतांत्रिक मूल्यों की पक्षधरता, रूढ़ियों-कुतर्कों से खरी असहमति और बेहतर दुनिया का स्वप्न उनकी कहानियों, उपन्यासों, नाटकों, उनके संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'कथन' की योजना हो या लेख-आलोचना, सबमें आप देख सकते हैं। अपने लेखन में विशेष तौर पर अपनी कहानियों-उपन्यासों में इस प्रतिबद्धता को लेकर मैं चलती रही हूँ। जीवन के वे पक्ष जो कथा के विषय के रूप में धुँधला रहे हैं मैं उन विषयों को पूरी जिजीविषा से रचने की कोशिश करती हूँ। पिता द्वारा छह अथक दशकों में खींची गई लकीर बहुत बड़ी है। उनकी एक बात मुझे हमेशा घोर आश्चर्य में डालती रही कि वे विविध विधाओं में लिखते, सबमें उतनी ही ज़िम्मेदारी और उत्साह से लिखते, लेखन की नई चुनौतियों को स्वीकार करके लिखते। नियमित पढ़ते। राष्ट्रीय और वैश्विक यथार्थ से उनकी दृष्टि बनी रही। उनके कहे शब्द आज भी याद हैं-'लेखन शौकिया नहीं होता। लेखन सरोकार के साथ होता है। इन सरोकारों के लिए एक ज़िद होना ही लेखन है।' अपनी कहानियों-'कामधेनु', 'पागलों ने दुनिया बदल दी', 'कांठ में कोंपल', 'त्रासदी माई फुट' और उनके जाने के बाद आया उनका एक और उपन्यास 'छोटे शहर की बड़ी बिरादरी'-उनकी छह दशक की रचनात्मक यात्रा में ऐसा बहुत कुछ है जिसे शब्दों में समेट पाना असंभव है।

आकाश : प्रज्ञा जी! आप शिक्षक हैं। दिल्ली विवि में प्रोफ़ेसर हैं। आपको लेखन के लिए कम ही समय मिलता होगा। ऐसे में दिल्ली के कपड़ा मज़दूरों पर 'धर्मपुर लॉज' और ग़रीब दलित बस्ती पर 'गूदड़ बस्ती' उपन्यास के लिए रिसर्च कैसे हो पाती है?

प्रज्ञा : निदा फ़ाज़ली का बड़ा मशहूर शेर है-'हर आदमी में होते हैं दो-चार आदमी जिसको भी देखना हो कई बार देखना'। यही इस सवाल का माकूल जवाब है। देखिए! सारा काम अनुशासन और समय-संतुलन का ही नहीं है, अपने काम में एक ख़ास तरह का उत्साह महसूस करना और एक धुन पकड़कर उसकी लय पर थिरकने का भी है। यह लय आपको आनंद देती है। थिरकते हुए थक भी जाएँ पर फिर आपको खींच लेती है। एक लेखक एक ही दिन में संरक्षक की भूमिका में भी होता है, अपनी नौकरी भी करता है, घर-परिवार के दायित्व भी सँभालता है और साहित्य के अपने रचनात्मक वृहत्तर परिवार का हिस्सा भी होता है। अनेक भूमिकाओं में आवाजाही करता वह सब कामों को अंजाम देता है। 'धर्मपुर लॉज' के लिए दिल्ली की बंद हो चुकी कपड़ा मिलों और मज़दूरों की निर्मम बेदखली से जुड़ी रिसर्च ने मुझे भीतरी तौर पर समृद्ध किया। दिल्ली की जिस बिड़ला मिल और घंटाघर के नज़दीक मेरा जीवन गुज़रा उसे एक परिपक्व दृष्टि से पहली बार देखा-समझा। इसी तरह 'गूदड़ बस्ती' का परिवेश मेरा जाना हुआ परिवेश था। उस दलित बस्ती में मेरा ससुराल था और जिसे मैं लगभग दो दशक से जानती-देखती आई थी। एक ज़रूरी बात मैं यह भी कहना चाहूँगी कि किसी उपन्यास-कहानी को लिखने के लिए रिसर्च केवल तात्कालिक नहीं होती आप यदि लंबे समय से उस हिस्से से जुड़े होते हैं तो वह समूचा यथार्थ कथा की शक्ल में रूपांतरित होता है और इस तरह का शोध बरसों-बरस का हिस्सा होता है। जीवन से जुड़ा हुआ, यांत्रिक नहीं।

आकाश : आप अपनी कहानियों में पूँजीवाद के विरोध में आवाज़ बुलंद करती रही हैं, क्या यह आपके लेखन में सरोकार की तरह है?

प्रज्ञा : आकाश, सरोकार लेखन की ज़मीन हैं और उसके लिए संघर्ष लेखक का स्वप्न। आप विश्व की श्रेष्ठ कही जाने वाली कहानियों को भी देख लें उनमें सरोकार समाहित हैं। चाहे वह 'युद्ध और शांति' हो, 'इडिपस' हो या 'स्पार्टकस' या और भी कृतियाँ। जहाँ तक पूँजीवाद के विरोध की बात है। भूमंडलीकरण के बाद से हमने जिस नए समाज में कदम रखा वह समृद्धि के सपने बेचता भौतिक चकाचौंध के साथ आया। इसके आने से जिस तरह उदारीकरण, निजीकरण, वैश्विक उपभोक्तावाद और आवारा पूँजी का तंत्र बढ़ता गया मनुष्यता का क़द कम होता गया। एक बात और भी गौरतलब है कि सत्ताएँ सांगठनिक रूप से हमें घेरती हैं। अनियंत्रित बाज़ार की सक्रिय आर्थिक सत्ता हो, उसे पोषित करती राजनीतिक सत्ता हो और उससे नाभिनालबद्ध अन्य मनुष्यविरोधी सत्ताएँ हों यह सब मिलकर आज के जटिल और उत्पीड़नकारी परिदृश्य को खड़ा करती हैं। हर समय के सचेत लेखक की कार्यवाही इनके विरुद्ध रही है। मेरी कहानियों-'मन्नत टेलर्स' में साम्प्रदायिक और आर्थिक तानेबाने में हुनरमंद, बेराज़गार होते कारीगरों की समस्या हो, 'लो बजट' में खेती की ज़मीनों को बिल्डर माफिया द्वारा हथियाना हो या फिर 'पिछली गली' आदि में विकास के नाम पर हाशिए के समाज की बेदखली हो-इन समस्याओं से मेरे किरदार जूझते मिलेंगे।

आकाश : आजकल ऑडियो में कहानियों का चलन बढ़ रहा है। इसे आप किस तरह देखती हैं?

प्रज्ञा : यह कहानियों के मंच का विस्तार है। पहले और आज भी आकाशवाणी से कहानियाँ प्रसारित होती रही हैं। कहानी का रंगमंच और उनका नाट्यरूपांतरण भी एक ज़रिया रहा है। अब पॉड कास्ट आदि मंच भी हैं। ऑडियो बुक है। ऑडियो में आकर कहानी की पहुँच उन लोगों तक भी बढ़ जाती है जो किताबों तक नहीं जा पाते जैसे नाटक मंचित होकर व्यापक समाज तक पहुँचता रहा है। नए माध्यम में साहित्य को संरक्षित करने का यह बेहतर तरीका है।

आकाश : नई हिंदी वाली कहानियों और मूल साहित्य की कहानियों के भविष्य को किस प्रकार देखती हैं?

प्रज्ञा : नई हिंदी वाली के साथ भाषा और

व्यवहार के स्तर पर आप मूल कहानियों से अंतर देख सकते हैं। हमारी पीढ़ी या अगली में भी कई लोग जिस भाषाई संस्कार से आगे बढ़ रहे हैं इसका संस्कार उनसे अलग है। सबसे बड़ी बात जो मुझे लगती है यह नई में नया क्या है? नए समय से साक्षात्कार या फिर शैली के रूप में या भाषिक विन्यास के रूप में पाठक को चमत्कृत करने का एक चौंकाऊ तरीका मात्र? असली बात है इस नएपन की अवधारणा के मूल में जाना है वहीं से अंतर साफ हो जाएगा। यदि फिर भी बात ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक साहित्य को पहुँचाने की है तो मुक्तिबोध का एक लेख है-'जनता का साहित्य' जिसमें उन्होंने साफ लिखा है जनता की अभिरुचि सामान्य ही नहीं कलात्मक भी होती है।

आकाश : आपकी पहली पीढ़ी, आपकी पीढ़ी और आने वाली पीढ़ी के साहित्यकारों में क्या अंतर है। इनमें से आपको किस पीढ़ी के लेखक ज़्यादा आकर्षित करते हैं और क्यों?

प्रज्ञा : साहित्य में हमेशा कई पीढ़ियाँ एक साथ सक्रिय रहती हैं। लेखन में अंतर अपने समय के यथार्थ को पकड़ने से आता है। आप उस व्यापक यथार्थ को पकड़ पा रहे हैं या फिर अनुभूत यथार्थ को ही दोहरा-तिहरा रहे हैं जैसा पहले के कई लेखक भी करते आए हैं। समय की अनसुनी कर दी जा रही अंतर्ध्वनियों को सुन पाना और उन्हें चिंतन के दायरे में लाना साहित्य का काम है।

आपके दिए आकर्षक शब्द को मैं महत्त्वपूर्ण शब्द से बदलना चाहूँगी और मेरी नज़र में महत्त्वपूर्ण समय और सरोकार सापेक्ष शब्द है। हिंदी कहानी के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कथाकार मेरी नज़र में प्रेमचंद हैं। हिंदी कथाधारा को यथार्थ से जोड़ने के साथ पक्षधरता के बिंदु से जोड़ना और साहित्य के सौंदर्यशास्त्र की नई अवधारणा को सामने लाने के कई काम उन्होंने एक साथ किए। लेकिन मैं फिर कहूँगी कि हम केवल किसी एक कथाकार को ही सबसे महत्त्वपूर्ण नहीं मान सकते। हिंदी कहानी धारा में प्रेमचंद के बाद से लेकर अब तक कई कथाकार हुए जो अपने समकाल को रचते हुए बहुत महत्त्वपूर्ण रहे। कुछ के नाम लिए जा सकते हैं पर नाम और भी बहुत हैं। अमरकांत की 'डिप्टीकलक्टरी' या 'दोपहर के भोजन', मुक्तिबोध की 'क्लॉड ईथरली', भीष्म जी की 'अमृतसर आ गया', राजेंद्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी क़ैद है', रमेश उपाध्याय की 'त्रासदी माय फुट', सुधा अरोड़ा की 'अन्नपूर्णा मंडल की आख़िरी चिट्ठी', नमिता सिंह की 'रास्ते', मृदुला गर्ग की 'तीन किलो की छोरी', मैत्रेयी पुष्पा की 'फैसला', शंकर की 'जगो देवता जगो', नासिरा शर्मा की 'चार बहनें शीशमहल की', शिवमूर्ति की 'बनाना रिपब्लिक', राजेंद्र दानी की 'लड़ाई' और भी बहुत। यदि आप सामाजिक सरोकारों को आंदोलन की ज़मीन कहें तो मधु कांकरिया, हृषिकेश सुलभ, अवधेश प्रीत, हरिनारायण, कैलाश वानखेड़े, कैलाश बनवासी, पंकज सुबीर, अजय नावरिया,मनोज रूपड़ा, नीलेश रघुवंशी, मनोज पांडे, सुशीला टाकभोरे, प्रियदर्शन, हनीफ मदार, गीताश्री, मनीष वैद्य आदि के साथ हाल के समय में श्रद्धा थवाईत, अनघ शर्मा, जमुना बीनी, सिनीवाली, वंदना वाजपेयी आदि को पढ़ना मुझे अच्छा लगता है। आकाश, फेहरिस्त गिनाना सबसे ख़तरनाक काम है उम्मीद करती हूँ अग्रज और साथी नाराज़ नहीं होंगे।

साहित्य के वर्तमान परिदृश्य की बात है तो आज कई पीढ़ियों के कथाकार एक साथ सक्रिय हैं। रचनाकार समय की विभीषिकाओं से जूझ रहे हैं। आज विविध विषयों पर लिखा जा रहा है। पर्यावरण, राजनीति, जेंडर के सवाल हों, आर्थिक परिवर्तन के सवाल हों, नए उभरते यथार्थ के सवाल हों-उन्हें आज का साहित्य पकड़ रहा है और अपने पाठक को भी उस चिंतन धारा में लाने का बेहद सचेत प्रयास कर रहा है। इस दृष्टि से मुझे साहित्य का समकाल रोचक और ज़रूरी लगता है। हमेशा की तरह कुछ भीड़ भी चल रही है जो कुछ चौंकाऊ किस्म की रचनाओं के बलबूते पर तुरन्त चर्चा हासिल करने के सपने पालती है। मेरा मानना है नैरंतर्य, गंभीर सवाल उठाता, समय में हस्तक्षेप करता कथानक और सुघड़ भाषिक अभिव्यक्ति साहित्य के गुणधर्म हैं। हमारी सुदृढ़ साहित्यिक परम्परा इसका प्रमाण है। ऐसे में इस 'वेगवती धारा' को जो जल्द प्रसिद्धि के मानक पर तरंगित है उसे हमें ठहरकर देखने की सख्त ज़रूरत है।

आकाश : इन दिनों ज़्यादातर युवा लेखिकाएँ स्त्री मुक्ति के नाम पर दैहिक स्वतंत्रता पर आ टिकती हैं, आपकी राय?

प्रज्ञा : स्त्री मुक्ति की लड़ाई मूलत: सामाजिक-आर्थिक समानता की होनी चाहिए। दिक्कत यह है कि हमारे देश का संविधान कुछ और कहता है और समाज का कुछ और कहता है। आधी आबादी के लिए स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का स्वप्न साकार करना बेहद ज़रूरी लक्ष्य है। स्त्री के मानवीय और संवैधानिक अधिकारों को पाने की मुहिम तेज़ होनी चाहिए। दैहिक आज़ादी भी ज़रूरी है पर वही ज़रूरी है ऐसा मैं नहीं मानती। पहली प्राथमिकता जेंडर इक्वैलिटी और सामाजिक न्याय की है। मेरी कहानियाँ- 'रज्जो मिस्त्री', 'जड़खोद', 'स्याह घेरे', 'पाप तर्क और प्रायश्चित' और हाल ही में वर्तमान साहित्य के विशेषांक में प्रकाशित 'माया मरी न मन मरा' कहानी में यही सवाल प्रमुख है।

आकाश : हिंदी कहानी में आलोचना की जो स्थिति है उस पर आप क्या सोचती हैं?

प्रज्ञा : हिंदी कथा-आलोचना में इस समय कई नाम सक्रिय हैं। वरिष्ठतम पीढ़ी के बाद उभरे आलोचक और उनके बाद के आलोचकों में अंकित नरवाल, मृत्युंजय पांडेय, रश्मि रावत, नीरज खरे सरीखे युवा आलोचक हैं। आलोचना जिन सिद्धांतों को निर्मित करती है वह सिद्धांत नामवर सिंह की कहानी आलोचना के बाद उतने ठोस रूप में आगे बढ़ते नहीं दिखाई दिए हैं। समीक्षाएँ तो आज बहुत हो रही हैं पर एक बड़े कालखंड को लेकर कहानियों पर गंभीरता से विचार कम दिखाई पड़ रहा है। भविष्य के लिए अच्छी कहानियों का मूल्यांकन एक ज़रूरी काम है। वर्तमान में कथा के साथ न्याय करने वाले आलोचकों में सूरज पालीवाल, अरुण होता, रोहिणी अग्रवाल का नाम बेहद विश्वसनीय है।

000

कहानी का सफ़र- जहाँ तक क़दम आ सके आ गए हैं

नरेंद्र नागदेव

सन् 1972 में मैं कहानीकार बन गया। ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूँ कि इस साल मैंने एक कहानी लिखी थी, जिसे क़ायदे से मैं अपनी पहली कहानी मानता हूँ। उसके पहले मैं कविताएँ लिखता था। फिर वह छूट गया। छूटने के बाद कुछ अर्से तक तो कुछ भी नहीं लिखा। फिर एक रात को कापी-कलम ले कर नई दिल्ली की अमर कालोनी स्थित अपनी बरसाती में बैठा, और सुबह तक लिखता चला गया। पिछले काफी अर्से से भरा-भरा बैठा था। बस उन अनुभवों को बेलगाम लिखता चला गया। एक धुँधली-सी कथावस्तु मन में थी, उसी में तमाम तल्खियों को पिरोता चला गया। पता तो यह भी नहीं था कि जो कुछ लिख रहा हूँ वह कहानी ही है या कुछ और? दूसरे दिन उसे फेयर किया और सारिका में भेज दिया। कमलेश्वर जी वहाँ संपादक थे। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब आठ-दस दिन बाद स्वयं उनके हाथ का लिखा हुआ पत्र मिला। उन्होंने लिखा था कि वह कहानी 'उतार' उन्हें अच्छी लगी है तथा अगर कुछ अंशों को ठीक कर दिया जाए, तो वह एक महत्त्वपूर्ण कहानी हो सकती है। यह मेरे लिए आशातीत था। ठीक-ठाक कर के भेज दी। और उन्होंने उस वर्ष के नवलेखन विशेषांक में प्रकाशित की, जिसमें वे वर्ष के चुनिंदा नए लेखकों को स्थान देते थे। कहानी न केवल हिंदी में चर्चित हुई, बल्कि गुज़राती और मराठी में अनूदित भी हुई। इसलिए कहानी में 'ब्रेक' देने का श्रेय तो मैं निर्विवाद रूप से कमलेश्वर जी को ही देता हूँ। उस अंक में प्रकाशित कुछ लेखक बाद में चल कर हिन्दी साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर बने। हालाँकि मैं स्वयं उन दिनों अपने आर्किटेक्चर के व्यवसाय को ले कर कठिन परिस्थितियों में होने के कारण इतने अच्छे ब्रेक के बावजूद कहानी पर अधिक ध्यान देने की स्थिति में नहीं था। इसलिए बाद में जब कमलेश्वर जी का पत्र मिला कि वे एक समांतर नामक आंदोलन आरंभ कर रहे हैं, जिसके लिए उन्हें मेरी एक कहानी चाहिए, तो मैं उन्हें भेज ही नहीं सका। इसका दूसरा कारण यह भी था कि मैं किसी की माँग पर कहानी नहीं लिख सकता था। मुझे तब विश्वास था कि कहानी तभी लिखी जा सकती है जब वह मन से सीधी काग़ज़ पर उतरे। वह तो बाद में अनुभवी लोगों ने समझाया कि इस तरह मौके खोए नहीं जाते। कमलेश्वर जी से भी बाद में विशेष संपर्क नहीं रहा। कई वर्षों के बाद यदाकदा दिल्ली के किसी समारोह में औपचारिक मुलाकात भर होती थी। उसमें भी विषय मेरे भोपाल स्थित बड़े भाई सच्चिदा जी होते थे, जो उनके मित्र थे।

कॉलेज के दिनों में मेरा एक मित्र था महेंद्र पारिख। वह अमरीका चला गया था। एक बार वह छुट्टियों में दिल्ली आया। साथ में पत्नी और एक वर्ष का बेटा भी था। दुर्भाग्य से बेटा विकलांग पैदा हुआ था। मैं एक दिन उससे मिलने गया। वह बाहर बरामद में अपने बेटे को गोद में खिला रहा था। मैंने देखा कि बेटा अपने आप करवट तक नहीं बदल पा रहा था। उसकी गरदन एक ओर झुकी सी थी। महेंद्र उसे गुदगुदा कर हँसाने की कोशिश कर रहा था, पूछ रहा था कि बेटा हमारे साथ हवाई जहाज़ में चलेगा क्या? बच्चे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हो रही थी। मैं घर लौटा तो मन गहरे अवसाद से भरा था। उस दिन मैंने इस पर कहानी लिखी थी 'समापन'। कहानी धर्मयुग में भेज दी। संपादक धर्मवीर भारती थे। उन्होंने तत्काल कहानी स्वीकृत कर के सचित्र प्रकाशित की। उन दिनों धर्मयुग में प्रकाशित होना बड़ी बात होती थी। इस कहानी को अब तक याद किया जाता है और हाल ही में नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा इस विषय पर प्रकाशित महत्त्वपूर्ण कहानियों के संकलन में भी इसे शामिल किया गया। भारती जी को सख्त संपादक के रूप में याद किया जाता है। लेकिन मैं तो वर्षों बाद भी जब मुंबई जाता और उनसे मिलने के लिए धर्मयुग के कार्यालय में जाता, तो वे समय निकालकर बहुत ही स्नेह पूर्वक मिलते। समापन के प्रकाशन के बाद मैं कोई तीन वर्ष के लिए लीबिया चला गया और साहित्य से एक तरह से संपर्क ही टूट गया। लेकिन लौटने के बाद फिर से अपने आप को सहेज कर लिखना शुरू किया और 'विस्मृत 'तथा 'नाव भर अँधेरे' जैसी कहानियाँ लिखीं, जो तुरंत धर्मयुग में प्रकाशित और चर्चित हुईं। इतना ही नहीं, समकालीन कला पर भी मेरा लिखा एक आलेख उन्होंने धर्मयुग में प्रकाशित किया। मुझे याद है इसके बाद एक बार जब मैं उनसे मिला तो उन्होंने इसके किसी अंश को

नरेंद्र नागदेव
बी -2/2376, वसंत कुंज,
नई दिल्ली - 110070
मोबाइल- 9873498873
ईमेल- nknagdeve@gmail.com

लेकर असहमति प्रकट की थी और हमारी हल्की नोकझोंक भी हुई थी। अब यह उनका बड़प्पन ही था कि उन्होंने मुझ जैसे नौसिखिया को भी इतना महत्त्व दिया।

इन दो कहानियों के आसपास ही मैंने 'रिश्ते' और 'फाँस' शीर्षक से दो और कहानियाँ लिखी थीं लीबिया जाने के पहले, जो उस समय कोलकाता से प्रकाशित होने वाली प्रमुख पत्रिका 'रविवार' में प्रकाशित हुई थीं, तथा एक बार श्री योगेंद्र कुमार लल्ला ने मुझे एक पत्र में लिखा था कि मैं आपकी कहानियों का लाइलाज प्रशंसक हूँ।

लीबिया के तीन वर्ष निस्संदेह रचनात्मकता के लिहाज से नितांत बंजर वर्ष थे। समय बहुत था लेकिन उस असंवेदनशील माहौल में सृजन का कोई बीज पनपने की संभावना ही नहीं बनती थी। 'कटघरे के इतने करीब' शीर्षक से कुल जमा एक कहानी लिख सका था इतने समय में, जो बाद में बड़े भाई रमाकांत जी ने इंदौर से निकलने वाली 'नई दुनिया' में दी थी तथा उसके दो अंकों में छपी थी।

सन 81 में लीबिया में अपना कार्यकाल समाप्त होने के बाद मैं यूरोप घूमता रहा। फक्कड़ अंदाज़ में कंधे पर झोला लटकाए। न कोई रात गुज़ारने का ठिकाना, न कहीं खाने का इंतज़ाम। अपने इन अनुभवों को मैंने 'रोम से रोम तक फैला यूरोप' संस्मरण में लिपिबद्ध किया। यह लीक से हट कर था। कुछ इस तरह कि वहाँ के आँखों देखे वृत्तांत को निरन्तर अपने बचपन की स्मृतियों के साथ पिरोता चला था। लौट कर इसे सारिका में प्रकाशनार्थ दिया और तत्कालीन संपादक श्री कन्हैया लाल नंदन ने स्वीकृति पत्र में मुझे इसके लिए साधुवाद प्रेषित किया तथा सारिका के दो अंकों में यह मेरे द्वारा ही बनाए गए रेखांकनों के साथ प्रकाशित हुआ।

दिल्ली लौट कर उस सफ़र पर आधारित दो कहानियाँ भी लिखीं। उनमें एक थी 'सैलानी'। एक दिन लाजपत नगर के फुटपाथ पर एक किताबों की दुकान में 'कादंबिनी' पलट रहा था, तो नज़र एक विदेशी पृष्ठभूमि पर आधारित कहानियों की प्रतियोगिता पर पड़ी। मैंने सैलानी कहानी को उसमें प्रतियोगिता के लिए भेज दिया। परिणाम आया तो मुझे प्रथम स्थान मिला था। बाद में कादम्बिनी में ही वह प्रकाशित हुई। कुछ समय बाद सारिका ने एक कहानी प्रतियोगिता आयोजित की तो उसमें दूसरी कहानी 'सिरे थामती साँसें' भेज दी। यद्यपि इसे पुरस्कार नहीं मिला, लेकिन सारिका में प्रकाशित किया गया। दोनों ही कहानियों में महज यात्रा वृत्तांत नहीं थे, वरन विदेश में रहते हुए पनपने वाले अकेलेपन, स्मृतियों और अपराध भाव के सघन बिम्ब थे। दोनों ही कहानियों का बाद में भी अर्से तक संज्ञान लिया जाता रहा।

जब दस-बारह कहानियाँ प्रकाशित हो गई तो मन में एक कहानी संग्रह बनाने का विचार आया। और तब जा कर समझ में आया कि कितना मुश्किल होता है किसी नए कहानीकार के लिए पहला संग्रह छपवा लेना। भोपाल में तो वरिष्ठ कहानीकार सत्येन कुमार ने भी यथासंभव सहायता की, लेकिन बात नहीं बनी। फिर एक दिन भोपाल से सच्चिदा जी का फ़ोन आया कि दिल्ली के नेशनल पब्लिशिंग हाऊस के प्रतिनिधि आए थे, तथा इस विषय में उनसे सकारात्मक बात हुई है। मैं दिल्ली में उनसे मिला तथा उन्होंने पांडुलिपि रख ली। वह प्रकाशन के लिए स्वीकृत भी कर ली गई, लेकिन छप कर आते-आते कोई तीन वर्ष निकल गए। अंतत: 1987 में वह संग्रह प्रकाशित हुआ। फिर भी, छपने के बाद साहित्य जगत् में इसका तुरन्त संज्ञान लिया गया तथा बेहतरीन समीक्षाएँ आने लगी। इसे 'ताज़ा पर्यावरण का झोंका' कहा गया। वर्षांत की साहित्यिक समीक्षाओं में इसका उल्लेख किया गया। यह भी लिखा गया की इस पहली ही पुस्तक से लेखक ने साहित्य जगत् का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है। उदय प्रकाश ने विशेष रूप से संज्ञान लिया और जहाँ भी संभव हुआ, इसका उल्लेख किया। तब एक दिन उत्साहित हो कर मैं नामवर सिंह जी के घर जे. एन. यू. जा पहुँचा और उन्हें इसकी एक प्रति दे आया। अब बड़ी उत्सुकता रहने लगी कि उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी? इसलिए दो-तीन बार उनको फ़ोन करने की जुर्रत कर बैठा। इस पर एक बार वे चिढ़ गए। मुझ पर तो जैसे घड़ों पानी पड़ गया। बस, उस दिन के बाद से मैंने भी उधर का रास्ता ही छोड़ दिया। हालाँकि इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि मेरे मन में उनके प्रति सम्मान में कोई कमी आई हो।

यह ज़रूर अच्छा रहा कि तब तक मेरे कहानी लेखन में एक निरंतरता आ गई। विषय वस्तुओं की सीमाएँ भी अधिक विस्तृत हो गई। कहानियाँ साहित्य अकादमी की पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' में प्रकाशित हुई और प्रतिष्ठित पत्रिका 'पहल' में भी। दो एक कहानियाँ उर्दू में अनूदित हो कर भी छपी।

लेकिन कुछ अर्से बाद वर्ष 1988 में सचिन प्रकाशन से जो दूसरा कहानी संग्रह 'उसी नाव में' प्रकाशित हुआ, उसे अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी। यह मेरे लिए निराशाजनक था। क्योंकि इसमें संग्रहित कहानियाँ भी उच्च स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाओं में स्थान पा चुकी थीं। मुझे नहीं पता कि प्रकाशक की ओर से उन्हें समीक्षाओं के लिए भेजा भी गया था या नहीं? काफी अरसे बाद राजेंद्र यादव जी ने सलाह दी थी कि उन कहानियों को ज़ाया क्यों कर रहे हो? किसी अन्य संग्रह में उनका पुनर्प्रकाशन करवा लो। लेकिन वैसी स्थिति नहीं बन सकी।

कॉलेज के दिनों में एक उपन्यास पढ़ा था - 'द फाउंटेनहेड'। अमरीकी उपन्यासकार आइन रेंड ने लिखा था। आर्किटेक्चर के व्यवसाय पर आधारित था। लेखिका ने स्वयं आर्किटेक्ट नहीं होते हुए भी यह उपन्यास इतनी विश्वसनीयता के साथ लिखा था कि हर आर्किटेक्ट को यह अपनी कहानी लगता था। हर विद्यार्थी इसे पढ़ता था। यह अंग्रेज़ी के कलासिक्स में शुमार था। मैं भी इसे पढ़ ही चुका था। मुझे अपने देश में आर्किटेक्चर व्यवसाय का अनुभव हो चुका था। मन में आया कि क्यों न इसी विषय पर भारतीय पृष्ठभूमि में एक उपन्यास लिखा जाए। जैसे कि मेरी सृजन प्रक्रिया है, पहले मैंने अपने मन में उपन्यास की रूपरेखा निश्चित कर ली। एक दिन सुबह जल्दी उठा और कॉपी कलम लेकर शुरूआत भी कर दी। कोई चार-पाँच

पृष्ठ लिख लिए और विश्वास सा हो गया कि गाड़ी चल निकली है। फिर तो जैसे आने वाले महीनों में मैं उसी उपन्यास के पात्रों के साथ संवाद करता रहा और स्वयं अपनी रची हुई उसी दुनिया में विचरण करता रहा। यह एक सुखद अनुभूति थी कि उपन्यास अब मुझ से आदेश लेकर नहीं बल्कि आपसे आप अपनी गति से आगे बढ़ा जा रहा है। सुबह बस चार या पाँच पृष्ठ लिख लेता था और उसमें कोई फेरबदल भी नहीं करता था। सामान्यत: उपन्यास दो भागों में था। पहले भाग में एक सृजनशील वास्तुकार अपनी संरचना को स्वीकृत करवा लेने के लिए कठिन संघर्ष करता है, क्योंकि इस देश में कला पर अंतिम निर्णय लेने का अधिकार अक्सर उनके पास होता है जिन्हें विषय की कोई समझ नहीं होती, लेकिन जो अपनी ताक़त के बल पर निर्णय मनवा ले जाते हैं। दूसरे भाग में जब निर्माण कार्य प्रगति पर होता है तब चुनौती होती है कि निर्माण संरचना के अनुरूप हो और भ्रष्टाचार से सर्वथा मुक्त। दोनों ही परिस्थितियों में सही और ग़लत के बीच सघन संघर्ष निरंतर जारी रहता है। मैं इन सब के बीच से निकाल कर उपन्यास को एक सकारात्मक मोड़ पर ले जाना चाहता था। उपन्यास छोटा ही था। कोई सवा सौ पृष्ठों का। टाइप करवा कर एक बार फिर नेशनल पब्लिशिंग हाउस को ही दे दिया। उन्होंने मनोयोग से प्रकाशित तो किया, लेकिन पहले की ही तरह फिर से कोई 3 साल से अधिक का समय लग गया। उपन्यास 1992 में छप कर आया। यह समय जो बीच में निकल गया इसका नुक़सान बाद में चलकर हुआ जब उस समय के एक प्रतिष्ठित पुरस्कार के लिए इसका चयन हो गया, लेकिन बाद में पता चला की मेरी उम्र उस सीमा से थोड़ी सी अधिक हो गई है जिसके भीतर के लेखकों के लिए वह प्रायोजित था। बहरहाल उपन्यास छपने के बाद साहित्य जगत् में बहुत ही सकारात्मक प्रतिक्रिया हुई। हालाँकि इसका विषय तकनीकी था और मुझे डर था कि कहीं इस कारण से इसे समझने में परेशानी न हो। लेकिन तमाम साहित्यिक पत्रिकाओं में विस्तृत समीक्षाएँ प्रकाशित हुई और प्रबुद्ध साहित्यिक वर्ग में इसका संज्ञान लिया गया। मेरे लिए सुखद आश्चर्य था जब मुझे मध्य प्रदेश साहित्य परिषद का 'कृति पुरस्कार' (1992) इस पर प्रदान किया गया। भोपाल में एक बड़े समारोह में श्री प्रभाकर श्रोत्रिय, मन्नू भंडारी और प्रदेश के महत्त्वपूर्ण लेखकों की उपस्थिति में श्री शिवमंगल सिंह सुमन ने पुरस्कार प्रदान किया। वे मेरे लिए बेहद संतोष के पल थे। इतना ही नहीं, बल्कि श्री राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी जैसे महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों ने इसे पढ़कर प्रशंसात्मक प्रतिक्रियाएँ दीं और कृष्णा सोबती जी ने तो मिलकर इस पर चर्चा करने की इच्छा भी व्यक्ति की। उपन्यास व्यावसायिक दृष्टि से बहुत सफल रहा और इसके एकाधिक संस्करण निकले। विख्यात लिपिकार श्री एल. एस. वाकणकर ने इसका मराठी अनुवाद किया और श्रीमती मधु जोशी ने अंग्रेज़ी में। मराठी अनुवाद प्रकाशित हुआ। लेकिन अंग्रेज़ी अनुवाद किसी न किसी कारण से प्रकाशन से चूक गया। एक अंग्रेज़ी अंश द हिन्दू में अवश्य प्रकाशित हुआ।

अगले वर्ष मध्यप्रदेश साहित्य परिषद ने उज्जैन में साहित्य कुंभ का आयोजन किया। यह श्री प्रभाकर श्रोत्रिय के प्रयत्नों से संभव हुआ था। मुझे भी आमंत्रित करने योग्य समझा गया। संयोग से जिस ट्रेन से मैं दिल्ली से निकला, उसी से श्रीमती कृष्णा सोबती, राजी सेठ, चित्रा मुद्गल, अर्चना वर्मा और श्री हिमांशु जोशी भी उज्जैन जा रहे थे। सब साथ ही थे, एक ही कम्पार्टमेन्ट में। उस यात्रा में उनसे व्यक्तिगत परिचय का लाभ मिला, जो बाद में हमेशा बना रहा। उज्जैन में उस कथा कुंभ में बिताए तीन दिन बहुत यादगार रहे। वहाँ तो उपर्युक्त साहित्यकारों के अलावा सुमन जी, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, सूर्यबाला, सत्येन कुमार, धनंजय वर्मा, मंज़ूर एहतेशाम और अन्य अनेक ख्याति प्राप्त लेखक मौजूद थे। मुझे भी दस मिनट बोलने का वक़्त दिया गया। लेकिन उन दस मिनट के अलावा मैं अपनी आदत के अनुसार लगभग चुप ही रहा और इसीलिए मन्नू भंडारी जी की झिड़की भी खा ली कि कुछ बात क्यों नहीं करते? जब देखो तब किसी कोने में मुँह उठाए खड़े नज़र आते हो!

फिर एक दौर आया जिसमें धर्मयुग, सारिका और रविवार सब एक के बाद एक बन्द होने लगे और समस्या आ गई कि किस पत्रिका में कहानी भेजें, जिसका साहित्यिक स्तर भी ऊँचा हो और पाठक वर्ग भी बड़ा हो। ऐसे समय में 'हंस' पत्रिका का निकलना बड़ा तसल्लीबख्श रहा। हालाँकि मैं आश्वस्त नहीं था कि वहाँ मेरी कहानियों को स्थान मिलेगा भी या नहीं? लेकिन कोशिश की और सफलता भी मिल गई। वह भी ऐसे कि 'बीमार आदमी का इकरार नामा' और 'लिस्ट' जैसी प्रयोगवादी कहानियाँ स्वीकृत हुईं। इससे एक बात तो तय हो गई कि राजेंद्र जी के यहाँ भी छपने की प्राथमिक शर्त सिर्फ कहानी की गुणवत्ता थी। भले ही लेखक परिचित हो या नहीं हो, अथवा वह अपनी विचारधारा का हो या किसी अन्य विचारधारा का। उन दिनों उनकी सलाहकार भी अर्चना वर्मा जैसी पारखी विदुषी हुआ करती थीं, जिनके कारण स्तरीय रचनाओं का प्रकाशन सुनिश्चित हो जाया करता था। 'बीमार आदमी का इकरारनामा' कहानी चर्चित हुई। बाद में दूरदर्शन द्वारा अपने माइलस्टोन स्टोरीज़ कार्यक्रम के अंतर्गत इस पर फिल्म भी बनाई गई, जो एकाधिक रविवार को प्राइम टाइम में प्रसारित की गई। साथ ही इसका अंग्रेज़ी अनुवाद 'ग्रेट हिन्दी स्टोरीज़' नामक अंग्रेज़ी पुस्तक में प्रमुख हिन्दी कहानियों के अनुवाद साथ प्रकाशित किया गया। 'लिस्ट' कहानी भी सराही गई तथा राजेंद्र जी ने तो उसे दशक की उल्लेखनीय कहानियों में एक माना। इसका अंग्रेज़ी अनुवाद भी 'दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' में प्रकाशित हुआ। कुछ समय बाद तो 'न्यूटन की सीपियाँ' नामक एक लंबी कहानी भी हंस में स्थान पा गई।

सन 1998 में नेशनल पब्लिशिंग हाउस द्वारा ही अगला कहानी संग्रह 'बीमार आदमी का इकरारनामा' शीर्षक से ही प्रकाशित हुआ। इसे भी अपेक्षित सफलता मिली और अनेक समीक्षाएँ साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। उन दिनों अपनी पुस्तक की

समीक्षाएँ प्रकाशित करवाने के लिए स्वयं भागदौड़ की आवश्यकता भी नहीं पड़ती थी। पत्रिकाएँ स्वयं ही आलोचकों के पास प्रतियाँ भेज कर व उनसे समीक्षाएँ लिखवा कर यथा समय प्रकाशित भी कर दिया करती थी। मैंने स्वयं किसी भी आलोचक से अपनी पुस्तक पर कोई आलेख लिखने को नहीं कहा था, और न ही किसी पत्रिका से उसे प्रकाशित करने की विनती की थी। फिर भी यथासमय सभी प्रकाशित हुईं। इसे भी अब तक प्रकाशित अन्य पुस्तकों की तरह ही वर्ष की उल्लेखनीय पुस्तकों में शामिल किया गया। इस संग्रह के लिए हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा मुझे वर्ष 1998-99 का साहित्यिक कृति पुरस्कार प्रदान किया गया। तत्कालीन साहित्य प्रेमी मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित के कर कमलों से दिल्ली के प्रबुद्ध साहित्यकारों की उपस्थिति में फिक्की ऑडिटोरियम में यह पुरस्कार ग्रहण करना एक अच्छा अनुभव रहा।

दिल्ली में रहते हुए भी मैं कभी किसी मठाधीश के दरबार में हाज़िरी बजाने नहीं गया। न ही विश्वविद्यालय के किसी विद्वान आलोचक के पास अपनी किसी कृति को कोर्स में लगवाने। कुल जमा एक हंस के कार्यालय में कभी-कभी जाता था कोई नई कहानी देने के लिए। और इसलिए भी कि राजेंद्र जी के उन्मुक्त ठहाकों और खुले विचारों वाले वातावरण में कुछ समय बिताना भी एक सुखद अनुभव होता था। कुछ अन्य साहित्यकारों से वहाँ परिचय भी हो जाता था, तो साहित्य में अपनी उपस्थिति का कुछ एहसास-सा बन जाता था। राजेंद्र जी स्वयं भी कहानी माँग लेते थे। मेरी कहानियों को वे प्राथमिकता देते थे और तुरंत पढ़ लेते थे। अगर पसंद आती तो अगले ही दिन फ़ोन कर के बता देते कि यह कहानी अच्छी लगी है और छाप रहा हूँ। कुछ दिन फ़ोन नहीं आता तो मैं स्वयं फ़ोन करता। उधर से आवाज़ आती कि इसमें मज़ा नहीं आया। कोई और कहानी भेजो। दंगों के माहौल पर लिखी कहानी 'शिनाख्त' पर बहुत ख़ुश हो कर फ़ोन किया था। कला जगत् में पेंटिंग्स की नीलामी में होने वाले भ्रष्टाचार पर आधारित कहानी 'एकहुं गुण नाहि' पर भी गद्‌गद् थे। ठगों की कार्यप्रणाली पर आधारित 'तम्बाकू लाना ज़रा' पर तो इतने प्रसन्न थे कि दिल्ली में एक साहित्यकारों के बड़े जलसे में मंच से तारीफ़ कर दी। लेकिन 'चाबुक', 'गिद्ध' और 'दारा शिकोह की उपनिषद' जैसी कहानियाँ पता नहीं क्यों उन्हें जमी नहीं। इसलिए बाद में मैंने उन्हें कथादेश और वागर्थ जैसी अन्य महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं में भेजा, जहाँ वे ससम्मान प्रकाशित भी हुईं और बहुत पसंद भी की गईं। 'दारा शिकोह की उपनिषद' की चर्चा तो आगरा में सन 2013 की तेरह विशिष्ट कहानियों में से एक के रूप में विस्तार से की गई। 'गिद्ध ' का इंदौर में नाट्य रूपांतर किया गया। हंस के साथ मेरा साथ बहुत लंबा चला। राजेंद्र जी का स्नेह भी निरंतर बना रहा। एक बार जब उनके घर के स्टडी रूम में पर्याप्त उजाला नहीं आ रहा था, तो मैंने आर्किटेक्ट की हैसियत से वहाँ बड़ी खिड़की निकलवाने में उनकी मदद भी की थी। उनमें एक बड़प्पन था। उनका जाना मेरे लिए व्यक्तिगत नुकसान था। जब राजेंद्र जी नहीं रहे, तब भी उनके और हंस के प्रति अपनी निष्ठा के चलते मैंने अपनी कहानियाँ उन्हें देना जारी रखा और वे भी सुविधानुसार उन्हें प्रकाशित करते रहे।

प्रभाकर श्रोत्रिय एक ऐसे संपादक थे, जो जिस भी पत्रिका में गए, उसे उन्होंने चमका कर रख दिया। पहले उसका लाभ भोपाल की 'अक्षरा' को मिला। जब वह भारतीय भाषा परिषद के सचिव बन कर कोलकाता आ गए तो परिषद की पत्रिका 'वागर्थ' भी उनके कार्यकाल में अखिल भारतीय स्तर को छू गई। कहानीकार के रूप में मेरी प्रगति पर उनकी नज़र थी। 'अल गजाला' नामक कहानी जो मैंने अपने लीबिया प्रवास के अनुभव पर लिखी, उसे उन्होंने वागर्थ में स्थान दिया। बाद में जब मैंने 'सीढ़ियाँ उतरती भी हैं" कहानी भेजी तो वह ख़ुश हुए। जबकि अगली कहानी 'चाबुक' पढ़कर तो उन्होंने स्वयं पत्र भी लिखा, जिसमें उन्होंने कहानी के स्तर पर संतोष और प्रसन्नता व्यक्त की। वागर्थ में उन्होंने 'कथा समय' शीर्षक से एक स्तंभ आरंभ किया था, जिसमें वे प्रति माह एक लेखक को चुन कर उस पर सामग्री तथा उसकी एक कहानी प्रकाशित करते थे। इसमें उन्होंने मुझे भी सम्मिलित किया। बाद में वे भारतीय ज्ञानपीठ के निर्देशक बनकर जब दिल्ली आए तो उन्होंने यहाँ 'नया ज्ञानोदय' पत्रिका के संपादन का भार ग्रहण किया। श्रोत्रिय जी प्रखर कवि, नाटककार और आलोचक थे। उन्होंने हर तरह की खेमेबाज़ी से स्वयं को दूर रखा और सिर्फ साहित्य की गुणवत्ता पर ही ध्यान केंद्रित किया। एक दिन मैंने उन्हें और उदय प्रकाश को सपत्नीक अपने घर पर डिनर के लिए आमंत्रित किया था। वह एक बेहद स्मरणीय शाम थी। स्वभाविक था कि उनके होते हुए मेरी कहानियाँ नया ज्ञानोदय में स्थान पाती। लेकिन एकाधिक बार ऐसा भी हुआ की उन्हें कहानियाँ पसंद नहीं आईं। ऐसे अवसरों पर वह बहुत बेबाक होकर प्रतिक्रिया देते थे। कभी किसी अंश को बदलने की सलाह भी देते थे। लेकिन मेरी भी यह ज़िद होती थी कि मैं किसी संपादक के कहने पर अपनी कहानी में कोई परिवर्तन नहीं करता था। छपे या नहीं छपे। 'हंस' में तो ऐसा अनेक बार हुआ। अन्य कहानियों के अलावा उन्होंने नया ज्ञानोदय के 'जल विशेषांक' में भी मेरी एक 'सबमरीन' नामक कहानी प्रकाशित की थी।

लेकिन उनके होते हुए जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात हुई, वह यह थी की भारतीय ज्ञानपीठ से मेरी कहानियों का संग्रह 'वापसी के नाखून' शीर्षक से सन् 2003 में प्रकाशित हुआ। इसे आशातीत सफलता मिली। कई महीनों तक तमाम पत्रिकाओं में समीक्षाएँ प्रकाशित होती रहीं। वरिष्ठ लेखिका श्रीमती राजी सेठ ने स्वयं विस्तृत समीक्षा लिखी जो हंस में प्रकाशित हुई। संग्रह की अनेक कहानियों ने साहित्य जगत् का ध्यान आकृष्ट किया। वर्ष के अंत में 'सहारा समय' ने उस वर्ष प्रकाशित दस श्रेष्ठ कहानी संग्रहों में इस संग्रह को चौथे स्थान पर रख कर सम्मानित किया।

(क्रमश: अगले अंक में निरंतर...)

000

वह लड़की

नीलिमा शर्मा

पार्किंग में कार लगाकर मीता ने पर्स में चाबी रखी ही थी कि उसके फ़ोन की घंटी बज उठी...बाँसुरी की आवाज़ की रिंग-टोन सुनते ही जब उसने नंबर देखा तो उसके होंठों पर मुस्कान उभर आई... दूसरी तरफ़ जो बात करने वाली थी उसकी आवाज़ में जैसे सुरों की खनखनाहट मौजूद थी।

जैसे ही मीता ने फ़ोन उठाया-"हेल्लो जी, मैं आपके स्टूडियो पहुँच चुकी हूँ, आप कहाँ हैं?"

'बस आपसे आवाज़ की दूरी पर' कहकर मीता ने हाथ हिलाया। सामने सफेद रंग के ड्रेस में हलके साँवले रंग की लड़की ने हाथ हिलाकर अपनी उपस्थिति को दर्शाया। रेडियो इमली के रिकॉर्डिंग रूम में मीता को एक कार्यक्रम रिकॉर्ड करना था। रविवार शाम को यह कार्यक्रम प्रसारित होता है। लेकिन उसके पहले उसे एक लाइव कार्यक्रम करना था, जहाँ किसी से बातचीत की जाती थी। खनखनाती आवाज़ में जब मीता अपने श्रोताओ से बात करती "हेल्लो दिल्ली, मैं आप सबकी आर जे मिन्नन्नन्न्नी" अब आप सब मेरे साथ स्टूडियो में बैठी शख्सियत से बात कर सकेंगे, आप सब चाहें तो अंदाज़ लगा सकते हैं कि आज की मेहमान कौन हैं और उनके लिए प्रश्न भी एसएमएस कर सकते हैं।" और इसके साथ उस शाम की मेहमान की शख्सियत को बयान करते किसी गाने को बजा दिया जाता था।

अक्सर उन लोगों को यहाँ मेहमान की तरह बुलाया जाता था जिनके बारे में बात तो सब करते हैं लेकिन उनसे सीधे-सीधे कोई बात नहीं करना चाहता था। पिछले सप्ताह रेडियो की प्रोडक्शन टीम ने कूड़ा बीनने वाली एक सोलह वर्ष की लड़की को स्टूडियो बुलाया था।

आज की मेहमान का परिचय एक दिन पूर्व ही मीता को ई-मेल कर दिया गया था, साथ ही बजाए जाने वाले गानों की लिस्ट भी। लेकिन मेहमान को उसके असली नाम से पुकारे जाने की मनाही थी।

"आपका परफ्यूम कौन सा है? फ्रैगरेंस बहुत मादक है" कहकर मीता ने उसको सहज करने की कोशिश की।

"एलिज़ाबेथ आर्डन" जवाब सुनते ही मीता ने पलट कर कनखियों से उसकी तरफ देखा... सही बात हैं सुगंधित रहना उसके काम का एक हिस्सा है।

स्टूडियो के भीतर पहुँचकर माइक की सेटिंग को देखते हुए मीता की नज़रें ख़ुशबू के इर्दगिर्द ही घूम रही थीं। हाँ उसने आज उस लड़की को ख़ुशबू नाम से पुकारा जाना तय किया था।

बाहर से ओके का इशारा मिलते ही माइक ऑन करने से पहले मीता ने ख़ुशबू से पूछा तो आप तैयार हैं न सब सवालों का जवाब देने के लिए ? मैं कार्यक्रम में आपको ख़ुशबू नाम से पुकारूँगी और आप जिस सवाल का जवाब न देना चाहें तो इशारा कर देना मैं सवाल को घुमाकर बदल दूँगी।"

"नहीं, आप बिंदास कुछ भी पूछ लीजियेगा।"

ख़ुशबू की उम्र कोई पच्चीस बरस की होगी। हल्की साँवली रंगत पर कूल्हों तक लम्बे, घने बाल जिसको उसने कंधों के नीचे से गोल्डन रंग से रँगवाया हुआ था। तीखे नैन-नक्श वाली ख़ुशबू की नाक पर हीरे की लौंग चमक रही थी। काजल से सजी काली आँखें, गुलाबी न्यूड लिपस्टिक लगे होंठ, हल्का बल्की उसका फिगर, मीता को कुछ रश्क-सा हुआ, लेकिन अगले ही पल उसके काम को याद कर मीता ने गरदन झटकी और शीशे के पार बैठे रिकार्डिस्ट को इशारा किया।

हेल्लो दिल्ली... मैं आप सबकी आर जे मिन्नी... समय हो गया रात के दस बजकर दस मिनट और आपके सामने लेकर आ रही हूँ... इस सप्ताह का ख़ास मेहमान...लेकिन उनके परिचय से पहले आपको एक गाना सुनाते हैं और आप सब जल्दी से हमारे नंबर पर एसएमएस करके अंदाज़ा लगाएँ कि हमारी आज की मेहमान कौन हो सकती हैं, और मीता ने..पाकीज़ा फ़िल्म का गाना "इन्हीं लोगों ने ले लीना दुपट्टा मेरा" बजा दिया। लगातार संदेशों की आवक होने लगी और बहुत से लोगों ने रंगसाज, बुटिक वाली लिखकर भेजा था। अधिकतर ने

नीलिमा शर्मा
सी-2 /113, जनकपुरी,
नई दिल्ली- 110058
मोबाइल- 8510801365
ईमेल- neavy41@gmail.com

मीनाकुमारी लिख भेजा था। तभी एक संदेश चमका, मिन्नी यह आज धंधे वाली कहाँ से पकड़ लायी ? मीता का चेहरा भी तमतमा उठा था। अब बारी थी सवाल-जवाब की।

मीता ने पहला सवाल उठाया- "क्या आप लोगों को बताती हैं कि आप क्या करती हैं ?"

"सब को तो नहीं, लेकिन कोई बार-बार पूछता है तो बता देती हूँ कि जैसे कुछ लोग अपना खून-पसीना बेच कर जीविका कमाते हैं, मैं अपनी देह का नमक बेचकर जीविका कमाती हूँ, बस तब कई पूछने वाले कुछ फुट दूर जा बैठते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो कुछ इंच और करीब हो जाते हैं। लेकिन अब यही मेरा धंधा है चाहे अच्छा है चाहे गंदा है।" मीता उसके आत्मविश्वास को देखकर हैरान थी।

लगातार बोलते चले जाना और सामने वाले से अटपटे सवाल पूछना और उनके चटपटे जवाबों से लोगों का मनोरंजन करना एक आर जे का पेशा होता है। बचपन से बातूनी मीता का कार्यक्रम उसके गाँव में भी बड़ी उत्सुकता और चाव से सुना जाता था। उसके भाई बहन सब को गर्व से बताते थे कि उनकी मीता की आवाज़ रेडियो पर है तो क्या इस लड़की के माता-पिता, भाई-बहन...

"आख़िर यह काम ही क्यों? आप इतनी प्यारी हैं और कोई काम भी कर सकती हैं ?" मीता धाराप्रवाह बोलती चली जा रही थी।

अब ख़ुशबू के होंठों पर मुस्कराहट थी। लेकिन आँखों के नीचे के काले घेरे उसकी आँखों में व्याप्त उदासी को दर्शाते थे। कंसीलर और बी बी क्रीम की सहायता से शायद उनको छिपाने की सार्थक कोशिश की गई थी। मीता ने जब उसको पहली बार एक पार्टी में देखा था तो उसकी छठी इंद्री ने कहा भी था कि आज हाथ में वोद्का का गिलास थामे यह लड़की कोई आम लड़की नहीं है। बहुत ऊँची उड़ान भरेगी यह चिड़िया। उस शाम शिफ़ोन की नीली साड़ी के साथ सिल्वर रंग के ज़री के ब्लाउज़ में वह ग़ज़ब की सुंदर लग रही थी, जैसे घने, काले बरसाती बादलों को कहीं-कहीं नीले बादलों ने अपने आलिंगन में लिया हुआ हो। बीच-बीच मे चाँद रूपी चेहरा चमक रहा था। कुछ नमक था उसकी मुस्कराहट में कि हर कोई उसकी तरफ एक बार फिर से पलट कर ज़रूर देखता था। जाने क्यों उसे देखकर मीता को बिपाशा बासु याद आ गई। बिपाशा को अगर इस लड़की की मासूमियत पहना दो, तो भी यह लड़की इक्कीस ही ठहरेगी। कोई अंग ऐसा नहीं था जिसकी विशेष उपमा के साथ तारीफ़ की जा सके लेकिन अपनी समस्त समग्रता में लड़की बेहद दिलकश लग रही थी।

आप इससे पहले कि मुझसे प्रश्न करें मुझे आपसे एक प्रश्न करना है...ख़ुशबू ने मीता की तरफ देखते हुए कहा, "आपने मुझसे बात करना क्यों चाहा ?" ख़ुशबू ने ही सवाल जवाब की शुरूआत कर दी।

"आप भी समाज का हिस्सा हैं। पुराने समय में भी तो गणिकाएँ /नगर वधुएँ होती थी। फिर शहर के बाहरी क्षेत्र में वे महिलाएँ रहने लगीं। वे किसी न किसी मजबूरीवश अपनी देह को बेचकर अपनी जीविका कमाती थीं, उनकी कोई न कोई मज़बूरी होती थी। आप जवान हैं कोई भी काम कर सकती हैं ? लेकिन यह काम ही क्यों ? ऐसी क्या मजबूरी थी कि आप इस धंधे में उतर आई ?" मीता ने सवाल किया।

"मीता जी, आप आर जे का काम करती हैं तो आपसे कोई पूछता है यह काम ही क्यों ? आप अपनी आवाज़ से, अपनी वाक्पटुता से सब का मनोरंजन करती हैं; इसी तरह मैं अपनी देह से सब का मनोरंजन करती हूँ, मैं देह बेचती हूँ; क्योंकि मुझे लगता है मैं सिर्फ यही काम परफेक्शन के साथ कर सकती हूँ।" मस्कारे से सजी उसकी आँखों ने मीता की आँखों में झाँका, ऐसे लगा कि जैसे उसने लेंस लगा रखा है उसकी आँखों का रंग बदल गया था। मीता एक पल को सकपका गई। उसके पास कोई जवाब नहीं था, उसने अगले गाने को बजाने के लिए हाथ आगे बढ़ा दिया।

"इस अंजुमन में आपको आना है बार-बार, दीवारो- दर को ग़ौर से पहचान लीजिये।" पानी का घूँट भरकर मीता ने ख़ुशबू की तरफ देखा।

"मुझे अच्छा लगता है यह काम। सच में। जितना आप एक माह में भी नहीं कमाती उतना मैं एक दिन में कमा सकती हूँ।" उसके चेहरे पर दर्प के भाव थे और मीता को ऐसे लगा जैसे उसको चौराहे पर खड़ा कर दिया गया है। जैसे आज सवाल करने के लिये नहीं, अपितु सुनने के लिए स्टूडियो आई थी।

"ख़ुशबू, बचपन में बच्चों से पूछा जाता है कि बड़े होकर क्या बनोगे, तो क्या आप कहती थीं कि मैं बड़े होकर कॉल-गर्ल बनूँगी।"

मीता ने माहौल को बदलने के लिए नहले पर दहले की तर्ज़ पर सवाल किया। आख़िर ऐसे चुभते चुटीले सवाल करने के लिए ही तो उसको आर जे बनाया गया था। लोग रेडियो से चिपके रहें एकदम से स्टेशन न बदलें इसलिए कार्यक्रम में रोचकता और गति बनाए रखना लाज़मी था।

"मैंने तेरह बरस की उम्र में अपनी ज़रूरतें ख़ुद पूरी करनी हैं, इस बात की ज़रूरत महसूस कर ली थी। मेरा पिता रोज़ाना रात को शराब पीकर आता और उसके बाद मेरी माँ के साथ देह संबंध बनाता। जिस दिन ख़ुश होता मेरी माँ के लिए तोहफे लाता और कल्पना करता कि आज उसके ऑटो में जो मैडम बैठी थी, वह उसके साथ देह संबंध बना रहा है। माँ को एकदम उसके जैसी बनने को प्रेरित करता। मेरी माँ खिलखिलाते हुए उसकी माँग पूरी करती और बदले में कोई न कोई तोहफा माँग लेती थी। रात के अँधेरे में उनकी खिलखिलाहट और फुसफुसाहट मुझे भी उत्तेजित करती थी। सुबह दोनों सामान्य सा व्यवहार करते थे। मेरी किसी भी माँग या ज़रूरत पर मुझे सिर्फ टका सा जवाब मिलता था। पहली बार मेरे दूर के रिश्तेदार चाचा ने मेरे बदन को यहाँ-वहाँ से छुआ था और मुझे 'पापा मम्मी को मत बताना' कहकर सिल्क चॉकलेट दिलवाई थी और पर्स लेकर दी थी। उसने बस ज़रा सा छुआ ही तो था। मुझे हल्का दर्द हुआ था। हर आदमी को स्त्री को छू लेने पर कुछ न कुछ तोहफा देना होता है और यह हर स्त्री का हक हैं, मुझे यह बात समझ आने लगी थी। फिल्मों में सुहागरात के तोहफे देने के बाद शरीर छूने की कई क्लिप्स याद थीं।

उसके बाद तो वो चाचा माह में एक बार

आता और मुझे अपने तरीके से छूता और बदले में छोटे-छोटे तोहफे देता। एक बार मुझे स्कूल पिकनिक में जाना था लेकिन मेरे पिता ने मुझे पैसे देने से मना कर दिया। मैं अपने पी टी टीचर के घर गई कि आप मुझे रुपये उधार दे दो बदले में जो कहोगे करूँगी, बस मुझे पिकनिक पर ले जाओ। बस उसके बाद तो यह सिलसिला चल दिया। मुझे कुछ भी चाहिए होता था तो मुझे यह सबसे सुगम रास्ता लगता था लेकिन यह सब काम ख़ामोशी से होता था। कभी किसी ने किसी को कुछ नहीं बताया था न किसी ने मुझसे पूछा कि कहाँ से यह सामान आ रहा हैं ? बारहवीं की बोर्ड की परीक्षा के बाद मुझे मौसी के शहर में भेज दिया। इसी बीच पिता को किसी लड़की के बलात्कार की कोशिश में जेल हो गई और कुछ ही माह बाद माँ गाँव में किसी और पुरुष के साथ घर बैठ गई। वापिसी का रास्ता बंद देख मौसी ने मुझे एक फैक्ट्री में कपड़ों पर बटन लगाने का काम दिला दिया। जितने पैसे मुझे दिन भर बटन लगाने के मिलते थे उसमें मौसी कभी ख़ुश नहीं होती थी और हमेशा माता-पिता के चरित्र को लेकर ताने देती रहती थी। मैंने डबल शिफ्ट में काम करना शुरू कर दिया और एक दिन शाम की शिफ्ट में... अब ख़ुशबू का आँखें नम थी। होंठ काँप रहे थे थोड़ी देर पहले की आत्मविश्वासी घमंडी शेरनी अब मासूम सी हिरनी लग रही थी जिसकी छोटी-छोटी आँखें झील के पानी की तरह भरी थीं लेकिन अपने किनारों में जल को समेटे थीं।

पानी का गिलास उसकी तरफ बढ़ाते हुए मीता ने कहा..."तो तुम उस दिन अपनी वर्जिनिटी को खो बैठीं।"

"नहीं मैंने अपनी इज़्ज़त खोयी नहीं पायी थी। उस दिन सोच लिया कि यह शरीर कुछ भी नहीं है। शरीर की छुअन का स्वाद तो मुझे पहले भी था; लेकिन देह के देह से मिलन का दर्द उस दिन महसूस किया था। बस इसी एक पल के आनंद के लिए यह पुरुष स्त्री को खिलौना मान लेते हैं, तो अब यह खिलौना उनको कीमत चुकाने पर उपलब्ध होगा। उस शाम मैंने मुठ्ठी में दबे पैसे तो मौसी को दे दिए। दर्द से बेहाल शरीर को मौसी ने एक गोली देकर चुप कराया।

हम ग़रीब लड़कियाँ या तो मन मार कर जी लें या कुछ दिन मन का करके जी लें। मर्ज़ी हमारी है बाकी मिट्टी की देह है, एक दिन मिट्टी ही हो जानी है। किस्मत ने मुझे चूल्हा चौका और दिन भर खपने के बाद एक मर्द के नीचे सोने के लिए बनाया है। तुम चाहो तो अपनी इस मिट्टी से सोना बना सकती हो। जब तक चाहो नोट छाप लो, उसके बाद सब अपने आप तुम्हारे नीचे ऊपर आने को बेताब रहेंगे। मौसी की दबी ज़ुबान से कही यह बात मेरे मन के कोने में ठहर गई कि यह देह तो एक दिन जल जानी है; सिर्फ दो जोड़ी कपड़े देकर एक मर्द के नीचे पिसती, कुचलती देह उसे ख़ुश नहीं करती, बल्कि उसके स्नायुओं के तनाव को ही शिथिल करती है।" भिंचे होंठों और सख्त जबड़ों से स्टूडियो की दीवारों को तकते हुए मुँह से निकलते उसके शब्द स्टूडियो के सन्नाटे में हर दीवार से चिपक कर अनेक प्रश्न चिह्न से बन गए थे।

"आप देह के सौदे के बदले में रकम पाती थीं, तो क्या आप ख़ुश रहा करती थीं ?" मीता ने अगला प्रश्न किया।

"शुरू-शुरू में पेट की आग जब सुलगती है तो मज़ा नहीं, स्वाद नहीं, सिर्फ पेट भरना होता है। यह जो पेट होता है पकवान की माँग तब करता है, जब उसके पेट में थोड़ी ही भूख होती हैं। सिर्फ स्वाद बदलना होता है। प्रेम में जब देह से देह मिलती है तो आनंद अनुभव होता है और यह आनंद देर तक मिलता रहे का भाव रहता है। एक रस अनुभव होता है। लेकिन हमारे पेट की आग देह की आग से शांत होती है। हमें स्वाद नहीं, रकम चाहिए होती है। यहाँ तो हमारा ध्यान सिर्फ रकम की तरफ होता है कि क्या मिलेगा...कितना मिलेगा और यह सब कितनी देर में निपटेगा। हम किसी एक की रियासत नहीं होती हैं बल्कि किसी भी रियासत में सब हमें पाने की तलब रखते हैं।" ख़ुशबू ने ठहाका लगाया। माहौल उसकी हँसी से कुछ हल्का हुआ।

"आपको अपना आज तक का सबसे यादगार एनकाउंटर कौन सा लगा ? कौन था वह ? कितने रुपये मिले थे?"

"मुझे एक शादी में बुलाया गया था, कोई अमीर घराना था, बेचलर पार्टी थी और मुझे उसमें दूल्हे को रिझाना था। उसका आत्मविश्वास बढ़ाना था। मासूम सा दिखता लड़का थोड़ा नर्वस था। मेरे पास आने में, मुझे छूने में भी उसको पसीने छूट रहे थे। मैंने उसको बस यह कहा कि वह सिर्फ अपनी होने वाली पत्नी को याद करे और मुझे प्यार करे। उसने पूरे समय अपनी आँखें बंद रखी और मुझे उसकी मासूम मुस्कराहट आज भी याद आती है, उसने मुझे तय रकम से अलग 25 हज़ार रुपये और अपनी घड़ी दी थी। यह मेरा परफ्यूम भी जो आपको अच्छा लगा, सबसे पहले उसी ने दिया था। अब तो किसी को भी पहले ही इस परफ्यूम को लाने के लिए कह देती हूँ। ख़ुशबू के चेहरे पर सचमुच उन पलों का गुलाबीपन नज़र आ रहा था।

"क्या उस दिन के बाद आपका मन नहीं चाहा कि कोई आपकी ज़िंदगी में आए और आपको सचमुच प्यार करे?" मीता ने उस की हथेली पर अपनी हथेली रखते हुए हलके से दबाया और अपना प्रश्न हौले से कह दिया।

"किया था...बहुत किया था...कई दिन उसकी महक मेरी साँसों में समायी रही थी। कई दिन तक मैं अपने बिस्तर पर रेशमी चादर में लिपटी उन पलों को मन ही मन दोहराती थी। लेकिन मौसी ने कहा "अभी ही तो उम्र है कुछ कमाने की, यह लड़के सिर्फ प्रेमी होकर ही मासूम लगते हैं, ज़रा पति बन जाने दे, देख कैसे बीवी का पल्लू ज़रा सरक भी जाए तो ज़ख्मी शेर बन जाते हैं। कुछ आदमियों की जात कुत्ते की जात होती है सिर्फ देह पाने के लिए दुम हिलाती है। सुबह होते ही उनको ज़िंदगी की सब हक़ीक़तें/ काम याद आते हैं। मिन्नी जी, रात के कालेपन को उघाड़ने पर दिन नहीं होता बल्कि अँधेरा और घना हो जाता है।" ख़ुशबू ने ज़ोर का ठहाका लगाया।

"अब मौसी मौसा को छोड़ कर मेरे साथ मेरे फ्लैट में मेम साहब बनकर रहती हैं। कभी लोगों के घर बर्तन धोती मौसी ने अपने घर में नौकर रख लिया है। बटन लगाकर तो मैं उनको अपने हिस्से की रोटी के पैसे भी नहीं दे

पा रही थी।"

"आपका सबसे बुरा अनुभव क्या रहा?" मीता की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी।

"एक अमीर अधेड़ व्यवसायी के साथ एक रात...। गोरखपुर से दिल्ली आकर उसने तीन दिन का सौदा किया था। लेकिन पहली ही रात की सुबह मैं होटल से बाहर निकल आई थी। वह वहशी इंसान अजीब तरीके से पेश आता था। जानवर था वह। मुझे मार-पीटकर, मेरे हाथ बाँध कर उसको देह संबंध बनाना था। गुटके वाले उसके गंदे दाँत, शरीर से आती दुर्गन्ध और उस पर उसकी भाषा उफ्फ्फ ...। शरीर में कई जगह उसके काटने से नीले निशान उभर आए थे। उस पर वह इंसान अपनी कई प्रेमिकाओं के नाम लेकर ज़ोर से कभी गाली देता था, कभी चीखता था। मेरा शरीर मेरी जीविका का साधन है। मेरी सारी ऐशो-आराम की ज़िंदगी उसी की देन है। मेरा शरीर मेरा मंदिर है, मैं इसको बहुत प्यार करती हूँ। उसको सँभालना मेरा धर्म हैं। मन का क्या है न जाने कितनी बार किरच-किरच टूटा है। उस आदमी ने उस दिन मुझे तोड़ने मरोड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी।

"अब आप पूछेंगी कि यह काम छोड़ क्यों नहीं देती..।" ख़ुशबू ने अगले जवाब का सवाल ख़ुद ही बुन लिया था।

"नहीं छोड़ सकती, क्योंकि अब अलग-अलग देह का नमक चखने की आदत हो गई है...यह मन किसी एक ठौर पर ठहर कर संतुष्ट ही नहीं होगा। दूसरा...जिस तरह की ज़िंदगी जीने की आदत मुझे पढ़ गई है...जितनी आसानी से ज़्यादा पैसा यहाँ कमाया जाता है बाकी कहीं नहीं। कपड़े, गहने, खाने-पीने से लेकर प्रभावशाली लोगों तक पहुँच रखना इसी से संभव हुआ है। आज आपने रेडियो स्टेशन पर मुझे क्यों बुलाया है...! इसीलिए न कि मेरे नाम के साथ कई बड़े नाम जुड़ जाते हैं। पेज थ्री की पार्टी में मुझे बुलाया जाता है। कोई मेरा सगा नहीं है... न किसी से नाता था, न है... बस सब को मेरी देह का नमक ही भाता है। मेरी दादी कहती थी कि लड़कियों को काम सीखना चाहिए क्योंकि घर के लोग उनके काम से प्यार करते है चाम यानी देह से नहीं। लेकिन आजकल दिन भर खटने वाली लड़कियों की बजाय सुंदर देह की मालकिन लड़कियों को चाहा जाता है, पूछा जाता है।"

मीता ने उसकी बेबाकी देख हैरान थी।

"क्या ऐसा कभी हुआ कि आपको सब सावधानी बरतने के बावजूद गर्भ ठहर गया हो और आप ज़ार-ज़ार रोई हों अबॉर्शन करवाते हुए?"

ख़ुशबू ने एक सर्द निगाह मीता की तरफ डाली जैसे किसी ने उसकी जान निकाल ली हो। दिल का एक कोना सिसकारी भरकर सिसक उठा। आख़िर मन की देह के भी तो कोने होते हैं, जहाँ कोई भी राज़ अपनी जगह बनाकर छुपा भी रहता हैं लेकिन कभी एक मीठे स्पर्श से वह कोना मीठे पानी के स्रोत की तरह बहने लगता है।

नम आँखों से अपने तराशे हुए नाखूनों को तकते हुए ख़ुशबू ने जवाब दिया "एक बार...बस एक बार ऐसा हुआ...अभी पिछले बरस। मुझे एक माह के लिए 'हायर' किया गया था। मुझे ब्लाइंड डेट कहकर मालदीव ले जाया गया। एक अमीर शख्स ने गोपनीयता की शर्त पर मेरे साथ एक माह बिताया। उन्हीं दिनों लॉक-डाउन लग जाने के कारण हम तीन माह तक भारत नहीं लौट सके। पिछली जनवरी में मैंने उसकी बिटिया को जन्म दिया और जन्म के 15 दिन बाद ही उसने उस बिटिया को मुझसे क़ानूनी रूप से गोद ले लिया है। मेरी बेटी एक आलीशान घर में पल रही है लेकिन अब वह मेरी बेटी नहीं है, मेरी देह का एक टुकड़ा भर है बस उसके नैन नक्श ही मेरे होने के साक्षी हैं।"

बातों का दौर चल रहा था और मीता के सामने एक ऐसी लड़की की ज़िंदगी के कई नए पन्ने खुल रहे थे जो अपनी देह से प्यार करती थी, मन से नहीं लेकिन मन की इच्छाएँ पूरी करने के लिए देह का इस्तेमाल कर रही थी। पता नहीं देह और मन किसके लिए तुष्टि ज़रूरी थी।

"ख़ुशबू, फेसबुक पर आपके बहुत चाहने वाले हैं क्या वे आपके असली नाम से परिचित हैं? क्या आपके मित्र जानते हैं कि आप क्या काम करती हैं? आप अक्सर फेसबुक पर कविताएँ,नज़्म शेयर करती हैं जिन्हें बहुत से लोग अपनी वाल पर शेयर करते हैं ?"

"मैं फेसबुक पर अपने बचपन के नाम से हूँ जो मेरे दादा मुझे पुकारते थे...मेरे कुछ चाहने वाले जानते हैं कि मैं कौन हूँ वैसे फेसबुक पर सब कहाँ अपने असली चेहरा दिखाते हैं... रही बात लिखने की तो बस कभी-कभी जब मन ज़ोर से आवाज़ लगाता है तो देह को लपेट कर सिरहाने रख देती हूँ और वहीं रखी अपनी डायरी उठाकर कुछ नम कोने लिख देती हूँ।

आपको एक नज़्म सुनाती हूँ....

"मेरी देह का नमक / जिस-जिस ने भी चखा / उसका रक्तचाप सामान्य हो गया / मेरी देह की / मीठी-मीठी सुगंध से / सराबोर उनका पुरुषत्व / मेरी ख़ुशबू की गंध में एकाकार होकर /जब दिखलाता है अपना पशुत्व / मैं मीठी नदी बन जाती हूँ जो बुझा देती हैं उसके / सब आवेगों संवेगों को..."

समंदर में डुबकी लगाकर / अपनी रूह में मेरी देह का नमक / उनको बार-बार लौटा लाता है मेरे पास / हर पूनम की रात को / मैं ज्वार भाटा की/ ख़ुश दिखती एक लहर सी और / अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करने की चाह लिए कभी / बन जाती हूँ एक मछली / और पुरुष की देह तृप्त होकर ऐसे पहनती है लिबास/ जैसे अभी किसी तीर्थ से नहाकर/ निकला हो कोई/ और मेरी देह तब गंदी गंगा सी/ पीछे रह जाती हैं अगली बारिश के इंतज़ार में /

बाहर से गाना बजाने का इशारा हो रहा था। मीता गाना प्ले करना ही भूल गई थी, बार-बार इशारा होने पर उसने गाना बजाया- "जब छाये मेरा जादू...कोई बच न पाए।"

मीता की आँखों में अब भी और प्रश्न उभर रहे थे ... लेकिन समय सीमा समाप्त हो चुकी थी। ख़ुशबू को आज एक ख़ास संतुष्टि मिली थी... उसने दुनिया को अपने मन और तन की बात डंके की चोट पर बता दी थी...कोई अपराध बोध नहीं...हाँ वह बाय चॉइस सेक्स वर्कर है।

000

टेडी बियर

डॉ. रंजना जायसवाल

जेठ की तपिश और लू के तेज़ थपेड़ों से सिर्फ़ तन ही नहीं मन भी झुलसा जा रहा था। सब्ज़ी मंडी रघु के ठिकाने से थोड़ी दूर ही थी। गर्मी से हाल-बेहाल था, आधा किलोमीटर की दूरी भी जानलेवा साबित हो रही थी। सड़क गर्मी से पिघल रही थी, चौड़ीकरण के नाम पर सरकार ने एक पेड़ भी न छोड़ा था। खेत-खलिहान से लेकर सड़क तक हर तरफ धूप ही धूप बिछी थी। उसने एक भरपूर नज़र अपने आस-पास डाली। क्या रखा था इन बड़े शहरों में, जहाँ बसने के लिए लोग अपने घर-परिवार, खेत-खलिहान छोड़ कर आ जाते थे। माचिस की डिब्बियों की तरह छोटे घरों को घर कहने में भी शर्म आती थी पर कुछ तो था जो उन्हें यहाँ तक खींच लाता था। वह भी तो कहाँ मोह छोड़ पाया था पर गाँव में करता भी तो क्या? बंटवारे में ऊसर ज़मीन मिली थी उसको। ज़मीन की तरह उसकी किस्मत भी ऊसर ही बनी रही।

"शहर चलो मेहनत-मजूरी करके पेट भर लेंगे।" उसकी औरत ने यही तो कहा था। मजूरी कैसे होगी? उसे काम कौन देगा? किसी को जानता भी तो नहीं था वह... धीरे-धीरे घर से जो पूँजी लेकर चले थे वह ख़त्म होने लगी थी। थक हार कर उसने बेलदारी का काम पकड़ लिया। बचपन में अम्मा कहानी सुनाती थीं।

"शहर में इतने ऊँचे-ऊँचे घर होते हैं कि नज़र उठाकर देखो तो सर की टोपी गिर जाए।"

"सच्ची अम्मा!" नन्हे रघु ने आँखें गोल-गोल करके कहा था।

"और का तुम्हारे बाबू के साथ एक बार हम भी घूमने गए थे तब ही देखा था।"

"अम्मा अगर कोई सामान गिर जाए तो लोग सामान लेने कैसे जाते होंगे! छोड़ देते होंगे न... कौन जाएगा इतनी सीढ़ी नीचे उतर कर।"

अम्मा ठठा मारकर हँस पड़ी थी।

"अरे नहीं सुना है बिजली का खटोला लगा होता है, उसी से ऊपर नीचे होते हैं।" नन्हा रघु उड़न खटोले की कल्पना में डूब गया था। एक दिन वह भी उस उड़न खटोले पर बैठेगा। आख़िर वह दिन भी आया। बेलदारी के काम में सीमेंट, ईंट, सरिया को पहुँचाने के लिए अस्थाई उड़न खटोले पर उसने भी कितनी बार सवारी की थी। लगता बस हाथ बढ़ाएगा और आसमान छू लेगा पर शहर आकर पता चला आसमान तो उसकी पहुँच से बहुत दूर है। ऊपर से इंसान कीड़े-मकोड़ों की तरह छोटे और रेंगते नज़र आते। सच ही तो था उसके जैसे न जाने कितने लोग अपने सपनों के साथ यहाँ आते और बस यहीं के होकर रह जाते। वापस जाकर करते भी तो क्या... अपनों को झूठी तसल्ली देकर निकला हुआ इंसान एक वक़्त के बाद जीवन भर ख़ुद को ही तसल्ली देता रह जाता है। शहर के बीचों-बीच गगनचुंबी इमारतों के बीच सुख-सुविधाओं से लैस एक नई इमारत तेज़ी से सिर उठा रही थी। उसी के ठीक पीछे साइट से ही उठाई ईंटों से रघु ने अपनी झोपड़ी बना ली थी। रुके हुए पानी और बजबजाती नालियों के बीच रहते उसके जैसे न जाने कितने परिवार उसे कीड़े-मकोड़ों की तरह ही लगते। जिस तरह कीड़े मकोड़ों के जीवन की कोई उम्र नहीं होती। आज है कल होंगे भी या नहीं उन्हें भी कहाँ पता होता है। उनके और उनके सपनों की भी कहाँ कोई उम्र थी।

मँहगाई सुरसा के मुँह की तरह दिनों-दिन बढ़ती जा रही थी, आलू बीस तो प्याज़ चौबीस रुपये बिक रहा था। हरी सब्ज़ी खाना तो सपना हो गया था। ग़रीब आदमी आलू-प्याज़ भी नहीं खाएगा तो फिर खाएगा क्या? दो रुपया बचाने के लिए वह साइकिल घसीटते मंडी तक पहुँच जाता। मंडी में सब्ज़ी थोड़ी सस्ती मिलती थी। ठेले वाले तो अँधेर मचाए हुए थे। बासी सब्ज़ी भी

डॉ. रंजना जायसवाल
लाल बाग कॉलोनी, छोटी बसही,
मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश, 231001
मोबाइल– 9415479796
ईमेल– ranjana1mzp@gmail.com

दुगने-चौगुने दाम पर बेचते। तीन आदमी के परिवार की रोज़ी-रोटी का इंतज़ाम करने में भी छक्के छूट जाते। वैसे तो उसका बेटा चुन्नु पाँच साल का ही था पर ग़रीब के बच्चे उम्र से पहले ही बड़े हो जाते हैं। चुन्नू भी बेचारा उम्र से पहले ही बड़ा हो गया था पर मन का क्या, उसे कैसे मनाता। खिलौने खेलने की उम्र में गिट्टी और खपरैल से खेलता। खिलौने लाता भी तो कहाँ से... ज़िंदगी पल-पल जिस जद्दोजहद से जूझ रही थी, एक-एक साँस जो क़र्ज़ में डूबी हुई थी, वहाँ खिलौने के लिए पैसे आते भी तो कैसे?

रघु की औरत शांति ने झाड़ू-पोंछे का काम कर लिया था। जिस लड़की की अम्मा बलाएँ लिए नहीं थकती थी, आज वह दूसरों के घरों के जूठे बर्तन धो रही थी।

"दिन भर घर में बैठी ही तो रहती हूँ। कम से कम चार पैसे घर में तो आएँगे।"

रघु चाहकर भी उसे मना नहीं कर पाया था। जानता था सिर्फ उसकी कमाई से घर के खर्चे सँभल नहीं सकते। ठीक भी था, शांति बड़ी मेहनती थी। शांति ने सामने वाली बिल्डिंग में काम पकड़ लिया था। मालकिन दयालु स्वभाव की थी। वह शांति को कभी बासी रोटी, कभी बची हुई सब्ज़ी तो कभी आर्यन बाबा के पुराने कपड़े दे देती। आजकल रघु ने भी एक नया काम पकड़ लिया था। कलुआ उसके साथ वहीं साइट पर ही काम करता था। एक दिन कलुआ ने उससे कहा, "शाम को खाली ही रहते हो, किसी टेंट वाले से बात कर लो। शादी-ब्याह में बच्चों की पार्टी में पुतला बनकर जाना होता है ठीक-ठाक पैसा भी दे देते हैं। तीन-चार घंटे की बात होती है।" काम बुरा नहीं था, एक टेंट वाले से सिफारिश करने पर काम भी मिल गया था। भालू बनकर पार्टी में जाना होता था, पर यहाँ भी बेईमानी। छह सौ पर बात हुई थी पर किराए पर मिलने वाले कपड़े के ही तीन सौ रुपये लग जाते थे। कुल जमा तीन सौ रुपये ही हाथ लगते, पर सौदा इतना भी बुरा नहीं था। बच्चे भी ख़ुश हो जाते थे, पर आजकल के बच्चे बच्चे कहाँ रह गए हैं। कोई इधर से धक्का देता तो कोई उधर से... कोई कान मरोड़ता तो कोई हाथ खींचता। उन मोटे कपड़ों में गर्मी भी बहुत लगती थी। जाड़े की बात अलग थी पर गर्मी में...! पसीने और गर्मी से दम घुटने लगता। मोटे फर का कपड़ा पहनना इतना भी आसान नहीं था पर मजबूरी जो न कराती। उन बच्चों को देख उसे अपने चुन्नु की याद आ जाती।

इधर कई दिनों से चुन्नू खिलौनों की ज़िद्द कर रहा था। कलुवा के ससुर अपने बेटी, दामाद और नाती से मिलने साइट पर आए थे। कलुवा का बेटा कृष इकलौता नाती था उनका... जब से कृष के नाना उसके लिए वह ख़ास तरह का खिलौना लेकर आए थे। उसके तो मिज़ाज ही नहीं मिलते थे।

"गन्दा हो जाएगा नाना कितने मन से लाए हैं हमारे लिए..." चुन्नू और उसके साथी कसमसा कर रह गए थे, क्या तो नाम तो था उस खिलौने का रघु ने तो कभी सुना भी न था। उसने बचपन में कभी खिलौने खरीदे ही कहाँ थे। अम्मा पुराने कपड़ों को भरकर सिलकर पुतले बना देती थी, बस हो गया खिलौना... चुन्नू कितना रोया था उस दिन! शांति छटपटा कर रह गई थी। माँ जो थी, अपने लाडले की आँख में आँसू कैसे देख पाती। छटपटा तो वह भी गया था पर पिता था अपनी छटपटा सबको दिखा भी तो नहीं सकता था। मन ही मन कितना कोसा था उसने अपने आपको कैसा निकम्मा बाप है अपने बेटे की एक छोटी सी इच्छा भी पूरी नहीं कर सकता।

चुन्नू रोते-रोते सो गया था।उस दिन रघु और शांति ने भी खाना नहीं खाया था। चूल्हे की रौशनी से झोपड़ी जगमगा रही थी।शांति ने चूल्हे की तरफ देखा सूखी लकड़ियाँ ग़ुस्से से भड़क रही थीं पर वह लकड़ियाँ कहाँ जानती थी कि मन की आग उस से भी कहीं अधिक भभक रही थी। उसने लोटे से पानी निकालकर उन जलती हुई लकड़ियों पर छिड़क दिया। लकड़ियों का ग़ुस्सा धीरे-धीरे शांत होता चला गया और उसमें से सूँ-सूँ की आवाज़ आने लगी। शांति की आँखों से आँसू बह निकले धुएँ से नहीं अपनी लाचारी से... उसने बचे हुए पानी को गले से नीचे उतार दिया, पर उस पानी ने मन की आग को कहाँ शांत किया था। अलबते आँखों और मन में जमा पानी भरभरा कर उसकी आँखों से निकल पड़ा। उसके सिसकने की आवाज़ से पूरी झोपड़ी भर गई थी। मन खट्टा हो गया। रात भर रघु और शांति को नींद नहीं आई थी। शांति सुबह होने का इंतज़ार कर रही थी। आज उसके हाथ बहुत तेज़ी से चल रहे थे।

"कहीं जाना है क्या आज तेरा काम बड़ी जल्दी ख़त्म हो गया।" मालकिन ने कहा, शांति के मन में बवंडर मचा हुआ था। कैसे... कैसे कहे? कहीं... ज़्यादा से ज़्यादा मना ही तो कर देंगी। कहेगी नहीं तो फिर...

"भाभी जी आर्यन बाबा का कोई पुराना खिलौना हो तो... हमारा चुन्नू बाबा से छोटा है। खिलौने की बड़ी ज़िद्द करता है।"

"तुम लोगों को जितना भी दे दो कम ही रहता है।" मालकिन बड़बड़ाती हुई सीढ़ी के ऊपर वाले हिस्से में चली गई, जहाँ पुराने अख़बार, खाली बोतलें, पेंट के डिब्बे, टूटे खिलौनों से भरा कार्टून रखा था। घर की सफाई करते वक्त शांति कितनी बार घर के इस हिस्से में भी आई थी। झाड़ू-पोंछा करते वक्त ललचाई आँखों से उन खिलौनों को उसने कितनी बार देखा और पुचकारा भी था, एक टीस सी भी उठती थी। अमीरों के बच्चे जितने खिलौनें तोड़कर फेंक देते हैं उतना हम ग़रीबों को उम्र भर नसीब भी नहीं होते।

मालकिन का आज दिल पसीज़ गया था। उनके एक हाथ में बिना टायर वाली कार और दूसरे हाथ में बित्ते भर का मटमैला भालू था। जिसकी एक आँख ग़ायब और पैर उघड़ा हुआ था, जिसमें से बादलों की तरह झक सफेद रुई झाँक रही थी।

"तू भी क्या याद करेगी, ये ले रिमोट कंट्रोल कार और टेडी बियर अब तो ख़ुश है न..." शांति के चेहरे पर ख़ुशी से लट्टू चमकने लगे। चुन्नू तो ख़ुशी से पागल हो जाएगा। चुन्नु का उदास चेहरा और सूजी आँखें उसकी नज़रों के सामने घूम गई थीं। जाने क्या सोचकर उसके चेहरे पर मुस्कुराहट फैल गई।

"शांति वाशिंग मशीन से कपड़े निकाल कर ऊपर छत पर डाल आना और सुन ज़रा

छत भी धो देना। कितनी गन्दी पड़ी है।" शांति को देर हो रही थी, आज खाना भी बनाकर नहीं आई थी।चु न्नू को खिलौने भी तो दिखाने थे। वह उड़कर घर पहुँचना चाहती थी। उसके चेहरे की ख़ुशी देखना चाहती थी पर... मालकिन को ऐसे कैसे मना कर चली जाए। एहसान की कीमत भी तो चुकानी होती है। धूप से खोपड़ी चटकने लगी थी, पैर छन-छन जल रहे थे। उसने बाल्टी भर पानी फर्श पर उड़ेल दिया। देखते ही देखते मिनटों में पानी भाप बनकर उड़ गया। सचमुच छत बहुत गंदी थी। तभी मालकिन निरीक्षण के लिए छत पर ऊपर चढ़ आई, आँखों पर काला चश्मा कॉटन के दुपट्टे को सिर तक खींचे वह आसानी से पहचान में नहीं आ रही थी।

"अरे तूने झाड़ू लगाए बिना धोना शुरू कर दिया। सारा कूड़ा नालियों में भर जाएगा।"

"वह मालकिन...!"

"कितना भी कर दो तुम लोगों के लिए पर फिर भी... " मालकिन बड़बड़ाती हुई नीचे उतर गई। शांति ने जल्दी-जल्दी हाथ चलाया, धूप और गर्मी से उसका चेहरा लाल हो गया था। पसीना टप-टप चू रहा था। हलक प्यास से सूखा जा रहा था।

"भाभी ज़रा पानी पिला दीजिए।" भाभी टी वी पर नज़रें गड़ाए बैठी रही।

"रुक ज़रा बड़ा इंपॉर्टेंट सीन आ रहा है।"

शांति वहीं ज़मीन पर बैठ गई। भाभी का पसंदीदा धारावाहिक आ रहा था, काम करते-करते कई बार उसकी नज़र भी चली जाती। भाभी अंदर से एक पुराने गिलास में ठंडा पानी और प्लेट में बिस्किट ले आई, जिसमें बिस्किट कम चूरा ज़्यादा था।

"ले पानी के साथ खा ले, सादा पानी नहीं पीया जाता।" कितनी दयालु थी मालकिन... शांति ने एक साँस में पानी गले के नीचे उतार दिया और खिलौनों को पॉलिथीन में रख घर की ओर चल पड़ी। सुई धागे से थोड़ा सिल दूँगी तो खिलौना नया हो जाएगा। उसने अपने आप को समझाया। रघु भी काम की तलाश में निकला हुआ था। कई दिनों से वह परेशान ही चल रहा था। छत की ढलाई हुई थी इसलिए पन्द्रह-बीस दिन तक कोई काम नहीं था पर पेट तो यह नहीं समझता है न... कल ही टेंट वाले भइया का फ़ोन आया था। किसी के जन्मदिन के पार्टी में टेडी बियर बनकर जाना था। उसने सोचा चलो कुछ तो जुगाड़ हो जाएगा। रघु ने माथे पर बँधे अपने लाल गमछे से आँखों तक सरक आए पसीने को पोंछा और पूरी शक्ति को समेट साइकिल के पैडल पर मारा। उसने हाई वे का रास्ता पकड़ लिया। रास्ता लम्बा था पर कम से कम भीड़ -भाड़ और जाम से तो बच जाता था। पिछली बार एक मोटर साइकिल वाले ने पीछे से टक्कर मार दी थी, वो तो गनीमत थी सामने से कोई गाड़ी नहीं आ रही थी। साइकिल का रिम टेड़ा हो गया था और उसके घुटने भी छिल गए थे। किसी भले मानस से उसे उठाते हुए कहा था।

"टिटनेस का इंजेक्शन लगवा लेना, सेप्टिक हो जाएगा।" वह अनपढ़ गँवार क्या जाने सेप्टिक आख़िर किस बला का नाम है। वह उस आदमी को टुकुर-टुकुर देखता रहा। तब उसने उसे समझाते हुए बोला था।

"शरीर में ज़हर फैल जाएगा।" रघु मुस्करा दिया था, ज़िंदगी ने क्या कम ज़हर दिए थे जो एक और ज़हर... सच ही तो है इंसान को मरने के लिए एक बार और जीने के रोज़-रोज़ ज़हर पीना पड़ता है। डॉक्टर मतलब चार झमेले मरहमपट्टी, सुई, घाव सूखने की दवा, मलहम फिर ताकत का टॉनिक। कहाँ से लाएगा वह इन सबके लिए पैसे ? उसने अपनी उस टूटी हुई साइकिल को खींचकर किनारे खड़ा किया और सरकारी नल से बहते पानी से अपने घावों को धो लिया। खून रुकने का नाम नहीं ले रहा था, उसने खोमचे वाले से अख़बार का टुकड़ा लिया और अपने घावों पर कसकर दबा कर लगा दिया। बचपन में न जाने कितनी ही चोटे उसने इसी तरह ठीक की थीं। वह दिन था और आज का दिन उसने हमेशा यही रास्ता पकड़ा। लू के तेज़ थपेड़ों से तन ज़ख्मी हुआ जा रहा था। उसने पूरी ताक़त से पैडल मारा, मानों वह लू के थपेड़ों को हरा दूर भाग जाना चाहता हो। सड़क के किनारे रस्सी से लटकते झूले और रंग-बिरंगे छोटे-बड़े भालुओं को देख उसकी आँखें ठहर गई। कल रात के ज़ख्म अभी सूखे भी नहीं थे उन भालुओं को देख हरे हो गए। ज़िंदगी की जद्दोजहद से लड़ता वह भी तो कालचक्र के क्रूर हाथों में ऐसे ही लटका हुआ था। चुन्नू का चेहरा बार-बार उसकी आँखों के सामने आ जाता। "बाबा मुझे भी दिलाओगे न बड़ा वाला टेडी बियर?" कहाँ से दिलवाते! कितना महँगा आता है। यहाँ खाने को पैसे पूरे नहीं पड़ते मन बहलाने के लिए कहाँ से लाते! पर मन मानता कहाँ है। चाँद अपने पूरे शबाब पर था। आकाश में तारे चमक रहे थे। आज की पार्टी में देर थोड़ी ज़्यादा हो गई थी। वह सोच रहा था।

"क्या इस वक्त मालिक को कपड़े वापस करने जाए तब तो और भी देर हो गई जाएगी। दुकान वैसे भी बंद हो गई होगी। कल सुबह ही दे देगा।" तभी उसके दिमाग़ में एक बात आई। उस मुखोटे के अंदर भी एक दिल धड़क रहा था। चेहरे पर एक मुस्कान थी, उसने कपड़े को समेटा और पॉलिथीन में बाँध कर के रख लिया। रात काफी गहरी हो चुकी थी। उसने साइकिल को पूरी ताक़त के साथ खींचा और अपने घर की ओर चल पड़ा। झोपड़ी में ढिबरी जल रही थी, ढिबरी की मद्धिम रोशनी झोपड़ी के बाहर तक आ रही थी, उसने धीरे से दरवाज़ा खटखटाया।

"कौन?"

"मैं हूँ।" शांति ने दरवाज़ा खोला, उसकी आँखों में नींद भरी थी।

"आज बहुत देर हो गई?"

"हाँ! पार्टी बहुत देर तक चली।"

"हाथ-मुँह धो लो, मैं खाना लगाती हूँ।" शांति ने रघु के पॉलिथीन बैग को सँभालते हुए कहा।

"हम वहीं खा लिए थे।"

"आपका बढ़िया है, आए दिन बढ़िया-बढ़िया माल उड़ाते हो।" शांति ने रघु को छेड़ते हुए कहा।

"कहाँ ! गर्मी का दिन है। खाना जल्दी ख़राब हो जाता है। वह तो हलवाई बड़ा रहम दिल था, बोला फेंकने से अच्छा है कि हम ग़रीबों के पेट में चला जाए।" शांति के चेहरे पर एक सुकून था कम से कम किसी को तो पेटभर अच्छा खाना खाने को तो मिल रहा है।

"चुन्नु सो गया क्या... ?"

"हाँ, बस अभी-अभी सोया है।" रघु ने उसके सोते हुए चेहरे को देखा, नींद में भी वह कितना मासूम लग रहा था। रघु ने पॉलिथीन बैग खोला, शांति की आँखों में सवाल तैर रहे थे। इतनी रात में रघु क्या करने की कोशिश कर रहा है।

"शांति आवाज़ न करना। मैं चुन्नू के लिए सरप्राइस लेकर आया हूँ।"

"सरप्राइस!"

"सरप्राइस!" यह शब्द सुनकर शांति ख़ुद सरप्राइस थी। यह बड़े लोगों के चोंचले उन ग़रीबों की किस्मत में कहाँ... शांति आँचल मुँह में दबाए हँस पड़ी। शहर में रहते-रहते रघु धीरे-धीरे शहराती होता जा रहा था। उसने पॉलिथीन बैग से टेडी बियर के कपड़े को निकाला और पहन कर खड़ा हो गया।

"कैसा लग रहा हूँ मैं... !" शांति खिलखिला कर हँस पड़ी उसके हँसने की आवाज़ सुन चुन्नु नींद में कुनमुनाया ... उसने एक धुँधली सी आकृति अपनी छोटी-छोटी आँखों के सामने महसूस की।

उसने मिचमिचाती आँखों से अपनी ख़ुशी को सामने खड़ा देखा।

"टेडी बियर... टेडी बियर....!" एक पल के लिए उसे लगा कि वह कोई सपना देख रहा हो।

"इतना बड़ा टेडी बियर...!" उसने अपने हाथों को आगे बढ़ाया और उसके चेहरे को छूने की कोशिश की। सपना नहीं यह तो सच था, वह हड़बड़ा कर उठ बैठा।

"अम्मा देखो इतना बड़ा टेडी बियर... बापू लाए हैं ना!"

शांति झोपड़ी के कोने में खड़ी चुन्नू के चेहरे की ख़ुशी को पढ़ने की कोशिश कर रही थी। बिस्तर पर पड़ा काना टेडी बियर टुकुर-टुकुर चुन्नु को देख रहा था। उसके चेहरे पर एक चमक थी जिस चमक से उसकी झोपड़ी भी पूरी तरह से भर चुकी थी और फर के अंदर का कपड़ा भीग गया था। रघु के पसीने से नहीं बल्कि अपने चुन्नु के चेहरे की ख़ुशी से बहते हुए आँसुओं के कारण...

000

लघुकथा

आनंद आश्रम

अशोक वाधवाणी

आलोक वृद्धाश्रम में रहने वाले अपने रिश्तेदार आत्माराम से हर महीने मिलते थे। उनके बेटे द्वारा दिया गया वृद्धाश्रम का मासिक शुल्क भरते। महीने की दवाईयाँ देकर आत्माराम का हाल-चाल पूछते। वे हमेशा अपने बहू-बेटे की शिकायत करते कि न ही मिलने आते हैं और न ही फ़ोन करके स्वास्थ्य की पूछताछ करते हैं। आलोक हर बार उन्हें समझा-बुझा कर, सांत्वना देकर लौट आते थे।

हर महीने की तरह आलोक फिर वृद्धाश्रम पहुँचे। आत्माराम दरवाज़े पर खड़े हँसते-मुस्कराते हुए गर्मजोशी से मिले। हमेशा निराश-हताश दिखने वाले आत्माराम के स्वभाव में अचानक इतना बड़ा परिवर्तन कैसे आ गया ? आलोक के चेहरे पर उमड़ने वाले भावों को आत्माराम ने ताड़ लिया कि आलोक के मन में क्या चल रहा है। आलोक की जिज्ञासा शांत करते हुए कहा, हाल ही में एक 67 वर्षीय सज्जन की पत्नी का देहांत हो गया। बहू-बेटे से कहकर, स्वेच्छा से यहाँ एक महीने पहले रहने आए हैं। बड़े ही हँसमुख, ज़िंदादिल, मज़ाकिया और मिलनसार हैं। हर हफ्ते उनके परिवार वाले उनको फ़ोन करते हैं। बहू-बेटे बच्चों के साथ महीने में एक बार मिलने भी आए थे। इस सज्जन के पास रोचक-मनोरंजक चुटकुलों का पिटारा है। गंभीर वार्तालाप के बीच भी उस घटना से मिलता-जुलता कोई हास्य-व्यंग्य प्रसंग या चुटकुला सुनाकर वातावरण को हल्का-फुल्का कर देते हैं। उनकी सकारात्मक-आनंददायक और उत्साहजनक बातों से हमारे मन में उमंग, उत्साह और उल्लास का संचार होता है। उनके आने से वृद्धाश्रम में बहार छाई रहती है। उनके सुंदर स्वभाव के कारण हम उन्हें आनंद कुमार कहते हैं। आओ मैं तुम्हें उनसे मिलवाता हूँ। आलोक जब आनंद कुमार के पास पहुँचे तो देखा सभी वृद्धजन उन्हें घेरकर बैठे थे। वे अपनी लच्छेदार बातों से सभी का मनोरंजन कर रहे थे। कल तक जिन वरिष्ठ लोगों के मुख पर मायूसी छाई रहती थी, आज उनके चेहरों पर मुस्कान साफ दिखाई दे रही थी। कुछ तो कहकहे, ठहाके लगाते लोट-पोट हो रहे थे। आलोक ने आनंद कुमार से मिलकर कहा, आपकी बदौलत इस वृद्धाश्रम में रौनक लौट आई है। अब इसका नाम बदलकर आनंद आश्रम रखना चाहिए। अगर हर वृद्धाश्रम में आपके जैसा एक ज़िंदादिल हो तो सभी वृद्धजन हँसी-ख़ुशी रहने के लिए राज़ी हो जाएँगे। अपनी प्रशंसा सुनकर, आनंद कुमार के चेहरे की मनमोहक मुस्कान, बिना कुछ कहे सब कुछ बयाँ कर रही थी।

000

अशोक वाधवाणी
गांधी नगर, कोल्हापुर, महाराष्ट्र 416119
मोबाइल– 9421216288
ईमेल- ashok.wadhwani57@gmail.com

अंतराल

रजनी गुप्त

रजनी गुप्त
5/259 विपुल खंड, गोमतीनगर,
लखनऊ
मोबाइल– 9452295943
ईमेल– gupt.rajni@gmail.com

रोज़ की तरह आज भी अनिकेत कॉलेज से लौटकर सीधे छत पर निकल गया। खुले आसमान का अछोर विस्तार उसके भीतर नया जोश जगा देता, तो फर-फर चलती हवाओं संग उड़ती पतंग को देखकर सोए सपने जगने लगते। चुप्पा रहने वाला अनिकेत भीतर से बेहद नरम दिल और संवेदनशील तो था, तभी तो उसे शुरू से ही खरगोश, कुत्ते और बिल्लियाँ पालने का ज़बरदस्त शौक था। उसे याद है, जब वह सात साल का रहा होगा, तब पहली बार उसने क्रैच में एक छोटा सा पामेरियन कुत्ता देखा था; जिसे देखते ही उसका चीखना चिल्लाना अचानक थम गया था। क्रैच की आया अनिकेत को गोद में लेकर चुप कराने की न जाने कितनी तरकीबें आज़मा-आज़मा कर थक चुकी थी। तभी लॉन में अनायास कोई नन्हा सा डॉगी दिख गया जिसे देखते ही पकड़ने को आतुर अनिकेत आया की गोद छोड़कर झटपट नीचे उतर उसे अपनी गोद में लेने के लिए दौड़ पड़ा। तब उसे किसी किस्म का डर, ख़ौफ़, घबराहट नहीं हुई थी और आज भी वही हाल है। माँ उसके इस कुत्ते प्रेम को देखकर शुरू-शुरू में ख़ूब परेशान रहती मगर वे भी धीरे-धीरे समझती गईं कि अकेले बच्चे को पालना भी कितना मुश्किल है, सो जैसा वह चाहे, वे अपनी तरफ से उसे भरसक ख़ुश रखने के जतन करेंगी, चाहे जो हो जाए। जैसे-तैसे वे अनिकेत के लिए सब कुछ करने के लिए उतावली रहतीं मगर पूरी कहानी के सूत्र पकड़ने के लिए हमें थोड़ा और पीछे की तरफ मुड़ना होगा।

कुछ दृश्यावली, आपस में गुँथी लड़ियों की तरह गले में पड़ी-पड़ी बजने लगतीं- वह 10-11 साल का रहा होगा, पापा-माँ के साथ बाज़ार जा रहा है, दोस्तों संग जन्मदिन मनाया जा रहा

है, घर में ख़ूब सारे लोगों की भीड़ जमा है कि मौसी और मामा के बच्चों के संग हुड़दंग करने में वह बेहद मस्त है कि वह पापा के कंधे पर चढ़कर सबसे ऊँचे टँगे बैलून में सुई चुभो देना चाहता है। माँ ने उसके माथे पर लाल रंग की रोली लगाई है, पापा रात के 12 बजे उसे लेकर आईसक्रीम पार्लर जा रहे हैं तभी..., अनायास बीच में टूटे सपनों की डोर आपस में इतनी ज़्यादा उलझ गई जिससे वे सिलसिलेवार चल रहे सीन बदलते बिखरते गए।

पापा को दिल्ली की नौकरी छोड़ मुंबई जाना पड़ रहा है और ममा ने भी मुंबई शिफ्ट करने के लिए अपने दफ़्तर में दरख्वास्त दे दी है। अचानक कहानी में एक नया मोड़ आ धमका, पापा को विदेश जाने का ऑफर मिलते ही उन्होंने अनिकेत को बाँहों में भरकर ख़ूब ऊँचे हवा में उछाल दिया। हम तीनों बेहद ख़ुश थे, चहक रहे थे। खिड़की पर बैठी ढेर सारी चिड़ियाएँ, हमारे संग चिचियाने लगी थीं। तभी माँ- पापा का संवाद उसके दिमाग़ में बजने लगा-

'मेरी नौकरी का क्या होगा?'

'छोड़ क्यों नहीं देती उसे? आख़िर,ऐसा भी क्या चार्म रखा है उसमें? बेकार के सर्वे करती रहती हो, दिन-दिन भर दिल्ली की सड़कों पर धूल फाँकना, है न फालतू के काम?'

'मगर सरकारी नौकरी की सिक्योरिटी तो रहती है न? नहीं? याद करो, पिछले तीन सालों तक तुम्हारे पास कोई जॉब नहीं था तो मेरी जॉब के बलबूते ही तो चली गृहस्थी की गाड़ी खिंच पाई थी वरना..., कहाँ जाते हम? क्या होता हमारा? कुछ सोचा है?'

'तुम, ऐन मौके पर हमारी ख़ुशियों पर कोई न कोई रोड़ा अटका देती हो? मीता, इस टॉपिक को छोड़ो।'

'अरे! ऐसे कैसे छोड़ सकते है इस नाज़ुक मसले को? वैसे, एक आइडिया है, फिलहाल तो हम साथ-साथ इकट्ठे ही वहाँ चलकर रहेंगे, फिर देखा जाएगा बाद में, क्या करना है? ठीक है न?'

'हाँ, हाँ, गोली मारो अपनी इस नौकरी को, चलो हम निकलते हैं, बस हफ्ते भर के अंदर।'

तीनों के वे ख़ूबसूरत दिन, प्यारी सी नींद भरी रातें और सुंदर सपनीले रंगीन दिनों की आभा में खो गया था वह। दिन दिन नहीं लगता और रात रात सी नहीं। वहाँ की रातें भी वैसी ही भव्य, रंगीन, और सुनहरी रोशनियों के समुंदर में डूबी रहतीं। पता ही नहीं चल पाया कि कब फुर्र से हमारे तीन महीने कैसे ही बीतते गए। तभी एक दिन अनिकेत ने माँ को कहते सुना- 'सुनो, हम दोनों में से किसी एक के पास तो स्थायी नौकरी का ठिया होना चाहिए। तुम्हारी नौकरी का कांट्रेक्ट तो बस तीन साल का है। समय फुर्र से बीतता है, उसके बीतने का पता ही नहीं चलता। तीन साल भी ऐसे ही गुज़र जाएँगे, उसके बाद फिर क्या करोगे? बोलो?'

'तुम्हें कितनी बार समझा चुका मीता, तुम आने वाले कल के बारे में इतना सोचती ही क्यों हो? डियर, बस आज का सोचो और यह मानकर चलो कि यही है सच।' हँसते खिलखिलाते पापा ने माँ की तरफ लाड़ से देखा तभी उसे लेकर बातचीत शुरू हो गई।

'विकल, अनिकेत की पढ़ाई ठीक नहीं। देखो, दिल्ली में इसकी कितनी अच्छी स्टडी हो चुकी है जबकि यहाँ जो पढ़ाया जाता है, वह वहाँ से काफी पीछे की स्टडी है। कोई स्टैंडर्ड पढ़ाई नहीं होती यहाँ। हमारे अनिकेत में किसी बड़े आर्टिस्ट बनने के पूरे गुण हैं। देखा तुमने, कैसे चटपट बैठे-बैठे कितनी प्यारी तस्वीरें उकेर देता है सादे पन्नों पर। है यहाँ पर उसके लायक कोई शानदार आर्ट कॉलेज? दिल्ली जैसा?'

'मीता, अब तुम दिल्ली से यहाँ की तुलना करोगी, तब तो मुश्किलें होंगी ही। औरों के बच्चे भी तो यहाँ पढ़ ही रहे हैं कि नहीं? पता करेंगे तो यहाँ भी कोई आर्ट कॉलेज मिल जाएगा। पता करता हूँ, यहाँ भी कोई कॉलेज मिल जाए शायद...' सवाल हवा में लहराने लगा।

'पापा, मैं यहीं रहकर पढ़ूँगा, आपके साथ हीं रहूँगा।' कहते हुए, वह उनके बीच घुसकर बैठ गया। मीता किसी काम से रसोई में चली गई। बस बात आई गई हो गईं। ज़िंदगी कहीं खम पर आकर थम सी गई। पूरा सच कहीं एक बार में बाहर निकल सकता है? चंद महीनों बाद फिर वही सवाल पैनी तलवार बनकर रेतने लगा उनके जीवन को। वहाँ के कॉलेज में उसका एडमीशन हो, मीता ऐसा नहीं चाहती थीं। विकल के पास कोई स्थायी नौकरी तो थी नहीं, सो मन मारकर माँ- बेटा भारत लौट आए। अनिकेत का एडमीशन दिल्ली के जाने-माने कॉलेज में हो गया मगर, इस फैसले से अनिकेत का जीवन दिन-ब-दिन कठिन और जटिल होता जा रहा था।

अनिकेत की डायरी में से-

कभी दादू, तो कभी मौसी, तो कभी पड़ोस में रहती मुँह बोली बुआजी, बस इन्हीं के सहारे कटने लगा मेरा वक़्त। मम्मा को तो सुबह उठते ही अपने दफ़्तर भागना होता सो वे बड़े सवेरे छह बजे उठकर हमारी नींद तोड़ देतीं। नाश्ता बनाकर रसोई में ही ढककर रख जातीं और दरवाज़ा बंद करते वक़्त- अनि, ऑटो लॉक करके जा रही हूँ। बेटा, तू समय से उठ जाना। कॉलेज बस मिस मत कर देना। उठ जाना बेटा, अलार्म लगा है, बंद मत करना इसे वरना बस वाले शिकायत करते हैं, हाँ, सुना तूने?'

उनकी तमाम हिदायतें मैं लेटे-लेटे सुनता रहता। कभी नींद में, कभी अलसाते हुए, तो कभी आलस्य की हालत में होता जब वे हिदायतों की पुड़िया पकड़ा रही होतीं। सुनते ही झल्लाहट होती मगर मैं क्या करता? कितना बेबस, अकेला और निरुपाय था मैं? जब दादू थे तो वे ज़रूर मेरे वास्ते खाने-पीने की ढेर सारी चीज़ें बाहर से मँगाया करते मगर उनके न रहने पर कितना अकेला पड़ गया हूँ मैं? पहले स्कूल, फिर कॉलेज में भी मैं सबसे अलग-थलग रहता। अपने कम बोलने की आदत के चलते सबसे मतलब भर की बात कर पाता। कानों में आईपॉड लगाए अपनी पसंद के गाने सुनता रहता, कंप्यूटर के प्लेस्टेशन पर पर गेम्स खेलता। सूने घर की पीली-पीली दीवारों को लगातार तकते हुए तमाम जानवरों की शक्लें बननी शुरू हो जातीं। बाथरूम में दीवार पर चिपकी छिपकली को देखकर उस दिन बुरी तरह डर

गया था। डर के मारे पसीना-पसीना हो गया। बमुश्किल आवाज़ देकर दादू को बुलाना चाहा मगर अरे ! दादू की तो डैथ हो चुकी। अब कौन आएगा मुझे बचाने ? फ़ोन तक किसी तरह पैर घसीटते हुए आया और पड़ोस वाली बुआ को फ़ोन करके बुलाया था। कभी चचेरी-ततेरी बहनें आतीं तो ख़ूब मज़ा आता वरना ? घर का अकेलापन काटने दौड़ता। मेरा कोई भाई-बहन क्यों नहीं है ? सबके घरों का माहौल कितना मस्ती भरा रहता। सब अपने-अपने रिश्तेदारों के बच्चों की बातें करते नहीं अघाते, और इस सूने घर पर मैं अकेला ? किसको क्या बताता फिरूँ ? कि मम्मा सुबह सवेरे ऑफ़िस भाग जातीं फिर वहीं से हालचाल लेती रहतीं। तब मुझे ख़ूब ग़ुस्सा आता। भाड़ में जाएँ मम्मा और उनकी ये नौकरी जिसके चलते हम पापा के पास नहीं रह पाए, वरना आज उन्हीं के संग मौज कर रहा होता।

अकेले बड़े घर में इतने बड़े कमरे, मॉडर्न किचन समेत ढेर सारी सुविधाओं से अटा पड़ा रहता घर, मगर इनके बीच अकेला रहना पड़ता है मुझे। दिन भर के लंबे इंतज़ार के बाद आतीं मम्मा, 7 से 8 के आसपास, थकी-हारी, पस्त, उदास और तमाम सामानों से लदी-फदी। रात में हमारी पापा से चैटिंग होती। वे हर पाँच-दस मिनट में हमसे मेल पर बतियाते। माँ से उनकी ख़ूब सारी बातें होतीं। उनके मोबाइल पर संदेशों की आवाजाही लगी रहतीं। जो भी जितना भी, जैसा भी था, हमारे और पापा-मम्मा के बीच लगाव की कोई कमी नहीं थी। न, झूठ नहीं बोल रहा मैं। मिनट-मिनट पर वे कहतीं- आई लव यू डियर, मिस बेबी। पापा भी ऐसा ही कुछ कहते सुनते, लिख-लिखकर भेजते रहते। कभी कभार हमसे भी बातें होती रहतीं।

पापा इस बार जब हिंदुस्तान आए, तो मेरे लिए प्यारा सा सफेद बतखनुमा झबरीला कुत्ता लेते आए, जिसका नाम मैंने टाइनी रखा। अब मैं अपना अकेलापन उसके साथ बाँटने लगा। उसके साथ ख़ूब खेलता। कभी उसके मुँह में बॉल दे देता तो कभी सॉफ्ट ट्वॉयज़, जिसे वह मेरी मर्ज़ी से यहाँ- वहाँ रख देता। टाइनी के साथ मेरा वक्त मज़े से कटता। जीवन पहले से ज़्यादा सरल और मज़ेदार लगने लगा। बचपन में कुछ साल तो मैंने अपनी मौसी के यहाँ रहकर बिताए, फिर पापा माँ के साथ विदेश और देश के बीच आवाजाही में और अब पूरी तरह दिल्ली में अपनी टाइनी के संग। जैसे ही मैं घर में पाँव रखता, वह दौड़ता हुआ सीधे मेरे पैर पकड़ लेता और फिर मुझे हिलने तक नहीं देता। यहाँ तक कि वाशरूम में जाना भी मुश्किल होने लगता। वह वाशरूम के बाहर तब तक बैठा रहता जब तक कि मैं बाहर नहीं निकल आता। मैं पढ़ाई करता तो वह मेरी मेज़ के नीचे घुसकर बैठा रहता। जो भी उसे खाने को देता, वह झटपट ख़त्म कर देता लेकिन माँ के हाथ का खाना बड़े नखरे से खाता। अचानक एक दिन पड़ोस में रहने वाली बुआ उसे टहलाने ले गईं। पता नहीं कैसे अचानक किसी और के कुत्ते ने उसके गले पर ज़ोर से काट लिया। बुआ ने बदहवास होकर मुझे फ़ोन लगाया- अनि, घर की चाबी लेकर आओ, जल्दी टाइनी को अस्पताल ले जाना है। चूँकि मम्मा हमेशा की तरह ऑफ़िस में थीं, इसलिए बुआ संग अस्पताल के चक्कर पर चक्कर काटता रहा। टाइनी को पूरे दस टाँके लग गए, ये क्या? टाँका लगते ही उसे दिखना बंद हो गया। अब तो मैं ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा था। माई डियरेस्ट टाइनी, तुम नहीं देख पाओगे तो मैं किसके साथ कैसे खेलूँगा अब ? सोचकर मेरा जी हलकान होने लगा। मैंने भागते, दौड़ते, हाँफते हुए डॉक्टर के पैर पकड़ लिए- 'डॉक्टर अंकल, प्लीज़, प्लीज़ इसकी आँखें ठीक कर दीजिए। मैं इसके बिना नहीं जी सकता। मेरा गुज़ारा नहीं इसके वगैर। प्लीज़ अंकल, प्लीज़।' कहते हुए, मैं बुक्का फाड़कर रो पड़ा।

'अच्छा, ठीक है। तुम शांत रहो। प्रे टु गॉड!' कहकर वे ऑपरेशन थिएटर में चले गए। मैं आँखें मूँदे अपने साईं बाबा की याद करता रहा। मेरे बाबा, मेरे गॉड, प्लीज़ सेव हर। टाइनी इज सो क्यूनट, सो प्रिटी, जो भी उसे देखता, यही कहता। यहाँ तक कि मेरी नई बनी दोस्त परी तो उसे देखते ही ख़ुशी के मारे चिल्ला पड़ी थी- 'अनिकेत, कितनी प्यारी, कितनी स्वीट है यह तो। इसकी आँखों में भोलापन है, कैन आई टच हर।' वह मनुहार करने लगती थी। तब मैं कितने गर्व, कितनी ख़ुशी और कितने उत्साह से भरा रहता था। पुलकित होते हुए मुँह से अचानक से निकल गया था-'यस, ऑफ कोर्स, यू कैन टच हर।' धीरे-धीरे हम दोनों उसे लेकर पज़ेसिव होते गए। हमारी प्रार्थना गॉड ने सुन ली थी। टाइनी की आँखों में रोशनी लौट आई थी और वह ठीक होकर फिर से हमारी ज़िंदगी का अटूट हिस्सा बनती गई।

विकल-मीता

'कितना मुश्किल होता है, एक दूसरे के इतने करीब होकर फिर अचानक एक दूसरे से हज़ारों किलोमीटर दूर होते जाना। मीता, शायद इन दूरियों ने ही हमारे प्यार को बरकरार रखा है। सच बताऊँ, तुमसे इतना अटैच फील करता हूँ कि तुमसे अलग रह पाना मेरे लिए कितना कितना मुश्किल है।'

'हाँ, विकल, मेरे लिए भी ख़ुद को बैलेंस रख पाना आसान काम नहीं है। जब से हमें ये फ्लैट लेना पड़ा तो इसकी हर महीने की किश्तें भी तो भरनी पड़ती। चार साल हो गए, किश्तें भरते-भरते, ख़ैर, अब ये सब छोड़ने का नहीं ! कि तुम हमेशा-हमेशा के लिए, यहीं रह जाते तब हम कितनी बेफ़िक्र और मस्त ज़िंदगी का लुत्फ उठा रहे होते। नहीं ? कितनी मज़ेदार ज़िंदगी जी रहे होते हम...।'

'रहने दो, यह सब। जो मैं अभी कह रहा हूँ, वैसे चली चलो यहाँ से, फिर देखा जाएगा जो जैसा होना होगा, देखा जाएगा। ज़्यादा सोचने का नहीं मीतू।'

'अब तो हमने अनि का एडमिशन भी करा दिया। उसकी लंबी-चौड़ी फीस भी भर दी। वहाँ विदेश में कहाँ हैं ऐसे कॉलेज ? फिर, बोलो, ऐसे कैसे सब छोड़-छाड़ कर चल दें यहाँ से? नॉट पॉसिबल डियर।' सवाल ही सवाल लटकते रहे औंधे मुँह। पैसे का मोह किसे नहीं होता ? एक तरफ थे हर महीने के सत्तर हज़ार रुपये, तो दूसरी तरफ था पति का बेशुमार प्यार, बेफ़िक्र लम्हे यानी सादा सरल जीवन। दाम्पत्य सुख की तस्वीरों में अनायास

मनचाहे रंग भरे जाने लगे। वे तीन-चार महीने इकट्ठे रहते तो जैसे एक साथ तीन-चार साल जी लेते। उनके लिए, हर दिन रंगीन फव्वारों वाले ख़ुशनुमा गुलाबों से महकता रहता तो रात कहीं इस होटल तो कहीं उस होटल में डिनर। अनिकेत के लिए भी ये लम्हे मस्त, सुनहरे रंगों वाली परी देश से आई राजकुमारी जैसे दिन। अनिकेत पापा के साथ ख़ूब बतियाता, सुंदर सुखद भविष्यत के साझे ताने-बाने बुने जाते लेकिन उस समय के गुज़रते ही फिर से उसे अपने सुनहरे कटघरे में कैद रहना पड़ेगा, इस हकीकत को वह सोते-जागते कभी नहीं भूल पाता।

'अनि, इधर तो आ। तेरी काली डायरी है कहाँ ? इस डायरी में तू क्या क्या लिखता रहता है ? बता न।'

'कुछ नहीं पापा। आपने कुछ पढ़ा क्या? ग़लत बात पापा। अनफेयर...' वह अचानक ग़ुस्सा होने लगा।

'पर मैंने तो कुछ भी नहीं पढ़ा ? मैं तो बस पूछ रहा था, लिसन यार, अभी तक तेरी कोई गर्लफ्रेंड बनी की नहीं ?' उन्होंने उससे चुहल करनी चाही। उसने गर्दन हिलाकर नकारा तो वे हँसते हुए, बोल पड़े- 'क्यों नहीं बनी ? कब तक दूध पीता बच्चा बना रहेगा? तेरी उम्र के बच्चों से लड़कियों की दोस्ती होती है न, फिर तेरी क्यों नहीं बनी ? बोल ? अच्छा, अब शरमाना बंद कर और खुलकर ज़िंदगी जीने का लुत्फ उठा। समझ रहा है न, मैं क्या कह रहा हूँ ?' वह हूँ, हाँ, कहते हुए, किसी अख़बार के पन्ने पलटता रहा।

सेम हियर-

कॉलेज डे पर मैंने ड्रम्स बजाया। हाथ पैरों की लय, गले से निकलती धुनें और मदहोश कर देने वाले तेज़ संगीत के बीच थिरकते जोड़े। ये कला मैंने पापा से सीखी। पापा सितार बहुत अच्छा बजाते फिर वे पियानो बजाने लगे लेकिन उन्होंने मुझे ड्रम्स बजाना सिखाया। दोनों हाथों को क़ायदे से सोते जागते हुए, दोनों पैरों की जुगलबंदी बिठाते हुए, कभी तेज़ तो कभी मद्धिम गति से घुटनों को ऊँचा-नीचा करते हुए बजाते हुए अंत में एक खम देकर छोड़ देना। इतना तेज़, ऊँचा और लंबा कि सुनने वाला जहाँ का तहाँ खड़ा रह जाए। फाइन आर्टस सर्किल में इंदौर से नई लड़की आई थी अपराजिता। उस दिन सबसे पहले उसने मुझे कांग्रेचुलेट किया, दोस्ती का हाथ आगे बढ़ाते हुए। मुझे उससे बात करके बहुत अच्छा लगा। वह भी मेरी तरह मितभाषी और नफ़ासत पसंद थी वो। सबसे मतलब भर का धीमे से बोलती वह, यानी एक निश्चित दूरी बनाकर। उस साँवली, लंबी पतली लड़की की आँखों में ज़बरदस्त जादू था तो बालों में ख़ुशबू ही ख़ुशबू। उसकी वे पतली उँगलियाँ और नाज़ुक सी हथेली छूने की सोचते ही अनायास अपनी मुलायम रोंएँदार टाइनी की याद आने लगती। हमारी वह मासूम टाइनी पिछले महीने गुज़र गई, शायद इसीलिए, हरदम मैं उसी को यहाँ-वहाँ खोजता फिरता हूँ। इसीलिए मैं अपराजिता और टाइनी का मिलान कर बैठा। अजीब तरीके से हुई थी हमारी दोस्ती की शुरूआत-

'तुम्हारे कितने भाई बहन ?'

'कोई नहीं। और तुम्हारे ?'

'सेम हियर।'

'पेरेंट्स इन जॉब ?'

'सेम हियर'

हम साथ-साथ पहली बार इस जवाब पर हँस पड़े जैसे कोई बादल उमड़कर गुज़रा हो वहाँ से।

'इत्ते बड़े फ्लैट में अकेला रहना कितना बोरिंग न ? सूने घर में अकेले पड़े-पड़े कुछ भी करने का मन नहीं करता न ?'

'सेम हियर टू...' फिर से तीसरी बार हम ताली पीट-पीटकर हँसने लगे थे। अनायास आसमान में बादल छाते गए। आकाश की रंगीन चुनरी में से टपकने लगी थी बूँदें। हम फुहारों में भीगने लगे थे। हम ज़ोर-ज़ोर से बतियाने लगे। संग साथ हँसने लगे। पता ही नहीं चल पाया, कब हमने एक दूसरे की हथेली थामी, कब हमने एक दूसरे के गले में हाथ डालकर ज़ोर से हग किया, कब हम साथ-साथ छत पर जाकर नीले आसमान तले बाँहें फैलाकर एक दूसरे में खोए रहे, कब हमने प्यार के मौसम में नई-नई चित्रावलियाँ बनाईं, कैसे हमारे स्केचेज सबसे अलग, सबसे निराले अंदाज़ में बनते गए, कुछ भी पता नहीं चल पाया, सिवा, इसके कि हमने ड्रम्स बजाते वक्त नया स्टाइल ईजाद किया और हमारी जोड़ी कैम्पस में जानी जाने लगी। कब हमने अनायास पहली बार एक दूसरे को चूमना शुरू किया, कुछ भी सिलसिलेवार याद नहीं पड़ रहा सिवाए इसके कि, हमने अरसे बाद अपना-अपना एकांत, अपना-अपना आकाश एक दूसरे को सौंपना चाहा। इस दोस्ती को क्या नाम दूँ, नहीं पता। अरे यार, कोई गणित थोड़े न होती है ज़िंदगी ? ज़िंदगी के अपने उसूल होते है जो बिना किसी के दखल के अपने निजी फार्मूले ख़ुद ईजाद करते हैं। धीरे-धीरे हमारे बीच ऐसी मज़ेदार संगति बैठी कि हम साथ-साथ कॉलेज और घर के बीच आवाजाही करते रहे।

पता नही कैसे पापा ने सबसे पहले इसकी नोटिस ली। मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए, बोल पड़े- 'अरे, यार अनि, तू तो एकदम से बड़ा दिखने लगा ? बस छह महीने में ही इत्ता समझदार कैसे बन गया तू ? मस्ती करना सीख यार ? मिलवाएगा नहीं अपनी उस दोस्त से ? ऐ, शरमाना बंद कर। अपनी माँ को बताया कुछ ?'

माँ -पापा के बीच प्रेम की गर्माहट बदस्तूर कायम रहीं। दोनों के बीच प्रेमालाप चलता रहता। ? वे घंटों एक दूसरे को तसल्ली बख्शने लायक शब्दों की बौछार करते रहते। ऐसा करते हुए, वे न जाने किसको कितना ख़ुश कर पाते, नहीं पता। शायद अपने आपसी भरोसे को मज़बूत करते हों। मैं रोज़ सुबह जल्दी उठकर घर से निकल जाता, सालों से एक जैसा रूटीन, माँ का नौ बजे दफ़्तर के लिए निकल जाना और मेरा दस बजे का कॉलेज। फिर सारा दिन अपराजिता के संग घूमना फिरना। हमारी दोस्ती के रेशे लहराते विस्तार लेते रहे। उस दिन आसमान साफ था, मानों उसके रंग को किसी ने निचोड़ लिया हो पूरी तरह। उसे निहारते रहने से अकेलेपन का अहसास गहराने लगता। उसी दिन अचानक अपराजिता घर आ धमकी। मम्मा से मिली। मम्मा ने उसका खुले दिल से स्वागत किया। ख़ूब सारा प्यार जताया, गले लगाया और मुझे

उनको ऐसा करते देख अपना जीवन सरल सहज नदी सा साफ सुथला लगने लगा। बुआ जी समेत मम्मा ने हमारे रिश्ते पर स्वीकृति की मुहर लगाने में ज़रा भी देर नहीं की। मम्मा के सामने ही वह अक्सर हमारे घर आने लगी। फिर उनकी सहमति से हम घर पर ही मिलने भी लगे। सच तो यह है कि मम्मा से कुछ भी छुपाना नहीं चाहता मैं। वे काफी कुछ समझती हैं मुझे। सो मेरी आज़ादी में कभी दखल नहीं देतीं। अपराजिता उन्हें भी पसंद है, बातों-बातों में वे यह जताना कभी नहीं भूलतीं कि वे मन ही मन उसे अपनी बहू मान चुकी हैं। उनकी सोच से मैं भी ख़ुश होता और कौओं को दाने चुगाने छत पर नियम से सुबह-शाम जाने में मज़ा आने लगा।

उगता सूरज देखकर मन ख़ुशी से भर जाता।

कहाँ हमारे सीधे-सादे घरों से मिलती स्वीकृति और कहाँ अपराजिता का रूढ़िवादी परंपरा प्रिय पंडित परिवार। मेरे घर वालों की सहज स्वीकृति देख वह सचमुच हैरान रह जाती। मैं उससे कहता- बड़े शहरों का कल्चर है यह, मगर दकियानूसी परिवार में पली-बढ़ी अपराजिता को यह सब अचंभा लगता। सच तो यह था कि वह यह सब देखकर ख़ूब ख़ुश होती। बात-बात पर चिड़िया जैसी चहकती रहती फिर ख़ुश होकर एक-एक बात दुहराती रहती। हमारी पढ़ाई, कला व संगीत बदस्तूर चलता रहा। ऐसे ही एक दिन हमारे फाइनल एग्ज़ाम्स भी आ गए।

रुपहली रात के बीच-

विकल और मीता, दोनों रात होते ही पति-पत्नी का चोला उतार झटपट प्रेमी-प्रेमिका का रूप धर लेते। उनके बीच सुनहरे रोएँ वाली रंगीन परी नए नवेले सपने लेकर आ धमकती और उनकी आँखों में सपनों का घोल उड़ेल देतीं। उनके बीच प्यार भरी मान मनुहार की बातें चलती रहतीं। ईचैट, मोबाइल संदेश और जब इनसे भी मन न भरता तो वे फ़ोन पर अपनी अंतरंगता के एहसास को जीते रहते। आज के इस ज़माने में यह सचमुच हैरानी की बात लगती कि सुबह होते ही मीता रात वाली बातों के रेशमी सितारे अपने बैग में ठूँस ऑफ़िस चल देतीं। दरअसल उनकी अपनेपन बातों के जादुई पंख इतने चमकदार, नाज़ुक व बेशकीमती होते, जिनके सामने तनाव भरी बातें भी उसे फीकी लगने लगतीं। जब वे प्यार के मानसरोवर में अनगिनत डुबकियाँ लगा रहे होते, उसी वक्त उनका बेटा भी नेट पर अपनी गर्लफ्रेंड से उलझा होता। दोनों दो अलग-अलग छोरों पर अपने-अपने कमरों में रात भर अपने-अपने प्रेम के अनूठे पन व उधेड़बुन में संलिप्त रहते। उनकी जीवन बेशक आभासी था यानी सचमुच का समागम हो नहीं पाता, सो इस तरह दिन पर दिन गुज़रते रहे, ऐसे ही।

सच का एक पहलू तो यह भी था कि गहरी रात में तीन बजते-बजते जब मीता की नींद टूटती तो वे हमेशा की तरह तनाव से घिर जातीं। विकल की प्यार भरी बातों का तिलिस्म धीरे-धीरे टूटने लगता जैसे नकाब उतरने के बाद किसी की असली सूरत नज़र आती है। सदा की तरह सूना बिस्तार, दीवारों पर टँगी पारिवारिक तस्वीरें और हर जगह विराजमान गाढ़ा अँधेरा उनके गहरे एकांतवास को और ज़्याद गहराता जाता। ऐसा कितने साल और चलेगा ? प्रतीक्षा भरे अंतहीन न जाने कितने साल तो सर्र-सर्र निकलते गए। जब वे जवान थीं, सुंदर थीं, अच्छा गातीं थी और तमाम बौद्धिक बहसों में शरीक हुआ करतीं। ऐसे ही किसी प्रोग्राम में टकराईं थी विकल से जो उसकी तार्किक बातों से सम्मोहित होकर पूरे धीरज के साथ उसे सुना करता। शादी से पहले की एक ही शर्त थी -जब तक हम एक दूसरे को ठीक से समझ नहीं लेते, तब तक हम शादी नहीं करेंगे, पूरे पाँच साल बाद हँसी-ख़ुशी शादी की।

देखते-देखते पाँच साल मुंबई, दस साल दिल्ली और दस सालों से तो हम दोनों अलग-अलग दो ध्रुवों पर। वह कई बार ख़ुद से सवाल करतीं- क्या महज पैसों की खातिर ? अनि की पढ़ाई की ख़ातिर उसने पति से दूर रहकर नौकरी का फैसला लिया था ? पैसों की असुरक्षा कई बार पैदा हुई थी। पहली बार तब जब विकल को मुंबई की प्रोडक्शन कंपनी का हैड बनाया गया लेकिन महज छह महीने में ही उसे दिल्ली लौटना पड़ा। वहाँ के जीवन में इतनी जटिलताएँ पैदा होने लगीं, जिनसे भागना ज़रूरी लगने लगा। मीता अपना तबादला मुंबई कराकर उसके पास पहुँची, तब तक वह विदेश यात्रा की तैयारी में। दिल्ली में कई साल बेरोज़गारी का दंश भुगतना पड़ा। इंटरव्यू के कई राउंड से गुज़रने के बाद अंत में विकल को बाहर का रास्ता दिखा दिया जाता। वह दिल्ली भागी-भागी लौटी तभी अचानक विकल विदेश जाने की तैयारी में था। सो अपना सामान रखने के वास्ते इस फ्लैट को लेना पड़ा। वह लेटे-लेटे न जाने कितनी बार कितने कोनों से अब तक जिए अपने जीवन की मीमांसा कर डालती।

सुबह सोकर उठीं तो हमेशा की तरह अनि अटपटी मुद्रा में बेसुध सोया हुआ, पैर सिकोड़े, दीवार से सटा बदन। न जाने क्यों, सूनेपन और भावशून्यता का अहसास कचोटने लगता। हम दो एक छत के नीचे रहते हुए कितने अजनबी से बनते जा रहे हैं ? वह अपनी घड़ी की सुई को देखे जा रही थीं मानों इसकी सुई ने चलना बंद कर दिया हो। हल्के बालों से ढका माथा, शिथिल देह और कुछ ज़्यादा ही ढीला चेहरा पर अपने अहमक होने का भाव चस्पा। मीता ने झटपट सादा नीला सूट डाल लिया। वृत्ताकार गोल बिंदी और सपाट चेहरे पर बिछे एक जैसे भाव, चौकस व संयत बोल। मीठी ज़ुबान से झरने लगते व्यवहारकुशल नपे तुले बोल।

'तो तुम्हारा यहीं रहने का इरादा है, पक्का?' पति के भीतर ग़ुस्से की आकस्मिक धारा फूटने को थी तभी उसने नरमी से संयत भाव से गर्म बात को सँभाल लिया तो आप भी मुझे ही कसूरवार ठहरा रहे हैं ? मैं कितनी बार कहूँ कि मेरा इरादा सिर्फ पैसा कमाना कतई नहीं है, अनि की स्टडी। बार-बार वह ख़ुद से सवाल जबाव करते-करते थक जाती। वह सोचते-सोचते थक जाती और थकते-थकते सो जाती। सोते-सोते जागती रहती और जागते-जागते आँखें मींचे पड़ी रहती। वह और विकल, विकल की वह हँसने-हँसाने वाली बातें रोज़ साथ-साथ खाना बनाते हुए एक दूसरे को खिलाना फिर देर रात हाथों में हाथ डाले पार्क में घंटों टहलते रहना। लोग बाग

उनकी जोड़ी पर रश्क करते। वे मुँह पर कहने से नहीं चूकते- 'कर लो, ख़ूब मज़े कर लो, बस महीने दो महीने के लिए ही न, सो मुट्ठी में बंद कर लेना एक दूसरे को। फिर तो जाना ही होगा न?'

कहीं प्रेम को क़ैद करके रखा जा सकता है ? काश, ऐसा हो पाता तो वह ज़रूर विकल को सात तालों में बंद करके रखतीं। फख़्र से बोलते हुए वह विकल की बाँहों में समा जातीं। ऐसे मौकों पर विकल भी उसके काँपते हाथ पर हाथ रखकर प्रेम का इज़हार करने से न चूकता। समय चुटकियों में निकल जाता। उनके ऐसे प्रेम में डूबे महीने। उसे महीने भर रहकर लौटना पड़ता और वह यहीं अकेली रह जातीं, इन्हीं दरोदीवार में क़ैद, नौकरी करती, किशोरी से प्रौढ़ा में बदलती अपने को आइने में देखती-समय तो भागता जा रहा है मगर हम न तो उसे पकड़ पा रहे हैं, न जी पा रहे हैं, सोचते-सोचते थका डालती ख़ुद को। कहीं कोई तीसरा रास्ता भी हो सकता है क्या ? आम औरत की तरह चीख चिल्लाकर क्यों नहीं वह अपनी कुंठा या तनाव को बाहर निकाल पाती ? अकेलापन ऐसा बनैला भूत है जो उसे कैसे भी नहीं छोड़ पाता। आर्थिक असुरक्षा का भूत उसे अकेला पा जब तब उसकी पीठ पर सवार होने लगता। जब वह पति संग विदेश होती तो पति के दफ़्तर जाते ही वह सारा दिन घर पर रहते-रहते बुरी तरह ऊब जाती। मन नहीं लगता तो सो जाती। सोते जागते हर पल दिल्ली जैसा ही खालीपन पसरा रहता। शाम को वे साथ साथ घूमते, खाते-पीते और सैर सपाटे में मस्ती करके सो जाते। वह दोनों ज़िंदगी की तुलना करती रहती- दिल्ली में कम से कम ऑफ़िस तो है जहाँ वह अपने सहकर्मियों संग मज़ेदार बातें करके चार पैसे कमाकर अपने होने की वजह ढूँढ़ लेती। पच्चीस सालों से घर बाहर की भरी-पूरी ज़िंदगी जीते-जीते उसे उसी तरह की व्यस्त ज़िंदगी जीने की आदत जो पड़ गई है कि वह दफ्तर जाकर जीवन की सार्थकता को महसूसे, अधीनस्थ लोगों को डाँट फटकार कर काम ले, बैठकों में शरीक हो, नीतिगत फैसलों में अपनी राय ज़ाहिर करे। चूँकि वह संगठन में उप निदेशक जैसे महत्त्वपूर्ण पद पर है, तभी तो उसे कितनी सारी इज़्ज़त या रुतबा हासिल है, ऐसे ही अनगिनत तर्कों से वह ख़ुद को समझाने लगती। कभी पैसों का गणित तो कभी बच्चे का कॅरियर तो कभी अपने होने का अर्थ, पैसों को लेकर वह विकल से क्यों खुलकर कुछ नहीं कहतीं ? मुँह खोलकर अनि भी तो उनसे पैसों की बावत बात नहीं करता, ये कैसा घनचक्कर है ? कब तक वह त्रिशंकु की तरह लटकी रहेगी अनि और विकल के बीच ? क्या पैसे कमाना जीवन को सोद्देश्यपूर्ण बना सकता है ? सोचते हुए अँधेरे में डूबी चेतना उभरकर सिर उठाने लगी और उदासी फैलती गई चारों तरफ। आसपास का समूचा माहौल अँधेरे में डूबता लगा। ख़ुद को रात के हवाले कर दिया तो रात की दमघोंटू अँधेरी गहराइयों ने धर लिया उसे।

कभी लगता जैसे उसका सारी जीवन अनवरत इंतज़ारी में ही बीत गया। कभी-कभी सोचती हूँ जैसे किसी सपने में चलकर अपने पति के पास चली जाती हूँ, सोते जागते या अधनींद के बीच जीते-जीते निकल गया पूरा जीवन। अँधेरे के पार कोई भी साफ तस्वीर क्यों नहीं दिखती उसे ? सालों पहले भी तो ऐसा ही लगता था जैसे नींद में लेटे-लेटे अनायास कानों में अनि की आवाज़ सुनाई पड़ती थी, तब नींद अधनींद के बीच पलकें खोलकर बालकनी की तरफ ख़ुद को ला पटकती जहाँ सिवा, अँधेरे और सन्नाटे के कुछ और आर-पार नहीं दिखता था। कभी कभार उसी अधनींद के बीच लगता जैसे अनि की आवाज़ सुनाई पड़ी, चौंककर उठती, आवाज़ तो ज़रूर है मगर वह मेरे घर के दरवाज़े पर नहीं रुकी, वह तो किसी और के घर की तरफ....

क्या कहूँ अपने इस टुकड़ों-टुकड़ों में बिखरे-बनते, उधड़ते जीवन बेरंग जीवन को पुराने स्वेटर की तरह कितने ही कौशल से क्यों न बुना उधेड़ा जाए मगर पुरानी ऊन के टूटने की संभावना हमेशा बनी रहती है। तो क्या वह हमेशा ऐसे ही पुराने समय के आइने से अपने जीवन में पसरी ख़ामोशी और अकेलेपन को देखने के लिए अभिशप्त है ? पुराने समय के भीतर घुसकर ऐसा लगता है जैसे सालों पुराने जर्जरित खंडहरों में तब्दील होते घरों की तरह हमारे मन भी खोखले खंडहरों की तरह मकड़ियों के बुने जालों से अटा-पड़ा है। अपने इन कालातीत विचारों के जालों को साफ नहीं किया गया तो, आज की तस्वीरें भला कैसे नज़र आएँगी। जल्द ही साफ करने की तरकीब सोचती हूँ।

और एक दिन खुल गया था सिम सिम दरवाज़ा-

यह तो सचमुच ईश्वर का सबसे बड़ा चमत्कार है, एक नायाब तोहफा मिला है हमें सो हम जमकर सेलिब्रेट करेंगे, और क्या ? कितनी कितनी मन्नतें माँगीं थीं हमने इस दिन की ख़ातिर ? वे सब एक-एक करके पूरी करेंगे, कहाँ- कहाँ जाकर मत्था टेकना है। हाँ, हमें सब याद है, सब कुछ.... खुमारी और उत्साह के मारे मीता के ज़मीन पर पाँव नहीं पड़ रहे। चेहरा जैसे नया लिबास पहनकर कैसी अनूठी कौंध बिखेरने लगा जैसी कौंध किसी मेकअप किट में मुमकिन नहीं थी। वे पड़ोसिनों को मिठाई का डब्बा बाँट आईं। बाज़ार जाकर जमकर खरीदारी करती रहीं। न जाने कितने सालों से कितने सारे काम लटके पड़े थे - इसे तभी करेंगे, जब तुम इंडिया लौट आओगे। हाँ, तभी खरीदेंगे ओपाला कार। सुनो, विकल, आज हम शाम सालों पुराना सपना साकार करेंगे। तुम सितार बजाना - 'आज मदहोश हुआ जाए, रे, मेरा मन, मेरा मन'

'अब बस भी करो मीता, बहुत हो गई। अब तो हमें हमेशा इकट्ठे ही रहना है तो इसमें इतना झूमने नाचने गाने की भला क्या ज़रूरत? वक़्त कब किसने देखा है ? क्या पता कब फिर से कहीं उल्टा-पुल्टा न घट जाए।'

वह अचानक कहीं से दौड़ती हुई आई और पति के होठों पर अपना हाथ रख दिया- 'आइंदा से कभी ऐसे कुबोल न बोला करो। हाँ, कहे देती हूँ। बड़ी मुश्किल से अब हमारे सपनों को पंख मिल पाए हैं विकल। सुनो राम जी जब चौदह साल बाद अयोध्या लौटे थे तो पता है, उर्मिला ने क्या कहा था -'सूरज का

ताप न रहा, कोई बात नहीं मगर रातों की चाँदनी तो हमेशा रहेगी हमारे पास।' वे अपनी रौ में बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए लगातार बोलती जा रही थी, सालों से बंद सूखे झरने में अनायास पानी आ गया हो।

'अच्छा, अच्छा, ठीक है। ओके बाबा, अब जल्दी से नाश्ता दो। मुझे सुबह हर हाल में छह बजे निकलना होगा और हाँ, रात को कब लौटूँगा, बता नहीं पाऊँगा। प्लीज़ डोंट वेट फॉर द डिनर। ओके ?'

'ठीक, मंज़ूर है। सब कुछ मंज़ूर है मेरे आका', प्रफुल्लता से चहकते हुए बोली और लडियाते हुए पति के गले में बाँहें डाल दीं।

'मीता, बस अब रहने भी दो ये सब। बच्चों जैसी हरकतें करने की उम्र कहाँ रही अब?'

'अरे ! हमारे लिये, बसंतोत्सव तो अब आया है, क्या करें ? हम तो ऐसे ही जिएँगे, समझे मेरे बुद्धूलाल।' प्यार के अतिरेक से उन्होंने पति की नाक दबाते हुए उनके सिर के बालों पर हाथ फेरना चाहा मगर, यह क्या ? उनके सिर पर बाल तो न के बराबर रह गए थे। विकल का रूटीन दिनों दिन व्यस्त होता गया। उसे यहाँ बैस्ट देकर औरों से कम ही मिलता था फिर भी वह प्राणपण से जुटा रहता। काम के घंटे दस से बारह तक खिंचते गए। वह अक्सर थका-हारा कभी ग्यारह बजे रात को तो कभी बारह बजे लौट पाता। घड़ी की सुइयों पर टिका मशीनी जीवन पूर्ववत् चलने लगा। जल्दी ही घर उसके लिए शरणस्थली में तब्दील होने लगा। न तो उसके पास मीता की बढ़ती फरमाइशों को पूरा करने का मौका मिल पाता, न वह इतने पैसे कमा पाता कि कैसे भी बेइंतहा खर्च कर सके। उनके जोड़े पैसे अनिकेत पर खर्च होते गए। वह अनि की पढ़ाई के वास्ते विदेश निकल गया। मीता उसी तरह सुबह सात बजे उठकर नाश्ता बनाकर ऑफ़िस के लिए निकलतीं। रात आठ बजे लौटकर पूर्ववत् अकेले ही खाकर करवटें बदलते तन्हा पड़े-पड़े सोचतीं- यह जो आज विकल के साथ का आधा-अधूरा अतृप्त सा जीवन जी रही है वह, यह बेहतर है या पहले वाला जीवन बेहतर था ? पहले कम से कम हमारे बीच रात को मिले रूहानी प्यार के बेशकीमती लमहे तो थे भले ही वे आभासी ही क्यों न रहे हों मगर दिमाग़ को प्यार की ज़रूरी खुराक लेकर निश्चिन्त मन से सो तो जाती थी वह। आज कल तो हमें सिर्फ संडे मिल पाता है और उस दिन भी सुबह सवेरे फ़ोन आने का सिलसिला शुरू हो गया फिर तो गया वह भी। तो क्या जब-जब जो-जो जैसा जैसा जीवन मिले, उसे तभी जी लेना चाहिए था उसे। कल यह होगा जब हम साथ होंगे, जैसी अटकलबाज़ियाँ से सुंदर पल थे वे। तब हमारे बीच प्यार की गर्माहट देखकर सभी जल भुन जाते थे।

आज फिर वही मशीनी जीवन शुरू हो गया। हमने सालों साल कितना कुछ सहा है सिवा, पैसा कमाने के ? क्या मिला उसे ? बच्चा तो अपनी ज़िंदगी मुट्ठी में क़ैद करके उड़ गया यहाँ से और वह रह गई उसी तरह तन्हा, अपने ही घर की चहारदीवारी पर वीरान सन्नाटे में रात भर अकेले फड़फड़ाती छिपकली की तरह हताश और उदास। काश! कि इस दौड़ती भागती ज़िंदगी को पकड़ पातीं। पुराना वक़्त कब लौटकर आ पाता है ?

रात के अँधेरे में बनती बिगड़ती मिटती सुबह परछाइयों को देखते-देखते थकी मुँदी पलकों के भीतर अधनींद के बीच सुनाई पड़ती दरवाज़ा खुलने की चरमराहट और फिर सब कुछ यथावत् ऑटोमेटिक दरवाज़े की चाबियाँ हमेशा की तरह दोनों के पास। पहले अनि तो अब विकल के पास। नींद और अधनींद के बीच उच्चरित सालों पुराने चंद अल्फाज़ - 'अनि बेटा, आ गए, तुम, देखो तो, तुम्हारे कमरे में मेज़ पर खाना ढका रखा है। खा लेना, प्लीज़ ज़रूर से। तुम्हारी पसंद का खाना बनाया था बेटा।'

'मीता, तुम सो जाओ। मैं अनि नहीं, विकल।'

'ओके, अनि, गुड नाईट बेटे' विकल की बात अनसुनी करते हुए उन्हें नींद ने फिर से अपनी मज़बूत गिरफ्त में ले लिया। पलकों के भीतर अँधेरी रात के काले साए गहराते गए, थोड़ी देर बाद ही खर्राटों की जुगलबंदी शुरू हो गई थी।

000

लघुकथा

हिस्सेदार

जिज्ञासा सिंह

"मैम आप नहीं गई मेडिकल कॉलेज... गीता मैम को देखने, सारी टीचर्ज़ गई हैं आज।" जूनियर टीचर शैली ने प्रिन्सिपल से पूछा।

"अरे इसमें देखने वाली क्या बात है ?"

"क्यों मैम सभी लोग तो बीमार को देखने अस्पताल जाते हैं। बस एक आप ही हैं, जो कह रही हैं कि देखने क्या जाना ? मुझे तो आपकी बात नहीं समझ आई। आख़िर संबंध का क्या मतलब ? और फिर वह आपके स्कूल की इतनी पुरानी और आपकी चहेती टीचर।"

"अरे शैली ! इसीलिए तो नहीं जा रही कि वह मेरी अज़ीज़, चहेती टीचर है, उसे देखने क्या जाना ..? पहले मैं छुट्टी लूँगी दस दिन की, कुछ पैसे निकालूँगी बैंक से, उसकी सेहत के लिए कुछ बनाऊँगी अपने हाथों से, फिर जाऊँगी उसके पास। देखने नहीं, उसकी सेवा करने। खिला-पिला के सेहतमंद करने और तुम तो जानती हो कि उस बेचारी के कोई कमाने वाला नहीं। लौटने लगूँगी तो कुछ पैसे भी उसके हाथ में रख दूँगी।"

"हमें किसी के दुःख में ख़ानापूर्ति करने के बजाय तन, मन, धन से दर्द का 'हिस्सेदार' बनना चाहिए।"

000

जिज्ञासा सिंह
मोबाइल-9415410164

प्रेम यात्रा

अश्विनीकुमार दुबे

सुबोध गुप्ता और अनीता चौधरी बी.ए. में एक साथ पढ़ रहे थे। दोनों मध्यवर्गीय परिवार के, मध्यवर्गीय लोग सपने ज़्यादा देखते हैं। उन्हें लगता है एक दिन उनकी किस्मत बदलेगी फिर बंगला, गाड़ी और सभी सुख-सुविधाएँ सहज होंगी। परंतु ऐसा होता कहाँ है! ज़िंदगी बहुत कठोर है। यहाँ आसानी से किसी को कुछ नहीं मिलता। सुबोध और अनीता एक-दूसरे को पसंद करते थे। सुबोध कॉलेज टीम में क्रिकेट खेलता था। अनीता हर मैच में उसका उत्साहवर्धन करती। कभी उसका प्रदर्शन अच्छा होता और कभी वह शून्य पर आउट होकर पवेलियन में आ जाता। अनीता निराश न होती और यही कहती – "एक दिन तुम्हारी किस्मत साथ देगी और तुम राष्ट्रीय टीम में खेलोगे।"

कॉलेज टीम से लेकर राष्ट्रीय टीम तक का सफ़र कितना कठिन है, सुबोध अच्छी तरह जानता है। वह अनीता को निराश नहीं करता और कहता –"हाँ, एक दिन मैं ज़रूर राष्ट्रीय टीम में खेलूँगा।" अभी वह बी.ए. में पढ़ रहा है। पिता की गाँव में थोड़ी-सी खेती है। परिवार में यही एकमात्र आय का स्त्रोत है। उसके अलावा घर में दो छोटी बहनें हैं। बापू रात-दिन खेती-किसानी में खटते रहते हैं, तब कहीं जाकर मुश्किल से घर का खर्चा चलता है। सुबोध को अपने खेल से ज़्यादा नौकरी की चिंता है। बी.ए. करने के पश्चात् कोई छोटी-सी ही नौकरी मिल जाए तो वह तुरंत ज्वाइन कर ले; यही उसकी एकमात्र अभिलाषा है।

अनीता के पिता रामपुर तहसील में क्लर्क हैं। उसके दो छोटे भाई हैं। स्कूल में पढ़ते हैं। पिता की इच्छा है कि बेटी बी.ए. हो जाए फिर उसके हाथ पीले करके बेटों के भविष्य के लिए सोचा जाए। छोटी नौकरी में वे बड़ा परिवार पाल रहे हैं।

प्यार तो बस प्यार है। वह हो जाता है, ऐसा ही कहने का चलन है। अब हो गया सुबोध और अनीता में प्यार। कोई क्या कर सकता है। भविष्य क्या होगा? दोनों इसे किस्मत के भरोसे छोड़े देते हैं। वे सोचते थे, एक दिन किस्मत बदलेगी और सब कुछ ठीक होगा। सुबोध सोचते कि उनकी नौकरी लग जाए तो वे अपने प्यार और परिवार दोनों को सँभाल लेंगे। अनीता का मानना था कि उसे बहुत अच्छी नौकरी मिलेगी। पति देश की राष्ट्रीय क्रिकेट टीम में खेलेगा। फिर उनके पास सबकुछ होगा। किस्मत उनके साथ दगा नहीं कर सकती।

बी.ए. दोनों ने प्रथम श्रेणी में पास कर लिया, इससे उनका उत्साह और बढ़ा। दोनों के परिवार वाले बच्चों को आगे न पढ़ाना चाहते थे। सुबोध के बापू तो चाहते थे कि बेटा जल्द-से-जल्द अपने पैरों पर खड़ा हो जाए तो बेटियों के विवाह के विषय में सोचा जाए। उधर अनीता के पिता उसके ग्रेजुएट होने का इंतज़ार कर रहे थे, बस। उन्होंने बेटी के लिए वर खोजने का अभियान तेज़ कर दिया। सुबोध ने हर छोटी-बड़ी नौकरी के लिए एप्लाई करना शुरू कर दिया। उसने प्राइवेट एम.ए. का फॉर्म भी भर दिया। नौकरी ढूँढ़ने के साथ उसने अपनी पढ़ाई भी जारी रखी। अनीता के विवाह के लिए कई परिवारों में उसके पिता ने बात चलाई। वे चाहते थे लड़का आत्मनिर्भर हो। अच्छे घर-परिवार से हो। लड़की ससुराल में जाकर दुखी न रहे। सुबोध के बापू ने भी बिरादरी के कई परिवारों में कामकाजी लड़कियों की पड़ताल कर रखी थी। उनके अनुसार घर की बहू ज़िम्मेदार हो। घर के सुख-दुख में अच्छी तरह निभती रहे। इसके अलावा वे कुछ न चाहते थे। सुबोध की जैसे ही कहीं कोई नौकरी लगती है, सुबोध के बापू उसका विवाह कर देंगे।

सुबोध और अनीता अपने-अपने परिवारों में चल रहे क्रिया कलापों से परिचित हैं। उन्होंने अभी अपने परिवार वालों को अपने प्यार के विषय में नहीं बताया। जल्द ही बताने का मन है परंतु उनके पैरों तले कोई ज़मीन नहीं है। दोनों में किसी की भी नौकरी लग जाती तो वे अपने परिवारों से बगावत करके विवाह कर लेते।

साल बीतते-बीतते सुबोध की स्वास्थ्य विभाग में संविदा आधार पर क्लर्क के लिए नियुक्ति हो गई। नौकरी लगते ही सुबोध के घर में उसकी शादी के चर्चे होने लगे। इधर अनीता के पिता ने एक गल्ला व्यापारी के लड़के के साथ अनीता की शादी कर देने का निर्णय लिया। लड़का ख़ुद तो कुछ न करता था। हाँ, अपने पिता के साथ उनके गल्ले के व्यापार में सहयोग प्रदान कर रहा

अश्विनीकुमार दुबे
376-बी, सेक्टर आर,
महालक्ष्मी नगर, इंदौर- 450210 (म.प्र.)
मोबाइल- 9425167003
ईमेल- ashwinikudubey@gmail.com

था। सही समय जानकर सुबोध और अनीता ने अपने प्यार को सार्वजनिक किया।

सुबोध के बापू आगबबूला हुए –"तुम्हारे अंतरजातीय विवाह से तुम्हारी दोनों छोटी बहनों की बिरादरी में शादी नहीं होगी। तुमसे ऐसी गैर ज़िम्मेदाराना बात सुनकर मुझे तुम्हारी बुद्धि पर तरस आ रहा है। तुम इस विवाह से पूरे परिवार को परेशानी में डालोगे, मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता। अभी समय है, अच्छी तरह विचार कर लो।"

सुबोध चुप रहे। घर में किसी की इच्छा न थी घर का इकलौता बेटा इस प्रकार अपनी मर्ज़ी से बिरादरी के बाहर शादी कर ले।

अनीता के मम्मी-पापा ने जब अनीता के प्यार की बात सुनी तो उन्हें भी बहुत ग़ुस्सा आया। उन्होंने बेटी को समझाया –"सुबोध एक संविदा क्लर्क है और उसका परिवार भी अत्यंत साधारण। हम जहाँ तेरी शादी करना चाहते हैं, वह परिवार संपन्न है। लड़का भले ही कुछ नहीं करता परंतु अपने पिता के कारोबार में सहयोग तो करता है। वहाँ तू सुखी रहेगी। सुबोध के साथ तेरे विवाह के प्रस्ताव से हम पूरी तरह असहमत हैं। हम इसका विरोध करेंगे।"

सुबोध और अनीता ने जब देखा कि उनके घर वाले ये विवाह नहीं होने देंगे, तब उन्होंने अंतिम विकल्प अपनाया - कोर्ट मैरिज। और एक दिन सचमुच दोनों ने कोर्ट मैरिज कर ली। शादी के पश्चात् वे अपने-अपने घर माता-पिता से आशीर्वाद लेने गए। दोनों के परिवार वालों ने इस शादी से असहमति जाहिर करते हुए नाराज़गी व्यक्त की। इस बात का सुबोध और अनीता को पहले से अंदाज़ था। वही हुआ, जिसके प्रति वे तैयार थे।

सुबोध की पोस्टिंग ज़िला अस्पताल में हुई। नौकरी ज्वाइन करने के पश्चात् उन्होंने वहाँ किराए का मकान ले लिया। उन्हें पता था कि शादी के बाद वे पत्नी के साथ गाँव में अपने घर में नहीं रह पाएँगे। वे माँ और बापू से मिलकर गाँव से सीधे रामपुर आ गए। यह एक छोटी-सी तहसील है, जहाँ रहते हुए दोनों ने कॉलेज की पढ़ाई पूरी की थी। रामपुर में अनीता के घरवालों से उनकी औपचारिक मुलाकात हुई। घर में किसी ने उनकी शादी पर प्रसन्नता व्यक्त नहीं की। अनीता की माँ और बापू से मिलकर वे दोनों शहर में अपने किराए के मकान में आ गए। घर, परिवार, बिरादरी सबसे बग़ावत करके दोनों ने विवाह किया, इस आधार पर कि हम एक-दूसरे पर विश्वास करते हुए जीवन व्यतीत करेंगे। दोनों को अपनी किस्मत पर भरोसा था कि यह एक दिन ज़रूर बदलेगी और जीवन में ख़ुशियाँ ही ख़ुशियाँ होंगी। जीवन यापन के लिए फिलहाल सुबोध की जिला अस्पताल में संविदा कर्मी क्लर्क के रूप में नौकरी थी। दोनों बी.ए. प्रथम श्रेणी में पास थे और यह आशा लगाए हुए थे कि इसी डिग्री के आधार पर दोनों को अच्छी नौकरियाँ प्राप्त हो जाएँगी। सचमुच कितने नादान थे वे। रामपुर तहसील के कॉलेज से बी.ए. प्रथम श्रेणी में पास हो जाने को वे दोनों बहुत बड़ी उपलब्धि समझ रहे थे और आगे का रास्ता किस्मत के भरोसे तय करने का विश्वास मन में पाले हुए थे।

छोटी-सी तनख्वाह के साथ दोनों ने ज़िला रोहितपुर में अपनी गृहस्थी बनाना शुरू कर दी। माँ-बाप तो माँ-बाप हैं, बच्चों से कितने दिन नाराज़ रह सकते हैं? धीरे-धीरे दोनों परिवारों ने इस विवाह को स्वीकार कर लिया। परंतु भीतर से दोनों परिवार बच्चों की मन-मर्ज़ी वाली शादी से ख़ुश नहीं थे। माँ-बाप से बच्चों का रिश्ता कभी छूटता नहीं, इसलिए तमाम असहमतियों के उपरांत उनका शहर आना-जाना शुरू हुआ। बच्चे भी कभी गाँव और कभी रामपुर हो आते परंतु संबंधों में वह गर्माहट न थी, जो होनी चाहिए। माँ-बाप हैं और उनके बच्चे इसलिए संबंध तो जीवन भर रहेगा ही।

सुबोध के माता-पिता अपनी दोनों बेटियों के लिए वर तलाशने लगे। सुबोध के इस प्रकार शादी कर लेने से उनकी बिरादरी में बहुत किरकिरी हुई थी। उन्हें अपनी बेटियों के लिए वर तलाशने में बहुत दिक्कत पेश आ रही थी। वे सोचते थे कि बेटा नौकरी में आ जाएगा तो परिवार का कुछ सहारा हो जाएगा। सहारा तो कुछ हुआ नहीं, उसके कारण बेटियों के विवाह में अड़चनें ज़रूर आ रही हैं।

अनीता के पिता बेटी का विवाह उत्साह पूर्वक करने का मन रखते थे। उनकी एक ही बेटी है, वे उसे बड़े घर में भेजना चाहते थे, जहाँ सुख-सुविधाओं के सारे साधन हों। इसीलिए उन्होंने एक व्यापारी के घर में उसका विवाह करना चाहा था। बेटी ने अपनी मर्ज़ी से शादी कर ली। एक छोटी सी नौकरी वाला उसका शौहर उसे कितना ख़ुश रख पाएगा!

सुबोध और अनीता अपनी गृहस्थी बसाते रहने के साथ नित नई नौकरियों की तलाश कर रहे थे। समय-समय पर नई नौकरियों के लिए परीक्षाओं के विज्ञापन आए। दोनों ख़ूब तैयारी करके इन परीक्षाओं में बैठे। चालीस पदों के लिए चार हज़ार प्रत्याशी परीक्षा में बैठते। वरीयता सूची पचासी प्रतिशत अंक पाने वालों के ऊपर ही समाप्त हो जाती। इतनी कठिन प्रतियोगिता में सुबोध और अनीता बहुत पीछे रह जाते। वे लगातार विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठ रहे थे परंतु जब परिणाम आता, तब वे निराश हो जाते।

समय बीतता गया। सुबोध नौकरी पर चले जाते। सरकारी अस्पताल में अपने ऑफिस का काम-काज निपटाते। इस तरह से उनका मन बँटा रहता। अनीता घर पर रहती और जाने क्या-क्या सोचती रहती। तमाम तरह की कोशिशें करते रहने के बाद दोनों को कोई अच्छी नौकरी नहीं मिल सकी। शादी के दो साल बाद अनीता की गोद में एक बच्चा आ गया। जिसका नाम उन्होंने अमन रखा। अनीता को कोई ख़ास ख़ुशी नहीं हुई। उसे लगा कि सुबोध की सीमित आय में दो लोगों का गुज़ारा ही कठिनाई से होता है, यह तीसरे की ज़िम्मेदारी सिर पर आन पड़ी। एक शब्द उसके जेहन में बार-बार कौंधता – किस्मत! अब इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। शादी के बाद कुछ भी तो नहीं बदला। हम लोगों ने बी.ए. प्रथम श्रेणी में पास किया था। दोनों को नौकरी मिल जाएगी। जीवन सुख पूर्वक गुज़रेगा। जीवन इतना सरल कहाँ है, जितना मैं सोचती थी। सुबोध अपने काम में लगे रहते हैं। जो सामने है, उसे मन लगाकर करना है, यही उनका जीवन दर्शन है।

प्रतियोगी परीक्षाएँ भी वे लगातार देते रहते हैं।। आगे जो होगा, देखा जाएगा। अनीता ज़रूर निराश हो गई है। उसके स्वभाव में चिढ़चिढ़ापन आ गया है। उसे जीवन में जो चाहिए, नहीं मिल पा रहा, इसलिए वह दुखी रहती है। उन दोनों के जीवन में प्यार की जो ऊष्मा थी, धीरे-धीरे कम होने लगी है। सुबोध, अनीता और अपने बच्चे के लिए बहुत कुछ करना चाहते हैं। विवश हैं। कुछ कर नहीं सकते। गाँव में माँ-बापू की अपनी समस्याएँ हैं। सुबोध उन्हें कोई मदद नहीं कर पाते। उनसे अपने लिए किसी आर्थिक सहायता की अपेक्षा रखना बेमानी है। अनीता के पिता भी एक क्लर्क हैं। अनीता के छोटे भाइयों की पढ़ाई का खर्च उनके सिर पर है। उनसे भी कोई अपेक्षा रखना ठीक नहीं है। कुल मिलाकर सुबोध को अपनी नौकरी से ही अपना परिवार पालना है। वे ये ज़रूर चाहते हैं कि अनीता की भी कहीं, छोटी ही सही नौकरी लग जाती तो दोनों मिलकर अपना परिवार ठीक-ठाक ढंग से चला लेते। परंतु चाहने भर से क्या होता है। होता तो कुछ और है।

घर में अब सुबोध और अनीता के अलावा एक शिशु भी है, उसकी अपनी आवश्यकताएँ हैं, जिनमें कोई कटौती नहीं की जा सकती। सुबोध ने यथास्थिति को स्वीकार कर लिया था परंतु अनीता का मन बेचैन रहने लगा। उसे दूर-दूर तक अपने वैवाहिक जीवन में आर्थिक संपन्नता के आसार दिखाई न देते थे। उसे अपने पति से कोई शिकायत न थी। परंतु ज़िंदगी में सुख-सुविधाएँ भी तो चाहिए। ये सुख-सुविधाएँ उसे सुबोध के साथ रहते हुए कभी नहीं मिल सकतीं। अनीता अपने लिए नौकरी का प्रयास करते हुए थक चुकी थी। अब तो उसकी गोद में एक छोटा बच्चा है। उसकी देखभाल करनी होती है। प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के लिए वक़्त ही नहीं मिलता। अलबत्ता सुबोध ज़रूर अभी भी विभिन्न परीक्षाओं में बैठते रहते हैं।

धीरे-धीरे अमन बड़ा हो रहा था और उसकी ज़रूरतें भी बढ़ती जा रही थीं। तीन साल का हुआ तो उसे स्कूल में भर्ती करा दिया गया। के.जी. वन के विद्यार्थी को अभी से महँगे स्कूल में पढ़ाना उनके लिए बहुत कठिन था परंतु सुबोध ने हिम्मत करके यह काम किया। अनीता ने विरोध तो नहीं किया परंतु उसे पता था कि घर की ज़रूरतों में कटौती करते हुए ही अमन के लिए एक महँगे स्कूल का जोखिम उठाया जा रहा है। आगे और ज़िम्मेदारियाँ बढ़ेंगी परंतु उस अनुपात में सुबोध की तनख्वाह नहीं बढ़ेगी। कुल मिलाकर पूरा जीवन इसी तरह अभावों में जीते हुए ही बिताना होगा - यह सोचकर अनीता सिहर उठती।

पड़ोस में एक दुर्गा मंदिर है। सुबोध अक्सर वहाँ परिवार सहित जाते रहते हैं। नवरात्र के समय वहाँ बड़ी धूमधाम रहती है। एक दिन वहाँ के पुजारी ने सुबोध दंपति को बताया –"इस नवरात्र पर मंदिर में लोक निर्माण विभाग के कार्यपालन यंत्री श्री वीरेंद्र चौधरी एक बड़ा यज्ञ करने जा रहे हैं। नवमीं के दिन सुबह कन्याओं का भोज होगा और रात्रि में उन्होंने मंदिर आने वाले सभी भक्तों को सह भोज में आमंत्रित किया है। आप भी परिवार सहित पधारियेगा।" अनीता ने हामी भरी।

अगले दिन सुबह जब अनीता मंदिर गई तो वहाँ वीरेंद्र चौधरी आए हुए थे। पुजारी जी ने सजातीय होने के नाते अनीता का उनसे परिचय कराया। चौधरी जी ने पहली मुलाकात में ही बताया –"पत्नी के गुज़र जाने के बाद मुझे वैराग्य हो गया है। मेरी कोई संतान नहीं है। पत्नी भी असमय छोड़कर चली गई। अब पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन आदि में मन लगाता हूँ। आप लोग नवमी के दिन हवन में ज़रूर पधारियेगा और रात्रि को सह भोज में तो आपको परिवार सहित आना ही है।"

अनीता ने उन्हें आमंत्रण के लिए धन्यवाद कहा और घर आ गई। जाने क्यों वह आज उन्हीं के विषय में सोचती रही। बेचारे वीरेंद्र चौधरी। पत्नी गुज़र गई। कोई बाल-बच्चे नहीं। कितना एकाकी जीवन है उनका। वह आख़िर यह क्यों सोच रही है। उसे क्या लेना-देना किसी चौधरी से। कितने लोग सजातीय हैं और इनसे भी ज़्यादा दुखी। उसे कोई मतलब नहीं किन्हीं चौधरी साहब से। न चाहते हुए भी वह दिनभर चौधरी साहब के विषय में ही सोचती रही।

दूसरे दिन मंदिर में उसकी फिर चौधरी साहब से भेंट हो गई। बातचीत में उन्होंने उसके परिवार के विषय में पूछ लिया। अनीता ने बताया –"मेरे पति सुबोध जिला अस्पताल कार्यालय में नौकरी करते हैं। तीन साल का एक छोटा बच्चा है, जो के.जी. वन में पढ़ता है। हम लोग यहीं पास में किराए के मकान में रहते हैं।"

"हवन के दिन आप अपने बच्चे और पति को ज़रूर लाइएगा। मिलकर अच्छा लगेगा।" इतना कहकर उन्होंने अपनी घड़ी देखी और दौरे पर जाना है कहकर अपनी गाड़ी में बैठकर विदा हुए। अनीता दूर जाती हुई उनकी कार को देर तक देखती रही। अब तो लगभग रोज़ ही मंदिर में अनीता की मुलाकात चौधरी साहब से होने लगी। चौधरी साहब अधेड़ हैं। चालीस-पैंतालिस के होंगे। बेचारे विधुर हैं। कोई संतान भी नहीं है। अच्छी नौकरी है। महँगी कार रखते हैं। नौकरी में इन्हें सब जगह सरकारी बंगला मिलता है। कहीं ख़ुद का मकान भी उन्होंने बनवा लिया होगा। यह सब अनीता क्यों सोच रही है। उसे इन बातों से क्या मतलब। दुनिया में बहुत पैसे वाले लोग हैं। बहुत लोगों के पास तो कई बंगले और कई गाड़ियाँ हैं, उससे क्या! सबकी किस्मत अलग-अलग है। अनीता ने अपने मन को दूसरे विषयों में लगाने की बहुत कोशिश की। परंतु मन के रिकॉर्ड की सुई तो एक ही जगह आकर बार-बार रुक रही थी - कार्यपालन यंत्री वीरेंद्र चौधरी।

हवन का दिन आते तक अनीता और चौधरी साहब की खिचड़ी अच्छी तरह पक गई थी। हालाँकि नवमी की पूजा और रात्रि के सहभोज में सुबोध और अनीता अपने बच्चे के साथ पूरे समय तक रहे। सुबोध ने महसूस किया कि वीरेंद्र चौधरी हर छोटी-से-छोटी बात अनीता से पूछ कर कर रहे हैं। सहभोज में अनीता लोगों को इस प्रकार खाना परोस रही थी, जैसे यह भोज उसकी तरफ से ही दिया जा रहा है।

अनीता और सुबोध की शादी हुए पाँच

साल हो गए थे। अनीता के सामने उसकी पूरी ज़िंदगी है, जिसे वह आर्थिक अभावों के बीच रहते हुए नहीं गुज़ार सकती। उसके बड़े सपने हैं; उसे बंगला, कार, गहने.... और जाने क्या-क्या चाहिए, जो सुबोध के साथ रहते हुए उसे कभी नहीं मिल सकते। उसे आशा थी कि सुबोध को कोई अच्छी नौकरी मिल जाएगी। साथ ही उसे भी कोई बढ़िया नौकरी मिलेगी, इस विश्वास के आधार पर उन्होंने अपना जीवन शुरू किया था। परिवार से बग़ावत कर अनीता ने प्रेम विवाह किया, परंतु ज़िंदगी वैसी न हो सकी, जैसी सोची थी। इधर उसकी ज़िंदगी में एक अवसर आया है, वह अपने सपने पूरे कर सकती है, चौधरी साहब के साथ रहते हुए। चौधरी साहब के यहाँ कोई पहुँचे हुए महात्मा आए हैं, उनसे मिलना है। कभी उनके यहाँ भजन संध्या का कार्यक्रम है। कभी कोई पूजा, यज्ञ, अनुष्ठान आदि। इस प्रकार अनीता का चौधरी साहब के यहाँ आना-जाना बढ़ गया।

बात की गंभीरता समझने में सुबोध को कोई विलंब नहीं हुआ। उन्होंने एक-दो बार अनीता को शांतिपूर्वक समझाया –"चौधरी जी के यहाँ तुम्हारा इस प्रकार आना-जाना ठीक नहीं है। लोग तरह-तरह की बातें बनाने लगे हैं।"

"लोग बातें बनाते हैं तो बनाते रहें। मेरी अपनी स्वतंत्रता है और मेरा जीवन। मैं इसमें किसी की दखलंदाज़ी बर्दाश्त नहीं कर सकती। तुम्हारी भी नहीं।" अनीता ने पलटकर जवाब दिया।

सुबोध चुप रहे। उन्होंने बात आगे नहीं बढ़ाई। उन्हें दुख ज़रूर हुआ कि जिस पर भरोसा किया। जिसके साथ सुख-दुख में जीने-मरने का संकल्प लेकर उन्होंने प्रेम विवाह किया। अपनी माँ और बापू को नाराज़ किया। उसका मुझ पर से भरोसा उठ गया है। और सचमुच एक दिन सुबोध के सामने अनीता ने प्रस्ताव रखा कि वह अपनी मर्ज़ी से उसे छोड़कर वीरेंद्र चौधरी से विवाह करना चाहती है। वह सोचती थी, सुबोध उसे मनाएगा। अपने प्यार का, अमन की ज़िंदगी का वास्ता देगा। बदनामी का डर दिखाएगा। आगे ज़िंदगी में और अच्छे दिन आएँगे, इसका विश्वास दिलाएगा। परंतु सुबोध ने ऐसा कुछ नहीं किया। सिर्फ इतना कहा –"तुम्हारी अपनी मर्ज़ी। तुम्हारी स्वतंत्रता। मुझे सिर्फ इतना कहना है कि ज़िंदगी में जो भी करना है बहुत सोच समझ कर करना चाहिए। बाद में कहीं पछताना न पड़े।"

अनीता ने कोई जवाब नहीं दिया। मन-ही-मन सोचा, क्यों पछताना पड़ेगा? वहाँ पछताने का कोई कारण नहीं है। चौधरी साहब एक बड़े पद पर हैं। उनके पास क्या नहीं है। ज़िंदगी के सारे सुख साधन हैं। कोई कमी नहीं है। मैं अमन को अपने साथ ले जाऊँगी। नहीं दूँगी सुबोध को। सुबोध के यहाँ रहते हुए उसकी ज़िंदगी नहीं सँवर सकती। उसे महँगी शिक्षा सुबोध नहीं दिला पाएँगे। ज़्यादा-से-ज़्यादा वह भी अपने पिता की तरह एक क्लर्क होकर रह जाएगा। वह ऐसा नहीं होने देगी। अमन उसके साथ रहेगा। बड़े स्कूल और कॉलेज में पढ़ेगा और एक दिन बहुत बड़ा अफ़सर बनेगा। ठीक वीरेंद्र चौधरी की तरह।

जल्द ही कुटुंब न्यायालय में अनीता की ओर से अपने पति से स्वेछा पूर्वक तलाक लेने का आवेदन प्रस्तुत कर दिया गया। सुबोध ने कोई आपत्ति नहीं की। सुबोध की माँ और बापू ने सुना तो उन्होंने बहू को ख़ूब बुरा-भला कहा। अनीता के माता-पिता को भी बेटी का यह कदम पसंद नहीं आया। वे जानते हैं, अनीता ज़िद्दी है। किसी की नहीं सुनती। सुबोध से भी उसने अपनी मर्ज़ी से विवाह किया था। अब अपनी उम्र से लगभग 10-15 साल बड़े वीरेंद्र चौधरी के साथ रहने जा रही है। उसे समझाना बेकार है। हालाँकि उन्होंने बेटी से इतना ज़रूर कहा –"सोच-समझ लेना बेटी। बाद में पछताना न पड़े।"

अनीता ने सब कुछ अच्छी तरह सोच-समझ लिया है। उसके सपने सुबोध के साथ कभी पूरे नहीं हो सकते। वीरेंद्र के पास वह सब कुछ है, जो उसे जीवन में चाहिए। वहाँ वह सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकती है। सुबोध की तरफ से कोई आपत्ति न थी। अनीता ने अमन को अपने पास रखने का उनसे अनुरोध किया, वह भी सुबोध ने अपने दिल पर पत्थर रखकर मान लिया, हालाँकि वे अमन से बहुत प्यार करते थे और उसे अपने पास ही रखना चाहते थे। उन्होंने अनीता से विदा होते समय उसे किसी प्रकार कोई अड़चन में नहीं डाला। जैसा अनिता ने कहा, उन्होंने चुपचाप मान लिया। इस प्रकार अनीता ने सुबोध से अलग होकर दो दिन पश्चात् ही वीरेंद्र से वहीं कोर्ट में विवाह कर लिया और अमन के साथ वीरेंद्र के सरकारी आवास में रहने आ गई।

वीरेंद्र अनीता ने विवाह के पूर्व ही तय कर लिया था कि शादी के पश्चात् वे रोहितपुर छोड़ देंगे। वीरेंद्र ने प्रदेश की राजधानी में पहले से एक बड़ा भवन खरीद रखा था। अब उन्होंने राजधानी स्थित पी.डब्ल्यू.डी. कार्यालय में अपना स्थानांतरण करा लिया। इस प्रकार शादी होने के एक सप्ताह पश्चात् ही वीरेंद्र, अनीता और अमन राजधानी में आकर रहने लगे। अनीता को सब कुछ अच्छा-ही-अच्छा लग रहा था। उसके अनुसार उसके मन की मुराद पूरी हो रही थी। अमन को यहाँ एक नामी कान्वेंट स्कूल में भर्ती करा दिया गया।

वीरेंद्र, राजधानी के पास देवालपुर नामक कस्बे के रहने वाले हैं। उनके माता-पिता तो अब नहीं रहे परंतु बहुत सारे रिश्तेदार देवालपुर में रहते हैं और प्राय: राजधानी में उनके पास आते रहते हैं। वीरेंद्र अपनी नौकरी के प्रारंभिक दिनों में यहीं रहते थे, उसी समय उन्होंने यह भवन खरीद लिया था। अपनी पहली पत्नी के साथ वे इसी मकान में रहते रहे। इस प्रकार पास-पड़ोस के कई परिवार उन्हें भली-भाँति जानते-पहचानते हैं। अनीता की सबसे जान-पहचान हुई और वीरेंद्र के रिश्तेदारों से उसका मेलजोल बढ़ने लगा।

बहुत जल्द ही अनीता को मालूम हो गया कि वीरेंद्र की पहली पत्नी की स्वाभाविक मृत्यु नहीं थी। उसने अपने पति से तंग आकर आत्महत्या कर ली थी। उसे प्रताड़ित करने और आत्महत्या के लिए मजबूर करने के आरोपों को लेकर वीरेंद्र पर मुकदमा दर्ज हुआ था। इस केस से बरी होने के लिए उन्होंने पानी की तरह पैसा बहाया था। सारे गवाह उन्होंने

खरीद लिए थे। बड़ी मुश्किल से वे इस प्रकरण में बरी हो पाए थे। लोगों ने बताया कि शादी के बाद भी वीरेंद्र के कई स्त्रियों से संपर्क-संबंध थे। यह बात उनकी पत्नी से छुपी न रह सकी। प्राय: हर रात वीरेंद्र नशे में धुत होकर घर आते और अपनी पत्नी के साथ मार-पीट करते। वह उनकी हरकतों का विरोध करती, जिससे झगड़ा और बढ़ता। अंतत: तंग आकर उनकी पत्नी ने आत्महत्या कर ली। वीरेंद्र शराब पीते हैं, यह बात अनीता को रोहितपुर में ही मालूम हो गई थी। वीरेंद्र का यह कहना कि वे तन्हाई मिटाने के लिए पीते हैं। शादी के बाद शराब से हमेशा के लिए तौबा कर लेंगे। शादी हो गई परंतु उन्होंने शराब का साथ एक दिन के लिए भी नहीं छोड़ा। अनीता उन्हें रोज़ शादी के पूर्व किए गए वादे को याद दिलाती, वे जानबूझकर रोज़ उसे भूल जाते। इस प्रकार अनीता ने यह मान लिया कि वीरेंद्र शराब कभी नहीं छोड़ सकते।

धीरे-धीरे अनीता को यह भी मालूम हुआ कि पूर्व में यहाँ रहते हुए वीरेंद्र के जिन महिलाओं से संपर्क-संबंध थे, वे पुन: जीवित हो गए हैं। इस दिशा में उनके कुछ नए संबंधों की जानकारी भी अनीता को मिली। उसे यह भी मालूम हुआ कि वीरेंद्र अपनी हरकतों के कारण अपनी बिरादरी में इतने बदनाम हो चुके थे कि एक बड़े पद में रहने के बावजूद उनका यहाँ पुनर्विवाह संभव नहीं हो पाया। वे अपनी नौकरी के दौरान कई जिलों में पदस्थ रहने के पश्चात् रोहितपुर आए थे, जहाँ अनीता से उनकी मुलाकात हुई और यह मुलाकात अनीता की जल्दबाज़ी के कारण बिना कोई पड़ताल किए विवाह में परिणत हो गई।

अनीता ने यथास्थिति को स्वीकार किया। वीरेंद्र को चाहकर भी वह नहीं सुधार सकती थी। वे उम्र में उससे बहुत बड़े थे। बात-बात में वे अपना बड़प्पन भी झाड़ते रहते थे। उन्हें अपनी आर्थिक संपन्नता का भी बहुत घमंड था। वे अपने सुख के लिए कुछ भी खरीद सकते थे। सीधे तो उन्होंने कुछ नहीं कहा परंतु अपरोक्ष रूप में वे यही दर्शाने का प्रयास करते कि वे अपने लिए एक नई पत्नी खरीदकर ले आए हैं। अनीता अब तक उनकी मनोदशा को जान चुकी थी। हाँ, उसने जो चाहा, वह यहाँ था- बंगला, गाड़ी, गहने इत्यादि। क्या इतना सब जीवन में पर्याप्त है?

अमन बड़ा होने लगा। अब वह राजधानी के महँगे स्कूल में जाने लगा था। वीरेंद्र के लिए वह एक ज़िम्मेदारी से ज़्यादा न था। वे कभी उससे एक बेटे की तरह प्यार नहीं कर पाए, यह फर्क अनीता साफ-साफ महसूस कर रही थी। वीरेंद्र दिन भर अपने विभाग के कार्यों में व्यस्त रहते। रात नशे में धुत होकर आते और घर पर भी पीने बैठ जाते। अनीता जानती थी उन्हें रोकना, टोकना बेकार है। उनकी पहली पत्नी ने यही किया और क्या पाया? अनीता चुपचाप डाइनिंग टेबल पर उनके लिए खाना परोसती। वे खाना खाते-खाते ऊँघने लगते और किसी तरह भोजन समाप्त कर बिस्तर पर लुढ़क जाते। हाँ, घर में उन्होंने सारी सुख-सुविधाओं की चीज़ें लाकर रखीं। अनीता की खरीदारी पर उन्होंने कोई प्रतिबंध नहीं लगाया। अनीता ने महिला क्लब ज्वाइन किया। किटी पार्टियों में हिस्सेदारी बढ़ाई। ख़ूब साड़ियाँ खरीदीं। ख़ूब गहने बनवाए। उसके जीवन में न पति का प्यार था, न बेटे का। अमन अब जानने लगा था कि चौधरी साहब उसके पिता नहीं हैं। उसके पिता तो रोहितपुर में रहते हैं। उसकी माँ ने ही उसे अपने पिता से अलग कर दिया। इस प्रकार माँ के प्रति उसका अनुराग प्रगाढ़ नहीं हो पाया।

साल पर साल बीतते गए। अनीता के सामने वीरेंद्र के व्यक्तित्व और कृतित्व के नए-नए अध्याय खुलते जा रहे थे। वीरेंद्र विभागीय भ्रष्टाचार में गले तक डूबे हुए थे। आए दिन उनके कार्यों की शिकायतें होती रहती थीं। अख़बारों में प्राय: उनके काले कारनामों के किस्से विस्तार पूर्वक छपते थे, जिन्हें वे सिरे से झूठ कहकर नकार देते थे। उनके ख़िलाफ़ कई विभागीय जाँचें चल रही थीं। वे हर जगह पैसे फेंकते हुए अपने मामले सुलटाते रहते। उनके रिश्तेदार ही उनके विषय में विस्तार पूर्वक अनीता को आकर बताते रहते थे। घर में तरह-तरह के लोग आते, कुछ प्रभावशाली लोगों को बुलाया जाता। बातों का लब्बोलुआब अनीता तक भी छन कर पहुँचता और अनीता को समझते देर न लगती कि वीरेंद्र अपनी कारगुज़रियों पर पर्दा डालने के लिए हर संभव प्रयास कर रहे हैं। एक अदना नेता से भी वीरेंद्र डरते और खड़े होकर उसका स्वागत करते। छुटभैये पत्रकार उन्हें ब्लैकमेल करते और वे ख़ुशी-ख़ुशी होते।

पुजारी, महंत, तांत्रिक और ज्योतिषी टाइप लोगों का भी घर में आना-जाना बहुत होता। वीरेंद्र विभिन्न मंदिरों में कई तरह के पूजा-पाठ कराते रहते। महंतों को मोटा अनुदान देते। तांत्रिकों द्वारा बताए गए अनुष्ठान आदि करते और ज्योतिषियों द्वारा बताई गई अँगूठियों को उँगलियों में धारण करते रहते। दरअसल वे विभाग के बड़े अफ़सरों, नेताओं, मीडिया कर्मियों और विभिन्न ब्लैक-मेलरों को पटाने के साथ भगवान् को भी पटाने की जुगत करना न भूलते। सबको साधते हुए उन्होंने बहुत धन-संपत्ति अर्जित की। परंतु उनका व्यक्तित्व बहुत लिजलिजा है। अनीता उनमें किसी प्रकार का सुधार नहीं कर सकती। वीरेंद्र ने मकान ख़ूबसूरत खरीदा है परंतु वे उसे घर नहीं बना पाए। जीवन में एक पत्नी चाहिए सो वे पत्नी ले आए। औलाद चाहकर भी पैदा नहीं कर पाए। एक पुत्र मिला उसे भी बाप का प्यार नहीं दे पाए। इस प्रकार अनीता को वीरेंद्र के साथ रहते हुए धन-संपत्ति तो मिली परंतु भीतर का कोई कोना, जो पहले भरा रहता था फिर नहीं भर पाया।

सुबोध को अनीता से अलग होने का बहुत दुख हुआ था परंतु वे क्या कर सकते थे। उन्होंने अनीता को अपनी तरफ से भरपूर समझाया था। वह जाने किन दिवास्वप्नों में खोई हुई थी। उसकी अपनी स्वतंत्रता। अपनी मर्ज़ी। उसने अपनी इच्छा अनुसार अपने जीवन का रास्ता चुन लिया। बहुत दिनों तक सुबोध का किसी काम में मन नहीं लगा। अमन की याद भी उन्हें सताती रहती थी। धीरे-धीरे उन्होंने अपने आपको सँभाला। लोक सेवा आयोग की प्रारंभिक परीक्षा पास करने के बाद मुख्य परीक्षा में उस वर्ष उन्होंने डिप्टी कलेक्टर पद के लिए फॉर्म भरा। नौकरी के साथ वे अपनी परीक्षा की तैयारी में जुट गए।

जब, जितना समय मिलता वे अपनी किताबों में डूबे रहते। उन्होंने रात-दिन जी तोड़ मेहनत की। श्रम और साधना पर से उनका विश्वास कम नहीं हुआ था। लगातार कई प्रतियोगी परीक्षाओं में असफल होने के बावजूद उन्होंने आत्मविश्वास का दामन नहीं छोड़ा। वे पूरी तैयारी के साथ पी.एस.सी. की परीक्षा में बैठे। सभी पेपर उनके बहुत अच्छे हुए। वे आस्तिक हैं परंतु ईश्वर को पटाने में विश्वास नहीं रखते। उनके लिए ईश्वर का स्मरण अपने आप पर भरोसा करने के लिए है। साल भर बाद पी.एस.सी. की परीक्षा का परिणाम आया और सुबोध अच्छी रैंक में उत्तीर्ण हो गए। अब उन्हें साक्षात्कार की तैयारी पूरे मनोयोग के साथ करनी थी, जिसके लिए उन्होंने ख़ुद को तैयार करना प्रारंभ किया।

अनिता अमन का पूरा ख़याल रखती थी परंतु वह ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता, ज़िद्दी और चिड़चिड़ा होता जा रहा था। पिता का प्यार उसे नहीं मिला, इसके लिए वह माँ को ज़िम्मेदार मानता था। घर में चौधरी साहब से मिलने; ठेकेदार, सप्लायर, नेता, उनके मातहत और कर्मचारी यूनियन के पदाधिकारी आदि आते रहते थे। इन लोगों से चौधरी साहब की नरम-गरम बातें होतीं, जिसकी ध्वनियाँ अनीता और अमन के कानों तक भी पहुँचती। उन्हें इससे क्या? उनकी दुनिया अलग है। अनीता महिला क्लब जाती। किटी पार्टियों में समय बिताती। इस वातावरण में अमन अपने आप को बहुत अकेला महसूस करता। मम्मी ने उसे महँगे स्कूल में भर्ती करा दिया। घर पर पढ़ाई के लिए ट्यूटर लगा दिया, बस। चौधरी साहब को अनीता और अमन की गतिविधियों से कोई सरोकार न था। वे अपने फैलाए हुए जाल में बुरी तरह उलझते जा रहे थे।

समय बीतता गया। अमन अब मैट्रिक में आ गया। वह बात-बात पर माँ को बुरा-भला कह देता। चौधरी साहब से उसका बहुत कम संवाद हो पाता था। न वे उससे कुछ पूछते, न वह उन्हें बताता। वर्षों से अनिता अकेलापन झेल रही थी। वह किसी से कुछ कह नहीं सकती थी। भीतर ही भीतर घुटती रहती। एक दिन डॉक्टरों ने उसे दिल का मरीज़ घोषित कर दिया। उसका पल्स रेट अनियंत्रित रहने लगा। अब दवाइयाँ, चेकअप परहेज़ इनके साथ अनीता की ज़िंदगी बीतने लगी।

सुबोध पी.एस.सी. के साक्षात्कार में सफल हुए और प्रोवेशन पीरियड पूरा करने के पश्चात् डिप्टी कलेक्टर के रूप में राजधानी में उनकी पदस्थापना हुई।

कार्यपालन यंत्री वीरेंद्र चौधरी के ख़िलाफ़ कई विभागीय जाँचें चल रही थीं, जिनमें उन्हें गंभीर आर्थिक अनिमितताओं के लिए दोषी पाया गया। उनकी सेवा निवृत्ति में केवल पाँच वर्ष शेष रह गए थे परंतु शासन ने उन्हें अनिवार्य सेवा निवृत्त कर विभाग से बाहर किया। जिस दिन यह आदेश उन्हें मिला उन्होंने रातभर दारू पी। सुबह जब उन्होंने बिस्तर से उठने की कोशिश की तो उठ नहीं पाए। उनके शरीर के दाएँ हिस्से को पक्षाघात हो गया। आनन-फानन उन्हें अस्पताल पहुँचाया गया, जहाँ आपात चिकित्सा कक्ष में उनका इलाज शुरू हो गया। हफ्ते भर अस्पताल में रहने के पश्चात् उन्हें घर जाने के लिए कह दिया गया। उनका जबड़ा अभी भी टेढ़ा था। ठीक से बोल नहीं पाते थे। दायाँ हाथ और पैर पूरी तरह शून्य हो चुके थे, उनमें कोई हरकत न थी। डॉक्टरों का कहना था, धीरे-धीरे इनकी तबीयत ठीक होगी। इन्हें लगातार फ़िज़ियो थेरेपी कराते रहना पड़ेगा और ये दवाइयाँ लंबे समय तक चलेंगी। अनिता उन्हें घर ले आई। यहाँ उनका लंबा इलाज शुरू हो गया। अनिता स्वयं बीमार रहती थी। उसका अपना इलाज भी लगातार चल रहा था। इसप्रकार अब यह घर, घर नहीं अस्पताल हो गया।

इसी दौरान अनिता ने एक दिन अख़बार में किसी सरकारी कार्यक्रम के विवरण में डिप्टी कलेक्टर सुबोध का नाम पढ़ा और उसकी तस्वीर देखी। उसे आंतरिक ख़ुशी हुई। उसने अमन को बताया –"ये रहे तेरे पापा।" कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं। अमन ने तस्वीर सीने से लगा ली। अगले दिन अनीता अमन को लेकर सुबोध के बंगले पर थी। जीवन सरिता में अब तक बहुत पानी बह गया था। किसी को किसी से कुछ कहने की ज़रूरत न थी। तीनों अपने मन में जाने क्या-क्या महसूस कर रहे थे। मौन अनिता ने ही तोड़ा –"तुम्हारी अमानत तुम्हें सौंपने आई हूँ। ये रहा तुम्हारा अमन।"

सुबोध ने नज़र भर अमन को देखा। आँखें डबडबा आईं। अमन पैरों से लिपट गया। उन्होंने उठाकर उसे गले लगाया। अनिता ने साड़ी की कोर से आँसू पोंछे। वह जाने को हुई। सुबोध ने रोकना चाहा। उसने रुकने से मना कर दिया। अमन अब अपने पिता के साथ रह रहा था। वह भीतर से बहुत प्रसन्न था। सुबोध को अमन से हफ्ते भर में ही चौधरी साहब और उनके घर की सारी स्थिति मालूम हो गई। वे चाहकर भी उनके लिए कुछ न कर सकते थे।

उस दिन सुबह-सुबह चौधरी साहब के घर से लैंडलाइन पर फ़ोन आया। अमन ने फ़ोन उठाया। उधर से घरेलू नौकर रामदीन ने कहा –"अमन, थोड़ी देर पहले मालकिन को दिल का दौरा पड़ने से उनका देहांत हो गया।" अमन के हाथ से रिसीवर छूट गया। वह ज़ोर से चिल्लाया –"पापा, मॉम इज़ नो मोर।"

बिना कुछ कहे फटाफट सुबोध ने गैरेज से गाड़ी निकाली और अमन को लेकर वे सीधे चौधरी साहब के घर पहुँच गए। भीतर के बड़े कमरे में जहाँ चौधरी साहब असहाय अपने पलंग पर पड़े थे, वहाँ नीचे फर्श पर अनिता को लेटाया जा चुका था। पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए। देवालपुर से चौधरी साहब के रिश्तेदार पहुँचने ही वाले थे। चौधरी साहब हाथ हिलाकर अस्पष्ट शब्दों में कुछ कह रहे थे, जिसे कोई नहीं समझ रहा था। रामदीन उनके पास खड़ा हुआ अपने अँगोछे से लगातार उनके आँसू पोंछे जा रहा था। वे रो रहे थे। तड़प रहे थे। किसी से कुछ कह नहीं पा रहे थे। अमन दहाड़ मारकर रो रहा था, जिसे सुबोध बार-बार दिलासा दे रहे थे। उनकी आँखों से भी अश्रुधार बह रही थी। अनीता से उनकी इस तरह मुलाकात होकर ख़त्म हो जाएगी, उन्होंने कभी न सोचा था।

इस प्रकार इस प्रेम यात्रा का अप्रत्याशित अंत हुआ।

000

मैग्नोलिया जैसी खिली

वीणा विज 'उदित'

जाड़ों में जब वृक्ष एकदम रूखे और नंगे हो जाते हैं यहाँ तक कि उनकी चमड़ी भी उधड़ने लगती है, तब झील की ओर से ठंडी तेज़ हवा वैसे ही हाहाकार करती हुई उठती है जैसे बर्फ से जमी हुई ठोस झील से आती हवाएँ! मेरा अकेलापन मुझे कुछ यूँ ही कचोटने लग जाता है और बाँसों के जंगल की चुभीली पत्तियों सी चुभन तन बदन में चुभने लग जाती है। केवल अकेलापन, नितांत अकेलापन!

वृक्षों की उधड़ती चमड़ी पर नज़र टिकी थी कि तभी लगा पीठ पर एक छोटा सा बालक मुझ से लिपटा है जिसकी नन्ही- नन्ही बाहें मेरे गले के इर्द-गिर्द हैं। "मामा उठो न, मुझे भूखू लगी है। बोनोइता (बॉर्नविटा) वाला दूधू दे दो।"

झट से उठने का उपक्रम करती हूँ मैं! बेटू की बाँहें पीछे करती हुई, तो वहाँ कुछ भी नहीं, मेरे हाथ खाली फिसल जाते हैं। वह केवल एक ख़याल था! अतीत की गलियों में भटकता हुआ कहीं सताने आ गया था। मैं वृक्ष से लिपटी लता के टूट के गिरने सी मुर्झाने लगती हूँ कि...

तभी कानों में शरद की पुकार सुनाई देती है कि भई बच्चों से फ़ुर्सत मिले तो मुझे भी एक कप चाय का पिला दो। सिर को झटक कर वर्तमान में लौटती हूँ और जल्दी से चाय का पानी चढ़ा कर प्लेट में दो रस्क रखती हूँ; क्योंकि इनको खाली चाय पीना पसंद नहीं। ट्रे में दो कप चाय और रस्क की प्लेट रखकर बाहर बालकनी में टेबल पर रखती हूँ। और अख़बार उठा कर देखने का उपक्रम करते हुए शरद को आवाज़ लगाती हूँ।

"अब आ भी जाओ न यार, चाय ठंडी हो रही है। कहीं बाथरूम तो नहीं चले गए हो?"

अख़बार वहीं पटक कर खीजी हुई भीतर जाती हूँ और देखती हूँ कि पलंग पर केवल एक ही लिहाफ पड़ा है। जिसे देखकर दिमाग़ में टन न न न एक घंटी बजती है- अचेतन मन से चेतन में लौटती हूँ। और दरवाज़े की चौखट को पकड़कर वहीं ज़मीन पर बैठ कर रोने लगती हूँ ज़ोर-ज़ोर से। कहाँ है शरद? मैं तो अकेली हूँ। मैं ज़ोर-ज़ोर से उस अदृश्य आत्मा से बोलने लगती हूँ-

"तुम भी मुझे छोड़ कर चले गए। कुछ न सोचा कि मैं कैसे रहूँगी ? किसके सहारे जीवन काटूँगी ??"

मैं किसको सुना रही हूँ? मेरा ज़ोर-ज़ोर का रोना कौन सुन रहा है? मैं परिस्थिति की यथार्थता को भाँप कर अचानक स्वयं ही चुप कर जाती हूँ।

दूर तक नज़र जाती है तो काले, कुरूप पेड़ों के झुरमुट में वर्षा से भीग-भीग कर काले हो गए पेड़ों के तने नींव से उखड़ कर, उन्हीं सूखे पेड़ों में औंधे गिरे पड़े, शरण माँगते दिखते हैं। बेचारगी... इस बार की पतझड़ ने उन्हें मार ही डाला है। गुल्म तरु के आस की किरणें तब भी बुझती नहीं है; क्योंकि उन सब की दृष्टि सदाबहार "ओक, मैग्नोलिया, चीड़, देवदार" जैसे वृक्षों से पुन: जी उठने की उमंग धारण करती रहती हैं। तभी तो वे उसी हाल में अपने आप को स्वीकार कर लेने की शांति और सहजता से खड़े रहते हैं। उन्हें विश्वास है भविष्य के जल भरे मेघों, सुगंधित पवन और अपनी मिट्टी पर, जो अभी शिशिर से प्रताड़ित है और मलय पवन की राह देख रही है, वसंत ऋतु के आगमन पर दृष्टि जमाए। इसी तरह शायद उनका आस का दीपक जल उठता है। मेरी दृष्टि भी तो कमरे की खिड़की से दिखाई देते मग्नोलिया पर जाकर

वीणा विज 'उदित'
469-आर, मॉडल टाउन, जालन्धर,
पंजाब 144003
मोबाइल- 9682639631
ईमेल- vij.veena@gmail.com

ठहर जाती है...

लेकिन, यहाँ नज़दीक तो क्या दूर भविष्य में भी किसी तरह का कोई आस का दीप नहीं दिखाई दे रहा है। बेटी अपनी दोनों बेटियों का भविष्य बनाने में व्यस्त है लंदन में और बेटा भारतीय सेना में ई एम ई में मेजर है। उसकी पोस्टिंग होती रहती है। सास मॉडर्न है फिर भी उसके आ जाने से बहू को बंदिश लगती है। वह क्लबों में खुले आम व्हिस्की नहीं पी पाती और लोअर नेक नहीं पहन पाती। उसकी आज़ादी में खलल पड़ता है। ऐसी बातें बेटे ने दबी ज़ुबान से माँ के साथ कीं, तो रूपा ने ठान लिया कि वह अब उनके पास नहीं जाएगी। उसने उनके पास जाने के लिए अपनी डायरी में से उनका पृष्ठ ही फाड़ दिया था। हाँ, बेटे का फ़ोन फिर भी आता रहता है कुशल-क्षेम पूछने के लिए।

शरद सारी उम्र बाहर देशों में पैसा कमाने की ख़ातिर ऑयल और गैस कंपनी के ठेके लेता रहता था, जबकि मैं बच्चों को लेकर उसके पास छुट्टियों में जाने को सदैव उतावली रहती। बाकी समय बच्चों की पढ़ाई के कारण दिल्ली में रहती थी। इकलौती औलाद होने के कारण मेरी मम्मी की जब अचानक सोए- सोए मृत्यु हो गई तो मैं अपने पापा को अपने घर ले आई थी। उनकी तीमारदारी के लिए किसी एनजीओ से एक लड़की भी घर में आ गई थी। ज़िम्मेदारियों में मैं ऐसी घिर गई थी कि मुझे पता ही नहीं लगा कब बच्चों की पढ़ाई भी ख़त्म हो गई और एक दिन मेरे पापा भी हमें छोड़ गए।

अब बच्चों की शादी के समय शरद ने दिल्ली में कभी खरीद के रख छोड़ी ज़मीन पर एक शानदार घर बनाया और अपने सारे अरमान पूरे किए। उसे क्या मालूम था कि वह इस संसार से इतनी जल्दी रुखसती पा लेगा! बस दो दिन का बुखार और हॉस्पिटल एडमिट हुआ। न जाने किस मुहूर्त में वह घर से निकला था कि उसका नाम ही ख़त्म हो गया। वहीं अस्पताल के रजिस्टर तक रह गया और वह एक डैड बॉडी बन के घर लाया गया। बच्चों ने इस सत्य को भी स्वीकार कर लिया था कि उनके पापा भी नानू की तरह उनको छोड़ गए हैं, और अपनी-अपनी गृहस्थी में जाकर रम गए थे। जब फूल डाल से झड़ जाता है तो कलियाँ फूलों का स्थान लेने लगती है। यही तो प्रकृति का नियम है। लेकिन पीछे तड़पने और रोने को, शरद की यादों में लिपटी रह गई केवल उसकी रूपा! "मैं"!!

ऊपर का पोर्शन किराए पर दे कर सोचा गुज़ारे के लिए काफी है किराया। कोई सरकारी नौकरी तो थी नहीं की पेंशन आने की आस होती, बस जो कुछ था, यही कुछ था। हाँ, हेमंत ने औपचारिकता निभाते हुए एक बार पूछा अवश्य था-

"ममी, आप को हर महीने कितने पैसे भेज दिया करूँ?"

मैंने मना कर दिया था। और वह भी मान गया था। अपने बड़े बुज़ुर्गों को जैसे पहले परिवार में देखा करते थे हम, मैंने भी अपने आप को भक्ति में लगाने का यत्न किया। क्या करूँ पूजा- पाठ में मन नहीं रमता था। एक सहेली ने मेडिटेशन भी सिखाने की कोशिश की लेकिन मैं नहीं सीख पाई। मेरा ध्यान भटक जाता था।

हम दोनों मियाँ बीवी तो अब जगह-जगह घूमने के प्रोग्राम बना रहे थे। बच्चों की ज़िम्मेवारी से फारिग जो हो गए थे, अब मौज मस्ती के दिन आने थे! वही ख़याल दिमाग़ में घूमता रहता था। कहते हैं ना "बिना भाग्य के कुछ नहीं मिलता", नसीब में बिरहा का रोग जो लिखा लाई थी। वही भुगतना था अब।

मेरी एक पुरानी सहेली कम्मी मुझे मिलने आई और उसने बताया कि वह दुबई अपनी बहन के पास जा रही है, क्यों नहीं वह भी उसके साथ चलती दोनों घूम फिर आएँगी।

"रूपा जगह बदलने से तेरा ध्यान भी बदलेगा और मन भी लग जाएगा क्या बिरहन सी बैठी रहती है?"

यह सखी सहेलियाँ ही होती हैं जो दर्द को कम कर देती हैं सो, वह तो मेरे पीछे ही पड़ गई। उसके बहुत पीछे पड़ने पर मैंने प्रोग्राम बना लिया और अपनी बहन रीता दी को फ़ोन कर दिया। सिया को भी बताया तो वह बेहद ख़ुश हुई कि माँ अवश्य जाओ शायद आपका मन बहल जाए।

हमारा पाँच दिन का प्रोग्राम था। शारजाह अंतरराष्ट्रीय विमान स्थल बेहद ही सुंदर है। दुबई की इमारतें और समुद्र में गगनचुंबी इमारतों का जमघट ऐसा कि देखते हुए आँखें भी चुँधिया जाएँ। सोने के ज़ेवरात की पूरी मार्केट ! चम- चम चमक रही थी मेरे सामने पर अब मेरे किस काम की थी? मेरे साथ शरद होते तो ज़रूर शॉपिंग होती! अब कोई कपड़े और ज़ेवरात मुझे नहीं भाते हैं। ख़ैर, यह सब तो था लेकिन कम्मी मुझे अकेला नहीं छोड़ती थी, फिर भी मेरे मन में घटाएँ घिर आती थीं और बरस कर रीत कर ही लौटती थीं। कोई भी चोट जब लगती है तो बहुत तकलीफ देती है, मेरी चोट भी तो अभी नई है। रात भर मेरी बाँहें शरद को ढूँढ़ती हैं और मेरा सिर शरद की बाँह को! उसे क्या मालूम कि वह दिल्ली में है कि दुबई में! उसे तो शरद की बाँह की तलाश होती है।

वापिस आई तो रीता दी का पानीपत से फ़ोन आया कि अगले हफ्ते हम लोग शिरडी साईं बाबा के दर्शन के लिए चल रहे हैं तुम्हारी टिकट करा ली है अपने साथ। लो जी, पैर में फिर चक्कर था। रीता दीदी और जीजाजी दो दिन पहले ही आ गए थे। घर में रौनक आ गई थी। घर की चहल-पहल में मैं अपना अकेलापन भूल गई थी और उनके साथ हँस रही थी। सोचा यही जादू है परिवार का जो एकल परिवार में नहीं है। मानों मुझ में जान आ गई है। घर में खाना भी बन रहा है और मुझे भूख भी लग आई है। ऐसा लगा मुद्दत बाद खाना खा रही हूँ। नियत समय पर हम शिर्डी गए और अगले दिन वापस आ गए दर्शन करके। मन में भक्ति की जगह घूमने का ध्यान रहा, तो शायद ऐसे दर्शन निरर्थक रहे। जो भी रहा हो, मेरा मन कहीं नहीं लग रहा था।

वक़्त तो अपनी चाल से गुज़र रहा था! अब यह मुझ पर था कि मैं अपने को कैसे सँभालूँ? बुक शॉप पर जाकर कुछ किताबें उठा लाई मैं एक दिन। अपने पलंग के सिरहाने उन्हें सजा लिया। सिडनी शेल्डन का उपन्यास "इफ टुमौरो कम्स" के कुछ पन्ने पढ़कर रात को रख दिया और अपने जीवन से उसका मिलान करने लग गई। आधी रात यूँ ही सोच में

बीत गई। दूसरे दिन सुबह दस बजे आँख खुली। मेरी एनजीओ वाली नौकरानी की शादी हो गई थी तो अब कामवाली बाई ग्यारह बजे आती है सो मैं आराम से सो सकी। मेरे घर कोई नहीं आता सुबह सवेरे! नाही किसी ने कहीं जाना होता है! है ही कौन?

"साफ चकाचक घर है बीबी तुम्हारा, क्या साफ को और साफ करूँ?" कहते हुए बाई सफाइयाँ कर रही थी ग्रेनाईट के फर्श की। मैं तैयार होकर अपना मूड बदलने के लिए कहीं बाहर जाने की सोच रही थी। बाई जैसे ही गई, मैं भी घर बंद करके कार स्टार्ट करके नीता के घर की ओर चल पड़ी। बिना फ़ोन किए वहाँ पहुँची तो वह हैरान हो गई। (शुक्र है वह घर पर थी) मैंने पहले चाय और नाश्ता उससे माँग कर खाया-पिया फिर उससे बातें करने बैठ गई।

बातों बातों में उसने बताया कि वह एक एनजीओ से जुड़ी है जहाँ अनाथ और ग़रीब बच्चे होते हैं। जिनको कुछ सिखाना होता है। लेकिन किस तरह? उनके लिए सामान भी इकट्ठा करना होता है इसके लिए किसी मंदिर या किसी स्कूल में आम घरों से सामान मँगवाया जाता है जो उनके काम का नहीं होता। लोग बहुत प्रसन्न होकर अपने घर का फालतू सामान कपड़ा, किताबें, खिलौने, वुलेन आदि दे जाते हैं। बस इसी सामान से अनाथ आश्रम में रहते इन बच्चों से कुछ नई चीज़ें बनवाई जाती हैं। यह तैयार किया सामान फिर बेचा जाता है, कभी किसी प्रदर्शनी में या किसी मेले में। इससे बच्चों में आत्मविश्वास की बढ़ोतरी होती है और वह कोई स्किल या गुण भी सीखते हैं। जो आगे चलकर उनके जीवन यापन में काम आता है।

जो पत्रिकाएँ और किताबें लोग दान में देते हैं वह इन बच्चों के मानसिक ज्ञान को बढ़ाने में सहायक होती हैं। इन्हीं बच्चों में कई कवि और लेखक भी निकलते हैं और किसी कॉलेज के शिक्षक और प्रिंसिपल भी बनते हैं। इन्हें शिक्षा भी दी जाती है।

इतनी सारी बातें सुनकर मेरा मन नीता के प्रति आदर से भर गया। सोचा, यह तो ईश्वर की मर्ज़ी है कि मैं आज सीधे नीता के घर अपने आप पहुँच गई। ईश्वर ने मेरे लिए यही इशारा किया लगता है। मेरी आस का दीप, मेरे एकाकीपन, मेरे अकेलेपन को दूर करने का यही एक उपाय मुझे सुझाई दे रहा है। मैंने नीता के दोनों हाथ पकड़ लिए और उसे कहा कि कल से मैं भी उसके साथ उस एनजीओ में चला करूँगी और उन बच्चों के साथ समय बिताया करूँगी। जितना मुझसे हो सकेगा मैं मदद करूँगी।

भला नीता को इसमें क्या एतराज था बोली ज़रूर चलना।

साँझ ढले मैं उत्साह से भरी हुई घर आई। मैंने आकर अपने घर का सारा फालतू सामान जो अब मुझे नहीं चाहिए था और शरद की अलमारी से उसके कपड़े वगैरह कुछ चादरें निकालकर उनमें बाँधे। उनकी पोटलियाँ बना लीं जो मैंने सुबह नीता के साथ उस एनजीओ में लेकर जानी थीं। बहुत बड़ा काम हो रहा था यह, जिसे मैंने अभी तक छूने की हिम्मत भी नहीं की थी क्योंकि मुझे समझ ही नहीं आ रहा था कि मैं उनका क्या करूँ? अब एक राह सामने दिखाई दे रही थी। तो सब कुछ सहज भाव से हो रहा था। इस सब से फ्री होकर मैंने दूध का एक गिलास पिया और ख़ूब थकी हुई बिस्तर पर लेटते ही सो गई कल के इंतज़ार में!

अगले दिन नीता के साथ मैं एनजीओ में पहुँची। वहाँ छोटे- बड़े सभी बच्चे थे। वह मुँह उठाए दरवाज़े की ओर ही देख रहे थे। नीता ने जैसे उन्हें प्यार किया मैंने भी एक बच्चे को प्यार किया तो उसने मेरा हाथ चूम लिया। इस पर भाव-विह्वल हो मैंने उसे गोदी में उठा लिया। मेरी आँखें अश्रुपूर्ण हो उठीं, और उनमें आस के दीप जल उठे।

सारी दोपहर उत्साह पूर्वक उनके साथ बीती। मैंने उनकी शिक्षा में आत्मनिर्भरता का गुण पनपते देखा। मैं यह सब देख कर आत्म विभोर हो उठी थी। घर पहुँच कर मैंने सिया को फ़ोन लगाया और उसे यह ख़बर दी। मेरा उत्साह देखकर सिया रोने लगी और प्यार से बोली, "माँ आप मेरे पास आ जाओ और यहीं आकर रहो। मेरा ध्यान सारा समय आपकी ओर लगा रहता है। मैं और ऋषि दोनों ही आपकी चिंता करते रहते हैं।" मेरा मन भी भर आया और उसे तसल्ली दी, "मैं जल्दी ही आने का प्रोग्राम बनाऊँगी, पर कितने दिन? आख़िर तो यहीं लौटना है न ! यदि तुम आ सको तो बहुत अच्छा लगेगा। अब तो बेटियाँ दोनों बड़ी हो गई हैं वह पापा का भी ध्यान रख सकती हैं। अगले महीने तुम्हारे पापा का "वरीना"(बरसी) है तुम पहुँच जाना मैं डेट बता दूँगी।"

यह बेटियाँ क्यों इतनी नरम दिल होती हैं, माँ-बाप के दु:ख-दर्द में शामिल हो उनका ध्यान रखती हैं! सिया के रोने से मैं अंदर तक हिल गई थी, कुछ अच्छा नहीं लग रहा था।

मैं एनजीओ में जाने लग गई थी, लेकिन मेरी सेहत गिरती जा रही थी और मुझे सारा समय थकान लगी रहती थी। खाने-पीने के लिए भी पूछने वाला कोई नहीं था कि अचानक ऋषि का फ़ोन आया कि सिया आपके पास आ रही है। और उसकी आर्टिनरी उसने मुझे भेज दी। मुझ में एकदम से जान आ गई। आख़िर मेरी बेटी मेरी जान आ रही थी मेरे पास। एयरपोर्ट पर उसे देखते ही मेरा माथा ठनका। इतने वर्षों बाद वह पुन: माँ बन रही थी। उसे देख कर मुझसे कुछ बोलते नहीं बना। घर पहुँच कर कुछ सेटल हो कर मैंने उससे आराम से पूछा, "यह सब क्या है सिया?"

सिया ने मेरे दोनों कंधों को पकड़ा और अपना चेहरा मेरे चेहरे के पास लाकर मुझे ढेर सारे चुंबन दे डाले। जितना मुझे आलिंगन में ले सकती थी उतना लेकर बोली, "माँ यह सब तुम्हारे लिए है। जो भी होगा तुम्हारा होगा और तुम ही उसे पालोगी। मैं डिलीवरी करने तुम्हारे पास आई हूँ, मेरे और ऋषि की ओर से तुम्हारे लिए सौगात लाई हूँ।"

मैं अवाक् उसका मुँह ताक रही थी। क्या कोई ऐसी भी बेटी होती है, जो इस हद तक सोच जाए! हक्की बक्की मैं उसकी बातें सुन रही थी।

"माँ, तुम्हें पता भी नहीं चलेगा कब तुम सालों की दूरियाँ तय कर लोगी। तुम पतझड़ में नहीं रहोगी, तुम्हारी आस का दीप जलेगा। हाँ माँ, तुम सदा मैगनोलिया जैसी खिली रहोगी।"

000

रामोतार की फोटो

डॉ. जया आनंद

"लो आय गई बड़के भैया की मोटर... राम- राम बड़के भैया! राम-राम चाची ! बड़ी दीदी राम-राम !" धारीदार पाटरे का पैजामा, फुल शर्ट को बाहों में लपेटे, कंधे पर लाल रंग का अंगौछा डालें वह लगभग चार फुट पाँच इंच का, रंग पक्का यह अदना सा व्यक्तित्व सबका अभिवादन कर रहा था। हाँ उस अदने से इंसान का नाम है राम अवतार पर जब लोग उसे बुलाते हैं तो वह रामोतार हो जाता है।

चाचा -चाची ने राम अवतार के अभिवादन का प्रत्युत्तर दिया। "राम- राम रामोतार भैया !" बड़ी दीदी भी कार से नीचे उतरते हुए मुस्कराते हुए बोली "राम -राम रामोतार"

"आप कितने दिनों बाद आई बड़की दीदी" बड़की दीदी को देखते ही रामोतार शुद्ध खड़ी बोली बोलने की भरपूर कोशिश करता।

"रामोतार भैया! बस पढ़ाई बहुत हो गई है... .. कैसे हो ?"

"बिल्कुल ठीक " रामोतार के साँवले चेहरे पर झक सफेद दाँत मुस्कराते हुए प्रकट हो गए। रामोतार के उत्तर पर बड़की दीदी सोच में पड़ गई 'क्या सचमुच रामोतार बिल्कुल ठीक है। अपने घर में पाँच भाई-बहनों में सबसे बड़ा पर क़द में सबसे छोटा, दो छोटे भाई, दो छोटी बहनें, पिता का साया बहुत पहले ही सिर से उठ चुका था। बूढ़ी होती हुई माँ, कमाने का ज़रिया बस बटाई पर खेती करना, गाँव में छोटा सा कच्चा घर ज़िम्मेदारियों के पहाड़ के नीचे दबा रामोतार... और बिल्कुल ठीक !'

"बड़की दीदी लाइए हम बैग लेते हैं आपका।" रामोतार की खनकती हुई बोली से बड़की दीदी जो अभी बहुत बड़ी नहीं थी दसवीं में ही पढ़ती थी, मुस्करा दी।"

"दीदी! छोटे चाचा, छोटी चाची देखेंगे कि बड़के चाचा आए गइन हैं मेरा मतलब कि आ गए हैं तो बड़े ख़ुश हो जाएँगे। शाम तलक जब सब लोग के आने पर घर में रौनक लग जहियै मेरा मतलब रौनक लग जाएगी।" रामोतार अपनी धुन में बोले जा रहा था। बोलना तो उसकी ख़ासियत है पूरा चलता-फिरता रेडियो जिससे लंबी-लंबी वार्ताएँ अत्यंत ही रोचक प्रसंगों के साथ प्रसारित होती रहती।

"बड़की दी ! ई नल आप नहीं चला सकेंगी हम चलाते हैं।" रामोतार की वही खड़ी बोली।

बड़की दी हँस दी "ठीक है भैया ! आप ही चला दो।" बड़की दीदी आँगन में लगे हैंडपंप से हाथ मुँह धोने लगी।

"दीदी !आप फ़ोटो लाई हो।" रामोतार ने चहक कर पूछा।

"फ़ोटो..." बड़की दी भी सोचने लगी..."फ़ोटो तो मैं भूल गई।" पिछले साल होली में गाँव में सब लोग इकट्ठा हुए थे। दादी और छोटे चाचा-चाची तो वही गाँव में रहते हैं, बाकी सारा परिवार बच्चे होली में अपने-अपने शहरों से पहुँच जाते। होली खेलने के बाद सब नहा धोकर अच्छे कपड़ों में कुर्सियों पर बैठ गए थे। कुर्सियों का इंतज़ाम रामोतार ने ही किया था। "बीच वाली कुर्सी में दादी, ओके बगल वाली मा बड़के चाचा-चाची, दीदी इधर दाहिने तरफ वाली कुर्सी के किनारे खड़ी होंगी, परधान चाचा दादी के दूसरी तरफ और फिर मँझले चाचा-चाची के बगल मा छोटे डॉक्टर चाचा-चाची, उनके पीछे हम खड़े हो जाते हैं अउर बच्चा पार्टी आगै बैठ जावो।" रामोतार सबको निर्देश दे रहा था। मुस्कराते प्रफुल्ल चेहरे के साथ रील वाले हॉट शॉट कैमरे से फ़ोटो खींची गई। गहरे साँवले रंग में चमकते हुए झक सफेद दाँतों के साथ रामोतार सबसे अधिक मुस्करा रहा था।

"बड़की दी हमें यह वाली फ़ोटो चाहिए।" अपनी खड़ी बोली में रामोतार ने बड़े ही आधिकारिक लहजे से बात कही थी।

"हाँ रामोतार भैया! अगली बार ज़रूर ले आऊँगी।" पर बड़की दीदी तो फ़ोटो लाना भूल गई थी। इतनी सारी बातों में रामोतार की फ़ोटो की बात तो मन के किसी हिस्से में समाकर गुम हो गई थी इसलिए गाँव आते समय भूल गई। "रामोतार भैया !अगली बार याद से लेकर आऊँगी।"

"अबकी बार ज़रूर ले आइएगा दीदी !" रामोतार के काले चमकते चेहरे पर सफेद दाँत के

डॉ. जया आनंद
सी-204, सेक्टर- 19, ऐरोली,
इनटॉप हाइट्स, नवी मुंबई-400708
महाराष्ट्र
मोबाइल- 9769643984
ईमेल- maipanchami@gmail.com

साथ मुस्कान बिखर गई ...पर आँखों में कहीं उदासी भी झलक रही थी। रामोतार सच पूछो तो सबकी उदासियाँ गठरी में उठाकर फेंक देने का काम करता। होली की शाम चाय सिधरी में (मिट्टी की बनी कोठारिया) में सब पीते और रामोतार चबूतरे पर खड़ा हो जाता। "रामोतार! आज कौन किस्सा से लेकर आए हो?" डॉक्टर चाचा ने चाय सुड़कते हुए पूछा

"उ दिन चाचा ! गाँव में जब परधानी की कुर्सी जीते रहे, एक जने बीस-बीस रुपये की माला पहनाई, दूसरे जने पचास-पचास की, तीसरे जने कहे हम तुमसे पीछे काहे रहे कोई कम तो हैं नहीं, उन्होंने सौ-सौ के नोट की माला पहनाई। हम तो चाचा का मुँह देखत रहे। चाचा नोटों की माला में फँसे गला कैसे खुजलाएँ ? हम सोचै कि हम खुजलाय दें पर हमारा क़द और हमारा हाथ चाचा की गर्दन तक कैसे पहुँचे ! भगवान् जी हमार क़द बहुत ही बढ़िया बनाए हैं..." रामोतार बोलते-बोलते हँस पड़ा शायद जब वो उदास होता है तो हँस पड़ता है... " फिर भैया, एक जने बालूशाही और लड्डू लेकर चले आए और चाचा के मुँह में ठूस दिए। अब चाचा ऊपर से मुस्करा रहे पर भीतर- भीतर ग़ुस्सा कर रहे थे ... 'हाथ में देना चाहिए तो मुँह में ठूस दिए', बाद में हमका भी एक ठो लड्डू पकड़ाईन। हम चाहते थे बालूशाही खाना.. उसके बाद चाचा के साथै भीड़ चलने लगी, आप सब रुतबा देखते... अइसा लागत रहै जैसे गांधी पिक्चर मा गांधी जी दांडी यात्रा करत रहे वैसे ही हम सब चाचा कै साथ एक साथ चलत रहैं। एक जने आ के चाचा का पैर पकड़ लिए, हम सोचे 'लो हो गया अब कल्याण। चाचा कहीं ज़ोर ना बोल दें कि पैर काहे पकड़े हो मुँह से बोलो जो बोलना है।' पर हम देखे चाचा मुस्कराते रहे। हम समझ गए कि चाचा अब पूरे नेता हुई गए हैं।... .. बड़की दीदी आप को समझ आ रहा है न!"

"हाँ हाँ रामोतार भैया!आप अच्छी हिन्दी बोल रहे हो फिर क्या हुआ, आगे बताओ !"। बड़की दीदी ने उत्सुकता से पूछा।

"अरे दीदी! आप बड़े मज़े लेकर सुन रही हैं।" रामोतार ख़ुश हो गया था।

"रामोतार सुनाओ आगे की कहानी।" छोटी चाची मठरी खाते हुए बोली।

".... हाँ चाचा सब लोगन से घिरे-घिरे घर आए गए। दादी, चाची आरती का थाल लिए चाचा की आरती उतारे लगीं। हम तो चाची का चेहरा देखते रहे, अइसी सरमात रहीं जइसे कि छुईमुई सरमाए जात है मेरा मतलब कि चाची बहुत शरमा रहीं थीं। हमको तो इत्ती हँसी आई कि पूछो नहीं पर चाचा अपने में मस्त रहे। दादी चाचा को पान खिला दीं... हाँ हम भूल गए रहे कि चाचा का वहाँ गाँव में सब लोग माला पहनाय रहे, दादी तिलक लगाए रहीं और अब पान का बीड़ा से मुँह लाल... चाचा इत्ते जम रहे थे कि पूछो नहीं।" और कुछ सोचकर रामोतार मुस्कराया।

"क्या हुआ रामोतार भैया !" प्रिया बिटिया आँखों में चमक लिए बोली

"कछु नहीं छोटी बिटिया ! हम तो बस चाचा के परधान बने पर जो जलवा देखे रहे वो तो गजब रहा, हमारा सीना चौड़ा हो गया कि हम ही कुछ बन गए हैं।" रामोतार की परधान चाचा की गौरव गाथा चलती जा रही थी। रामोतार गाथा कहते हुए कभी मुस्कराता, कभी ज़ोर से हँसता, कभी थोड़ा सोचता... सब के सब उसकी बातों को सुनते रहे। इतना रस रहता रामोतार की बातों में कि कोई टस से मस नहीं होता। रात हो रही थी रामोतार को अचानक कुछ याद आ गया। "भैया! अब दुसरे दिन सुनाइब।" रामोतार की गाथा का मध्यांतर आ गया था शायद!

रामोतार परधान चाचा की गौरव गाथा गाते हुए अपने घर पहुँच गया था। चूल्हे पर बूढ़ी माँ रोटियाँ सेक रही थी, छोटी बहन प्याज़ काट रही थी, एक बहन सिल पर चटनी पीस रही थी, दोनों छोटे भाई कच्चे आँगन में बिछी खटिया पर पसरे हुए थे। हँसता-मुस्कराता रामोतार घर में बड़ा है क़द का छोटा है तो क्या हुआ; बड़प्पन की गंभीरता रामोतार के चेहरे पर घर पहुँचते ही उभर आती।

रामोतार के आगे खाने की थाली आ गई थी। दाल, रोटी, प्याज़, पानी... "अम्मा ! सब्जी काहे नहीं बनाई?" रामोतार ने खाना देखकर मुँह सिकोड़ा।

"बेटवा ! आज हमारे पास पैसा रहे नाही और यह मधुरिया परधान भैया के बगिया गई नाही वहीं से तोड़ लाती कौनो सब्जी, यही खातिर दाल बनाय लिहैं।" अम्मा रोटी सेकते-सेकते बोली।

रामोतार ने दो मोटी-मोटी गुदारी रोटी खाई प्याज और दाल के साथ और वह भी आँगन में बिछी खाट पर अपने दोनों छोटे भाइयों के साथ लेट गया। आँगन के पास पेड़ से आच्छादित आकाश के झाँकते हुए टुकड़े में टके हुए सितारों को रामोतार निहार रहा था कि उसकी नज़र आँगन के पास बने कमरे की कच्ची दीवार जिसे उसकी बहन मधुरिया ने नीचे गेरू और चूने से रंग के कुछ चित्रकारी की थी, पर चली गई '...हाँ ई जगह पर परधान चाचा, दादी बड़के भैया, बड़ी दीदी के परिवार की फ़ोटो के लिए बहुत बढ़िया है, हमहुँ साथ खड़े हैं फ़ोटो में। परधान चाचा हैं आख़िर हमरे, हमरा रुतबा भी बढ़ जाई...' रामोतार यही सब सोचता रहता।

गाँव का रिवाज था कि होली के दिन परधान चाचा का परिवार और उनकी बिरादरी के लोग सुबह-सुबह नए कपड़े पहन कर एक दूसरे से होली मिलने जाते और मजाल है कि कोई भी उन पर रंग डाल दे। रामोतार भी हमेशा की तरह साथ चल दिया।

"कौनो हमरे ऊपर रंग ना डार्यो, हम चाचा के साथै हैं।" रामोतार रौब जमाते हुए बोलता

"बड़की दीदी ! आप आगे चलो, गुझिया, पापड़ खा लीजियेगा सोना चाची के यहाँ.....और दीदी! अब की बार फ़ोटो ज़रूर लायो मेरा मत लाइएगा।" रामोतार बोलता जा रहा था। बड़की दीदी हँसकर रह गई। रामोतार अपने अभावों को किनारे करता हुआ उन सब की ख़ुशी में शामिल था।

सुबह होली मिलन होने के बाद पहले की भाँति सब ने पुराने कपड़े पहने और आँगन में जमकर होली होने लगी। बड़ी दीदी पूरे जोश से बाल्टी में रंग भर -भर कर सब पर डालती जा रही थी। "रामोतार भैया ! ज़रा बाल्टी भरो" बड़की दीदी ने कहा

"हाँ ..हाँ दीदी" रामोतार हँसते हुए आँगन में लगा हैंडपंप चलाने लगा। छोटे चाचा ने

आकर रामोतार पर ही रंग उड़ेल दिया। "अरे नहीं भैया ! हम का नाही भिगायो" रामोतार मुस्कराते हुए बोला। रामोतार की दोनों छोटी बहनें मधुरिया और किरनिया और दोनों छोटे भाई जो रामोतार से ख़ासे लंबे थे, सब आँगन में एक कोने में खड़े परधान चाचा के घर की होली देख रहे थे। रामोतार सबको देख- देख कर ख़ुश हो रहा था। ...रामोतार हमेशा से ऐसा ही रहा था ख़ुद कभी नहीं खेलता पर सबको रंग खेलता देख ख़ुश होता ...शायद दूसरों की ख़ुशी में ही वह ख़ुश हो लेता है। "मधुरिया किरनिया ! अब घर चलो" रामोतार में बड़े भाई का अधिकारिक भाव जाग गया था और उसे अकेली अम्मा की भी चिंता है। मधुरिया, किरनिया घर चली गईं, दोनों छोटे भाई परधान चाचा के घर में गाय, बछड़ों का प्रबंध करने चले गए।

परधान चाचाजी का परिवार होली खेलने के बाद नहा-धोकर तैयार हो गया था। आँगन में रामोतार ने फिर से कुर्सियाँ सजा दी थीं पर अब की बार छोटे भैया, छोटी दीदी नहीं आई थीं बोर्ड परीक्षा के कारण, इस बार भी फ़ोटो खींची गई। रामोतार भी था फ़ोटो में बड़की दीदी के बगल में ही खड़ा था। फ़ोटो खींचने के बाद रामोतार बोला "दीदी! हमें पिछले साल वाली फ़ोटो चाहिए उस फ़ोटो में सब हैं।" रामोतार खड़ी बोली पर आ गया था जैसे दीदी से बात करते हुए हमेशा से करता था।

"भैया! अबकी बार नहीं भूलेंगे पर आज शाम आप कौन सा किस्सा सुनाने वाले हो।"

"आज शाम का सुनिहो मेरा मतलब शाम को सुनिएगा बड़की दी से।" रामोतार देहाती भाषा में बोलते हुए अचकचा गया।

शाम सात बजे आँगन के पास बनी सिधरी (मकान का कच्चा भाग) में सब इकट्ठा हो गए। चाय की चुस्की के साथ रामोतार की कहानी सुनने के लिए सब उत्सुक थे।

"रामोतार! आज कौन सा किस्सा ?" छोटे चाचा बोले

"भैया ! आज तो अबहैं का किस्सा है।"

"कौन सा।" छोटे चाचा बोले

"अरे बड़के चाचा का...आज गाँव के रामलीला मैदान में जो भाषण दिए रहें वही ... सब लकदक हुई के सुन रहे धे। हम भी सुन रहे थे। पहले तो बड़के चाचा कविता बड़े जोश में बोले तो हमको थोड़ा बहुत समझ आया पर लगता रहे कि बहुते बढ़िया कविता बोल रहे।"

"रामोतार! बताओ भई कैसे बोल रहे थे हम।" बड़के चाचा हँसते हुए पूछने लगे।

रामोतार हाव भाव प्रदर्शित करते हुए पूरा अभिनय दिखाता रहा। "फिर क्या हुआ रामोतार भैया !" बड़की दीदी की आँखे चमक रही थीं।

"फिर सब जन ज़ोर से ताली बजाए। बड़के चाचा बिल्कुल अटल जी लग रहे थे और भाषण भी अटल जी जैसा देते रहे।" रामोतार अटल जी का अभिनय कर के बताने लगा ".. ये बात नई है... ." सब ज़ोर से हँस पड़े। और उसके बाद बड़के चाचा एक गीत गाए 'ऋषि मुनि राजा प्रजा ...' ऐसे रहै कछु बहुते बढ़िया गायिन। हम तो बड़के चाचा के बगल में खड़े हुई गए। सब गाँव वाले हमको भी का देखै लगे।" बोलते हुए राम अवतार का चेहरा मुस्कराते हुए लाल होने लगा।

राम अवतार के किस्से सब मज़े लेकर सुनते रहते। रामोतार सबको हँसाते रहता पर अपने घर पहुँचते ही उसके चेहरे पर गंभीरता आड़ लिए खड़ी हो जाती। दोनों बहनों की शादी, दोनों भाइयों की देखभाल, बूढ़ी होती हुई अम्मा की चिंता, घर बसर करने की बेचैनी, परधान चाचा के खेत से बटाई का पैसा काफी नहीं पड़ता है, रमेश चाचा के खेत का भी काम ले लेते तो कुछ बात बनेगी, इन सबके बीच में अपने लिए कुछ सोचता ही नहीं।

"भैया !आज पूरी सब्जी बना रहे, खाय लो।" रामोतार की अम्मा खाना परसते हुए बोली।

"अम्मा ! परधान चाचा के यहाँ खाय लिहै, दादी खिलाये थी, बहुते स्वादिष्ट खाना था।" कहते हुए रामोतार पानी से हाथ-मुँह धो कर आँगन में बिछी खाट पर पसर गया। परधान चाचा का परिवार उसके लिए बड़ी नियामत के समान था। उस परिवार की ख़ुशी में ख़ुश और उसके दुख में दुखी। लेटे हुए रामोतार की नज़र फिर सामने वाली खाली दीवार पर पड़ी, यहाँ परधान चाचा, दादी, बड़की दीदी सब की फ़ोटो लग जाए बहुत बढ़िया लगेगा, मधुरिया की शादी में फ़ोटो की वजह से हमरा रुतबा बढ़ जाब फिर अपनी भी शादी करेंगे, हमारी औरत भी फ़ोटो देख कर ख़ुश होगी कि उसका आदमी परधान चाचा के यहाँ काम करत है।' रामोतार के चेहरे पर लजाई सी मुस्कान बिखर गई थी। क़द का जितना छोटा था रामोतार सपने भी उसी क़द के थे। अपने सपनों की दुनिया बनाते-बनाते रामोतार की आँख लग गई।

अगले दिन बड़के चाचा, डॉक्टर चाचा अपने-अपने काम पर होली की छुट्टी ख़त्म होते ही लखनऊ जाने लगे। "बड़की दीदी ! अब की बार आयो तो फ़ोटो याद से ले आयो मतलब ले आइएगा।" फिर आधी देहाती आधी खड़ी बोली बोलते हुए रामोतार सब के पैर छूने लगा।

"हाँ रामोतार भैया! अबकी बार नहीं भूलेंगे।" बड़ी दीदी मुस्करा दी।

अगले दो साल बड़की दीदी गाँव आई ही नहीं, बोर्ड परीक्षा में व्यस्त थी, तीसरे साल जब आई तो रामोतार की फ़ोटो का ध्यान ही नहीं रहा। उस फ़ोटो की नेगेटिव धुलवाने का किसी को ख़याल ही नहीं आता और रामोतार की फ़ोटो का सपना धरा का धरा रह जाता।

" दीदी अबकी बार आयो मतलब आइएगा तो फ़ोटो ले आइएगा।" रामोतार याद दिलाता रहता और साथ ही अपने किस्सों के पिटारे से कोई ना कोई नया किस्सा सजीव प्रसारण के साथ सुना कर सबका मन मोह लेता और रात फिर गहराते सूनेपन के साथ बिता देता।

अपनी बहन मधुरिया की शादी रामोतार ने पास के गाँव के दुकानदार से करवा दी पर परधान चाचा के परिवार के साथ वाला फ़ोटो का रुतबा वह तो अधूरा ही रह गया था।

बड़की दीदी की शादी तय हो गई थी। गाँव में रामोतार अपने छोटे भाइयों के साथ लखनऊ आ गया था। बड़की दी शादी की रस्मो-रिवाज में व्यस्त थी। रामोतार को देख कर मुस्कराते हुए बोली "रामोतार भैया! आप शादी के कामकाज सँभालो।" रामोतार ने

मुस्कराते हुए हाँ में सिर हिलाया। फ़ोटो की बात अभी भी भूला नहीं था। रामोतार अपने दोनों भाइयों के साथ दौड़ -दौड़ कर काम करता "रामोतार भैया पानी ला दो, रामोतार! बिस्तर बिछा देना, रामोतार!चावल की बोरी रखवा दो, रामोतार हलवाई के पास सब्जी की बोरी दे आओ ...।" रामोतार हँसते-हँसते काम करता जाता। दोनों छोटे भाई भी उसके साथ लगे रहते। धूमधाम से शादी हुई। रामोतार अपने पाटरे वाले पजामे की जगह सफेद पजामे बुशर्ट में सजा-धजा काम करता रहा और साथ ही सबको हँसाता भी रहता।

बड़की दी विदा होकर ससुराल चली गई। गाँव में होली मनती रही पर बड़की अपने घर गृहस्थी के बीच गाँव नहीं पहुँच पाई। दस साल बीत गए। गाँव के परधान चाचा के मंदिर का सौ साल हो रहा था। परिवार के सब लोग पहुँच रहे थे। बड़की दीदी को गाँव जाने की बहुत ललक थी। अवसर ने गाँव जाने की ललक में वृद्धि कर दी थी। बड़की दीदी अपने बच्चे पति समेत गाँव पहुँचकर भावविभोर हो रही थी। मंदिर में स्थापित बारह ज्योतिर्लिंग, राधा- कृष्ण सभी देवी- देवता थे। लंबा चौड़ा आँगन, आँगन में लगा अनार का पेड़ और वह मकान का वह कच्चा भाग सिधरी अब नहीं थी, टूट चुकी थी। सिधरी की याद आते ही रामोतार का चेहरा आँखों के सामने घूम गया।

शादी के लगभग दस दिन बाद ही बड़ी दीदी नई नवेली दुल्हन के रूप में अपने पति के साथ गाँव पहुँची थी। नए-नए जीजा जी को सब ने होली पर ख़ूब रंगा था। रामोतार पास खड़े होकर हैंड पाइप चलाते पानी की बाल्टी भरे जा रहा था। शाम को सिधरी में सब बैठ गए थे चाय की चुस्की के साथ और रामोतार पूरे जोश के साथ किस्सा सुनाने लग गया बड़की दीदी की शादी का ... "भारी इंतज़ाम किए रहैं बड़के चाचा कि का बताए ...कौनो खाने की कमी ना रही, गुलाब जामुन, रसगुल्ला, रस मलाई, दोसा, पानी बताशा ...हम तो ख़ूब खाए और जय माल का स्टेज तो बहुत बढ़िया रहा। बड़की चाची छोटी चाची सब गाना गाए रहीं तो लगे हम कौनो पिक्चर देख रहैं और बड़की दीदी -जीजाजी उसके हीरो हीरोइन है एकदम राम -सीता की जोड़ी। बारात में एक मोटे थे, वो ऐसा नाच रहे थे कि का बताइ, एक ज़मीन में लोट गए। हम सोचे काहे इतना बढ़िया कपड़ा पहने की ज़रूरत है जब नीचे लोटे का है। शादी का पंडित गायत्री मंत्र बोल रहें थे। वो सब जन का डाँट दिए कि अभी गाना मत गाओ मंत्र सुनो... हमे तो छोटे चाचा का बियाह याद आ गया जब शादी में कोई पंडित जी का मंत्र नहीं सुन रहा था बस अपना अंताक्षरी खेल रहे थे।"

"रामोतार अब तुम्हारी भी शादी भी होनी चाहिए।" छोटे चाचा बोले।

"चाचा! पहले मधुरिया, चंदर को ब्याह होइ जाए तब सोचिबै.. कौनो लड़की मिलत नाहीं।" रामोतार शरमा गया। "रामोतार बिहार से भगा के ले आएँ कोई लड़की तुमरे लिए।" छोटे चाचा बोले।

"नहीं मिलेगी तब चाचा! भगाए लिहो।" रामोतार ज़ोर से हँस पड़ा था।

बड़की दीदी के सामने रामोतार का पूरा चलचित्र खिंच गया। रामोतार की एक-एक बात, उसकी भाव- भंगिमा याद कर बड़की दी मुस्करा दी।

"बड़की दीदी कैसी हैं आप ?" रामोतार की दोनों छोटी बहनें सामने खड़ी थीं।

"अरे किरनिया, मधुरिया कैसी हो ?शादी हो गई दोनों की!"

"हाँ बिटिया अब सब ज़िम्मेदारी निभ जाए ऐसे सोचत हैं।" रामोतार की अम्मा आ गई थी।

अभी तक रामोतार कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा था। "अम्मा! रामोतार किधर है?... और उसकी शादी..." बड़की दीदी का प्रश्न अधूरा ही रह गया

"बिटिया ! सब छोट भाई -बहन की सादी रामोतार कर दिहिन पर आपन...इनके कद की कौनो मिलते नाहीं, का करी।"

बड़की दीदी सोच में पड़ गई कुछ बोलते ही नहीं बना। रामोतार कुछ देर बाद आया पर चेहरे पर वो रौनक जो पहले हुआ करती थी अब नदारद थी।

"कैसी हो बड़की दीदी ? आप बहुत साल बाद आई।" रामोतार ने मुस्कराते हुए औपचारिकता निभाई।

"हाँ भैया! घर गृहस्थी,.....बच्चों ! यह रामोतार भैया, बहुत बढ़िया किस्से सुनाते हैं।" बड़की दीदी ने रामोतार को उत्तर देते हुए अपने बच्चों से परिचय करवाया।

मंदिर का पूजा पाठ, गाँव का की दावत का कार्यक्रम चला, भजन कीर्तन भी हुआ, गाँव की बगिया, फुलवारी की घुमाई भी हुई... बस नहीं हुआ तो दादी से मिलना (दादी अब नहीं रही थी) और रामोतार के किस्से। सिधरी टूट चुकी थी और शायद रामोतार के किस्सों के लिए कोई मंच भी अब नहीं बचा था। सुबह सब के जाने की अफरा-तफरी मच गई। रामोतार गाड़ी में सब का सामान चढ़ा रहा था। सारे लोग गाड़ी में बैठ गए थे। अब गाँव में छोटे चाचा भी नहीं रहते वह भी लखनऊ आ गए। रामोतार अकेला खड़ा था नीचे मुस्करा रहा था धीरे से बोला "दीदी ! आप फिर आयो हो मेरा मतलब आइएगा" इस बार उसने फ़ोटो की बात नहीं कही पर फ़ोटो की बात भूला तो रामोतार भी नहीं और बड़की दीदी के भी मन के कोने में रामोतार की फ़ोटो बसी थी पर न रामोतार बोला न बड़की दीदी कुछ बोल पाई। अब तो मोबाइल फ़ोटो का ज़माना आ गया था। सब डिजिटल पर उस फ़ोटो की तो बात ही अलग थी। पूरा परिवार था उसमें रामोतार के साथ, रामोतार के रुतबे की बात थी। अब तो कई लोग इस दुनिया से कूच कर चुके हैं और समय के साथ फ़ोटो भी पुरानी पड़ चुकी है और रामोतार का रुतबा भी। रामोतार की वह कच्ची दीवार अब भी सूनी है वहाँ कोई फ़ोटो नहीं और वह सूनापन उसके जीवन में भी। वह बिल्कुल अकेला है।

बड़की दी ने चलते हुए पाँच सौ का नोट उसे थमा दिया "अरे नहीं दीदी !" रामोतार सकुचा गया। बड़की दीदी ने ज़बरदस्ती उसके हाथ में नोट पकड़ाया और मुस्करा दी आख़िर कुछ भी तो नहीं दे पाई रामोतार को, एक फ़ोटो तक भी नहीं जिससे वह अपने रुतबे की बाट जोहता रह गया... किस्से सुनाने वाले रामोतार के जीवन का किस्सा तो अधूरा था पर रामोतार अब भी मुस्करा रहा था।

000

माँ का बक्सा

टीना रावल

वृद्धाश्रम का सालाना कार्यक्रम चल रहा है, शहर के मुख्य गणमान्य नागरिक और प्रशासनिक अधिकारियों समेत मुख्य अतिथि मंच पर आसीन हैं। वृद्धाश्रम के संस्थापक व संरक्षक अवधेश शर्मा जी ने मुख्य अतिथि शहर के जिलाधीश को मंच पर अपना वक्तव्य देने के लिए आमंत्रित किया। जिलाधीश महोदय ने माइक पर आकर सभा को संबोधित किया- "मैं आज इस वृद्धाश्रम में आकर भावविभोर हो गया हूँ, हमारी कल्पना से परे इस वृद्धाश्रम के इन बुज़ुर्गों ने इसे अपना स्वर्ग बना रखा है। इतनी सुव्यवस्था और आपसी तालमेल से यहाँ का जीवन चलता देख बहुत ख़ुशी हो रही है। यहाँ नियमित रूप से आने वाले डॉक्टर सुरेश तिवारी जी ने बताया कि यहाँ के बुज़ुर्गों की जीवन शैली बहुत ही सकारात्मक और ऊर्जायुक्त है। मुझे बहुत ख़ुशी है कि अवधेश जी के प्रयासों से शहर में एक ऐसी जगह भी है, जहाँ उम्र और हालात से जीवन संध्या में लाचार लोग आश्रय ही नहीं पाते हैं बल्कि ख़ुशहाल तरीके से जीते भी हैं। प्रशासनिक स्तर पर जो भी सहायता मुझसे होगी मैं हर समय तैयार रहूँगा।" अपने उद्‌बोधन के बाद आयोजित जलपान सभा में जिलाधीश जी ने अवधेश जी से पूछ लिया- "अवधेश जी आप रिटायर्ड इंकम टेक्स ऑफ़िसर हैं, यह वृद्धाश्रम स्थापित करने का क्या कारण रहा?"

अवधेश जी ने नम्रता से इसका उत्तर दिया- "कोई दस साल पहले की बात है, मेरी नियुक्ति सीनियर इन्कम टैक्स ऑफ़िसर बन कर जिस शहर में हुई वहाँ पहला छापा किसी रेवेन्यू इंस्पेक्टर अभिनव चौधरी के यहाँ डाला गया, उसका आईडेंटिटी कार्ड जब मैंने देखा और पारिवारिक इंक्वायरी की तो पता चला, उसके पिताजी मेरे ही पैतृक शहर के थे। जो मुझसे बड़े थे और युवावस्था में हमारी बहुत अच्छी जान-पहचान थी। मेरी आँखों में दोस्ती के सुहाने दिन तैर गए लेकिन समय के साथ संपर्क सूत्र छूट गए थे। ख़ैर जब ड्यूटी पर आ ही गए थे तो काम पूरी ईमानदारी से करना ही था। मेरी डिपार्टमेंट की लिस्ट में अभिनव चौधरी का रिकॉर्ड अच्छा नहीं था तभी तो छापा डालने की नौबत आई होगी। घर की क़ानूनी तरीके से चप्पा-चप्पा तलाशी शुरू की गई। घर के लॉकर से प्रॉपर्टी के कई नामी-बेनामी कागज़ात, सोने के गहने, बैंक लॉकर की चाबियाँ, घर के बिस्तर और फर्श की टाइल्स के नीचे से नोटों के बंडल निकले। यह मकान भी शहर के पॉश इलाके में आलीशान था, लग्ज़री कार और मँहगी बाइक, लिस्ट बनाई जा रही थी। पति-पत्नी दोनों घबराकर पसीना-पसीना हो रहे थे, बच्चे भी सहमे हुए थे जो कि लाज़मी है। तभी घर के पीछे के हिस्से से हमारे कर्मचारी के ज़ोर से बोलने की आवाज़ आई- "माता जी! आप हमें अपना काम करने दीजिए, यदि आप ऐसे हमें सहयोग नहीं करेंगी तो यह क़ानून के काम में ख़लल डालना माना जाएगा।"

मैं आवाज़ की दिशा में चलते हुए पीछे पहुँचा। एक हल्की लाइट वाला छोटा सा कमरा था, जिसमें साधारण सी चारपाई, उसके नीचे से आधा बाहर आधा अंदर की ओर रखा ताला लगा छोटा संदूक था। जिसे वह वृद्धा शायद मेरे मित्र की पत्नी हाथ से दबा कर बैठी थी। मैं उनसे पहले कभी मिला था ऐसा याद नहीं। मैंने हाथ जोड़कर कहा- "नमस्ते भाभीजी, मैं आपके पति का युवावस्था का मित्र हूँ, लेकिन अभी हम इन्कम टैक्स डिपार्टमेंट से आए हैं। आप हमें अपनी कार्यवाही करने दीजिए, यह संदूक इन कर्मचारियों को सौंप दीजिए।" वृद्धा का बेटा-बहू भी वहाँ आ चुके थे। वृद्धा सकुचाई सी हतप्रभ आँखों से वहाँ खड़े सभी लोगों को देखने लगी, फिर हाथ जोड़कर भीगी आँखों और भीगी आवाज़ से बोली- "आप अपना काम कीजिए मैं आपके किसी काम में अड़चन नहीं डालूँगी पर मेहरबानी करके इसे मत खोलिए। मेरे पास कुछ भी नहीं है, कोई सोना या गहना, बस इसे छोड़ दीजिए।"

उसका बेटा चिल्लाकर बोला- "माँ क्या नाटक कर रही हो ? बक्सा दे क्यों नहीं देती इन्हें?"

बहु से भी न रहा गया- "माँजी, बक्से में माल छिपाकर किसके लिए जोड़ रही हो, हमें तो भनक भी न लगने दी।"

"आपको कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है, मैं बात करता हूँ।" मैंने बीच-बचाव किया- "आप समझ नहीं रही हैं, आपके बेटे के घर इन्कम टैक्स का छापा पड़ा है, आय से अधिक संपत्ति

टीना रावल
ए-129, महेश नगर,
जयपुर-302015, राजस्थान
मोबाइल- 8949214108
ईमेल-teenarawal1979@gmail.com

रखने व अन्य कई आरोप हैं। हमारा मक़सद आपको परेशान करने का नहीं है, यदि इस बक्से में कोई आपत्तिजनक चीज़ नहीं है तो आपको घबराने की ज़रूरत नहीं है।"

वह अपने बेटे की ओर देख कर बोली- "तुम इकलौते हो बेटा, तुम्हारे पिताजी की संपत्ति और मेरे ज़ेवर पहले ही तुम्हें सौंप चुकी हूँ, मेरे पास अब कुछ नहीं है। बस बेटा! मेरी ममता की लाज रख ले, इस बक्से को मत खुलने देना।"

"देख लिया अपनी माँ को, मैं न कहती थी, अभी तो दबा रखा है, पर आप तो बेटे हो, मेरी क्यों सुनोगे ?"

वह पढ़ी-लिखी और संभ्रांत दिखने वाली महिला अभिनव चौधरी की पत्नी अपनी सास के प्रति निष्ठुर व्यवहार करती होगी, इसकी गवाही वह छोटा-सा साधारण कमरा दे रहा था, जिसमें एक संदूक, एक चारपाई, कुर्सी और एक पानी का मटका था। सामने अलमारी में मेरे मित्र की और भगवान् की तस्वीर थी। मैं भी सोच में पड़ गया कि आख़िर इस बक्से में ऐसा क्या है जो यह इसे नहीं देना चाहती हैं, हो सकता है बेटे से छिपा कर कुछ पैसा जमा किया हो या इसके पति ने अंतिम समय पर काम आने के लिए कुछ कीमती रख छोड़ा हो। जो भी हो मेरे मित्र की पत्नी की स्थिति अच्छी नहीं थी। साधारण सूती धोती में कमज़ोर शरीर, आँखें कातर, दबा स्वर, अपने ही घर में डरी सहमी सी। एक बार तो बहुत ग़ुस्सा आया कि उसके बेटे को लताड़ूँ, पर ड्यूटी पर था सो उदासीन बना रहा।

"यह सब इनकी ही बद्दुआओं का असर है कि आज हम बर्बाद हो गए हैं, दिन-रात कमरे में पड़े-पड़े आँसू बहाती रहती हैं, जैसे हम इन्हें बहुत दुख देते हैं। इनका बस नहीं चला वरना हमें ज़िंदा खा जाए।" वृद्धा की बहू अपने असली रूप में आ गई।

"आप यह बक्सा दे दीजिए भाभीजी, इन लोगों को तो मैं बाद में देखता हूँ। इंस्पेक्टर वर्मा तुम अभिनव चौधरी और उनकी पत्नी को यहाँ से ले जाओ और क़ानूनी कार्यवाही जारी रखो। श्रीवास्तव तुम मेरे साथ यहीं रुको।" मैंने उस वृद्धा से अकेले में बात करना ठीक समझा। वह सब के जाने के बाद रो पड़ी, बड़ी दया आ रही थी मुझे उन पर, ऐसा लग रहा था जैसे मेरी कोई अपनी हैं। वे न बेटे की शिकायत कर पा रही थीं न घर का भेद खोल पा रही थीं।

"बस कीजिए भाभीजी, मैं आपकी सहायता तभी कर पाऊँगा जब आप इस समय क़ानूनी कार्यवाही में रुकावट न बने। श्रीवास्तव, यह बक्सा हॉल में ले चलो और खोलो।"

"जी सर।" श्रीवास्तव ने बक्सा हाथ से लेते हुए वृद्धा से पूछा -"क्या आप इस घर में क़ैद हैं, कहीं मंदिर वगैरह भी नहीं जाती हैं।"

"बेटा इस उम्र में ज़्यादा चल फिर नहीं सकती इसलिए तीन बरस से यहाँ से कहीं नहीं गई।"

"नहीं माँजी आप झूठ बोल रही हैं, घर में काम करने वाली बाई बाहर आई तो उससे हमने पूछताछ की है, आप अपने बेटे-बहू के अत्याचार छिपा रही हैं, न वे आप को मंदिर जाने देते हैं, न पास पड़ोस और न रिश्तेदारों से मिलने-जुलने देते हैं।" श्रीवास्तव यह कहते हुए उनका हाथ पकड़कर हॉल में लाता है।

हॉल में सभी बक्सा खोलने इकट्ठे हो जाते हैं। वृद्धा एक बार फिर काँपते हुए गुहार लगाती है- "देखिए आप अपने दोस्त के परिवार की लाज रख लीजिए, इसे मत खोलिए।"

"आप निश्चिंत रहिए भाभीजी, आपका ऐसा कोई सामान हम नहीं लेंगे जो बस आपका है।" मैंने आख़िरी आश्वासन दिया।

श्रीवास्तव ने मेरे सामने टेबल पर रख कर उस बक्से को चाबी से खोला, उसमें जो निकला एक बार तो किसी के कुछ जल्दी समझ नहीं आया, उसमें तीन सूखी रोटियाँ थी। अभिनव चौधरी के चेहरे का रंग उड़ गया- "माँ यह क्या नाटक है, इन सूखी रोटियों को क्यों ताले में बंद कर रखा है?"

"बेटा! मैंने पहले ही कहा था कि घर की इज़्ज़त बचा ले, पर शायद यह तेरे कर्मफल है कि एक माँ की लाचार ममता भी काम न आई।" वह वृद्धा मुझसे बोली- "जब भी ये लोग मुझे खाना नहीं देते हैं तो बची हुई बासी रोटियाँ जो काम वाली बाई चुपके से मुझे देती है, इसमें सुखा कर रखती हूँ, वही पानी में डुबोकर खा लेती हूँ।"

"वर्मा कार्यवाही क़ानूनी तरीके से पूरी करो।" मैं भी कातर स्वर को छुपाने की कोशिश करते हुए बोला। शायद वे सूखी रोटियाँ हम सभी की आँखें भिगो गई थीं।

वहाँ काम पूरा होने पर मैंने देखा कि वह वृद्धा अब रो नहीं रही थी, कुछ सोच रही थी। फिर मुझसे बोली "भाई साहब अब मैं यहाँ नहीं रह पाऊँगी, आप मुझे किसी वृद्धाश्रम में भिजवा दीजिए।"

पहले मैंने उन्हें एक वृद्धाश्रम में रखा, फिर यह संकल्प किया कि अपनी सामर्थ्य में मैं ऐसे वृद्ध और लाचार लोगों के लिए कुछ करूँगा, जिससे हम में से किसी को भी ऐसी परिस्थिति का सामना न करना पड़े। फिर रिटायर होने के साथ ही इस वृद्धाश्रम की नींव रखी और आज समाज व प्रशासन के सहयोग से यह आपके सामने है। जिलाधीश महोदय यही है इस वृद्धाश्रम की कहानी।"

जिलाधीश महोदय ने भावुक होकर कहा "पता नहीं कैसे, अपने ही इतने प्यार से पाले हुए बच्चे माता-पिता के साथ ऐसा दुर्व्यवहार करते हैं। हमें भी कभी-कभी ऐसे मामलों से दो-चार होना पड़ता है। समाज में पहले जैसे संस्कार नहीं रहे, यह बड़े दुख की बात है। हमारे संस्कार ऐसे होने चाहिए कि ऐसी नौबत ही न आए लेकिन भौतिकतावादी संस्कृति ने पारिवारिक विघटन ही नहीं बढ़ाए हैं बल्कि रिश्तों की गरिमा और मर्यादाएँ भी तार-तार कर दी हैं। आपके सद्प्रयासों के लिए आपको बहुत साधुवाद। आप जैसे कुछ और लोग समाज में आगे आए तो बहुत सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा।"

अतिथियों में से किसी ने जिज्ञासा से पूछा "वह बुज़ुर्ग महिला अब कहाँ हैं ?"

"अरे! आप देख नहीं रहे हैं, इतनी ऊर्जा वाली और वृद्धाश्रम की मुखिया मेरी भाभीजी को।" कुछ दूरी पर एक तेजस्वी महिला को दिखाते हुए उन्होंने कहा, जो बड़ी सक्रियता से सब कुछ सँभाल रही थीं।

000

हाजरा का बुर्क़ा ढीला है

डॉ. तबस्सुम जहाँ

कॉलेज लाइब्रेरी के ठीक सामने बैडमिंटन खेलती हाजरा बार-बार मुझे अपनी ओर आकर्षित करती। वजह कि अपनी प्रतिद्वंद्वी के सामने उसका एक भी शॉट मिस नहीं होता। एक अजीब से विरोधाभास में वह खेल रही थी। एक तो बैडमिंटन दूसरे उसका बादामी बुर्क़ा। अब भला बुर्क़े में कोई बैडमिंटन कैसे खेल सकता है। पर वह खेल रही थी। ख़ूब उछल-उछल कर शॉट ले रही थी। कभी-कभार अपने बाएँ हाथ से घुटनों के ऊपर इकट्ठा हुए कपड़े को पकड़ कर शॉट लेती। जब वह शटल कॉक के पीछे दाएँ-बाएँ आगे-पीछे दौड़ती तो नीचे हवा से उसका बुर्क़ानुमा लबादा ऐसे फूल जाता जैसे तंदूर की रोटी ज़्यादा आँच पाकर एक साइड से फूल जाती है। उसका मैच गुलहड़ के बड़े पेड़ के ठीक नीचे हो रहा था। नीचे गिरते गुलहड़ भी वे बोनस पॉइंट समझ कर अपनी रैकेट से हवा में यहाँ वहाँ उछाल देती। मुझे हाजरा को खेलता देख ख़ुशी होती पर उसके बुर्के से उतनी कोफ़्त भी।

मन में सवाल उठता यह लड़की अपने तम्बू से बुर्के में भी इतना अच्छा बैडमिंटन कैसे खेल लेती है इसकी जगह मैं होती तो तम्बू से उलझ कर नाक के बल पके बेल-सी धम्म से गिरती। न जाने कितने ही दाँत टूट कर हारे हुए खिलाड़ी से विदा हो जाते। पर वह हाजरा है मैं नहीं। मैं और उसमें फ़र्क है। वह जिस्म पर बुर्के को अपना कछुवे खोल-सा चिपकाए रहती है और मैं, मुझे तो कंधे पर दुपट्टा भी बोझ लगता है। ख़ासकर गर्मी में तो कुछ ज़्यादा ही।

"तुम इतना अच्छा बैडमिंटन खेलती हो। अगर बुर्क़ा उतार कर खेलोगी तो और भी चुस्ती-फुर्ती से खेल पाओगी। तुम यह तंबू उतार क्यों नहीं देती?" मैंने बैंच पर बैठती हाजरा से कहा।

मेरा सवाल हाजरा को भीतर कहीं कचोट गया। चेहरे के भाव भी एकदम बदल गए थे उसके।

"काश में उतार पाती, ख़ैर छोड़ो भी इस टॉपिक को। वैसे भी बैडमिंटन खेलने से बुर्के का क्या लेना देना भई। यह बुर्का ही तो मेरी असली ताक़त है यह न हो तो शायद मैं बैटमिंटन खेल ही न पाऊँ।" कहते हुए हाजरा हँस पड़ी। उसकी हँसी प्योर बनावटी थी। क्योंकि जब कोई वाकई दिल से हँसता है तो उसका चेहरा खिल-सा जाता है। हँसते हुए आँखों में चमक आ जाती है। पर ऐसी कोई बात मुझे हाजरा के चेहरे पर नज़र नहीं आई। कहने को हाजरा हँस रही थी पर उसकी आँखें ख़ामोश थीं और चेहरा भावविहीन।

वैसे भी हाजरा का जवाब मुझे बड़ा बेतुका लगा। भला बैडमिंटन और नक़ाब का क्या मेल। अच्छा है जिस दिन नक़ाब पैरों में उलझेगा उस दिन इसे अक़्ल आ जाएगी। समय बीतता गया न उसका तंबू पैरों में उलझा न दाँत ही टूटे। अलबत्ता हाजरा को बिना बुर्के में देखने की मेरी आस ज़रूर टूट गई।

हाजरा की ग्रेजुएशन फर्स्ट ईयर में सबसी की तीन क्लास उसकी हमारे साथ होती थी। देखने भालने में वह कुछ ख़ास नहीं थी। बुर्के में होती तो बड़ी आकर्षक लगती। बादामी बुर्के पर बादामी हिजाब उस पर ख़ूब फबता था। हालाँकि और भी लड़कियाँ कॉलेज में बुर्के या नक़ाब में आती थीं पर हाजरा की तो बात ही अनोखी थी।

अक़्सर ख़ाली वक़्त में मैंने उसे बैडमिंटन खेलते हुए कई बार देखा था। चूँकि मैं बुर्के और पर्दे के कभी फेवर में नहीं थी मुझे हैरत होती कि यह लड़की इतना तेज़ होशियार होने पर भी इस तंबू में क्यों आती है। मैंने नोट किया कि हाजरा बुर्के के भीतर छरहरी काया लिए है। जब-तब वह मिलती मैं अपनी आँखों से उसके बुर्के का स्कैन शुरू कर देती। हिजाब की वजह से उसका मुँह

डॉ. तबस्सुम जहाँ
मुस्तजाब अहमद, स्वर्गीय गुलज़ार नज़ीर
अपार्टमेंट, ए 143/1 अबुल फ़ज़ल
पार्ट 2, शाहीन बाग़, ओखला, नई दिल्ली
110025
मोबाइल- 9873104110
ईमेल– tabijahan03@gmail.com

खुला ही रहता था इसलिए आँखों के अलावा उसके जिस्म का कोई हिस्सा स्कैन नहीं हो पाता। उसकी आँखों में भी मुझे नितांत ख़ालीपन नज़र आता।

हाजरा हमेशा वक़्त पर क्लास में आती और क्लास में सबसे आगे बैठती। अपनी ख़ूबसूरत आवाज़ में जब वह "होंटों से छू लो तुम" गीत सुनाती तो मन करता बस सुनते ही रहें। क्लास में सब लड़के उसके भाई थे। अकेले में कभी हमने उसे किसी लड़के से बात करते नहीं देखा। मैंने ग़ौर किया कि हाजरा को बाक़ी लड़कियों के सूट बड़े पसंद आते थे और सबकी तारीफ़ वह दिल खोल कर करती थी। मैं जब किसी ख़ूबसूरत लिबास में कॉलिज जाती तब हाजरा अक्सर मेरे कपड़ों की तारीफ़ करते नहीं थकती थी।

"माशाल्लाह तुम्हारा सूट कितना प्यारा है। कहाँ से लिया। काश मैं भी..." हालाँकि उसने "क़ाश" बहुत हल्के से कहा था पर उसके हल्केपन लफ्ज़ ने जैसे उसके भीतर के भारीपन को मेरे सामने खोल कर रख दिया था। पहली बार मुझे हाजरा के मन में अंतर्द्वंद्व-सा दिखा। साथ ही एक बैचैनी एक छटपटाहट भी।

एक दिन हाजरा के घर जाने का मौक़ा मिला। कॉलेज से एक किलोमीटर दूर ही उसका घर था। घर पहुँचते ही उसने अपने माँ-बाप से मेरा परिचय कराया। दोनों ही बड़े बुज़ुर्ग थे। घर की दशा भी काफी जर्जर लगी उसके माँ-बाप की मानिंद। अंदर कमरे में पहुँच कर जब उसने अपना हिजाब उतारा तो दिल को धक्का-सा लगा। उसने दो रंग के कपड़े पहने थे शलवार अलग और कमीज़ अलग। कपड़े काफी पुराने थे। फिर कुछ ऐसा हुआ जिसकी मुझे उम्मीद तक नहीं थी। हाजरा को कपड़े बदलने थे उसने मेरी ओर पीठ करके मेरे सामने ही अपने कपड़े उतार दिए। शायद एक लड़की के सामने उसे कपड़े उतारने में झिझक नहीं हुई अब वह कुल दो अंतर्वस्त्रों में मेरे सामने थी। जिस शरीर को मैं हिजाब की आड़ में स्कैन करने की कोशिश कर रही थी अब वे साक्षात् मेरे सामने था। एक बहुत ही दुबली-पतली काया लिए। वह हाजरा नहीं थी एक कंकाल मात्र थी। एक सूखा-सा लंबा पेड़ जो ऊपर पहुँच कर झुक गया था। हाजरा दीवार पर लगे कोने झड़े आदमकद में ख़ुद को निहार रही थी और मैं उसके कृशकाय हड्डियों के ढाँचे को। मैंने नज़रें झुका लीं।

उस रोज़ मेरी आँखों से नींद कोसों दूर थी। रह-रह कर हाजरा आँखों के सामने कौंध रही थी। आदमकद आइने में झाँकती हाजरा। शायद मैं उसकी जगह होती तो ऐसी दीन-हीन दशा में हरगिज़ घर से बाहर न निकलती। पर हाजरा के बुर्के ने जैसे उसे उसकी दीन-हीन दशा से उबार लिया था। जिस तरह कछुआ अपने खोल में सुरक्षित महसूस करता है। उसका यही सख्त कड़क खोल कछुवे को जीवन जीने का आधार बनता है। पर हाजरा का खोल सख्त नहीं था और न ही और कड़क था। वह तो उसे किसी मोर पंखों-सा एक अलौकिक सौंदर्य प्रदान कर रहा है। हाजरा अपनी कृशकाया को जिस लबादे से ढक रही थी वही आवरण उसका बाहरी सौंदय बन गया था। उसकी ताक़त, उसका आत्मविश्वास। ऐसा नहीं है कि अपनी इस अवस्था में उसने बाहर संघर्ष नहीं किया होगा। पर परिस्थितियों से उबरने के लिए उसका खोल ही उसका कारगर हथियार बन गया था।

समय बीतता गया हम लोगों का ग्रेजुएशन पूरा हो गया। कुछ साथियों ने ग्रेजुएशन के बाद ही पढ़ाई को न कह दिया। उसमें एक हाजरा भी थी। पता नहीं लास्ट एग्ज़ाम के दौरान वह कुछ अजीब सी पेशोपेश में रहने लगी थी। कभी ख़ूब कूदती मचलती, हँसती गाती। और कभी एकदम ख़ामोश वीरान-सी हो जाती। उड़ते हुए कानों में एक बात पड़ी जिस पर पहले पहल तो मुझे यक़ीन नहीं हुआ।

"हाजरा को प्यार हो गया है एक लड़के से।" किसी ने बताया।

"प्यार और हाजरा को झूठ। ऐसा हो ही नहीं सकता।"

"क्यों नहीं हो सकता?"

"वह तो बुर्के में रहती है भला वो प्यार कैसे कर सकती है।"

"क्यों? क्या तुम्हें एक स्त्री दिखाई नहीं देती उस बुर्के के अंदर।"

"नहीं ऐसा नहीं है मतलब हाजरा तो बुर्क़ा पहनती है तो फिर कोई सब देख भाल कर ही तो इश्क़ करेगा।"

"बुर्के से इश्क़ का क्या ताल्लुक, बुर्के के अंदर धड़कता तो दिल ही है न?"

"क्या बुर्के वालियो को इश्क़ करना मना है?"

दरअसल दोस्त से कहना चाहती थी कि हड्डियों के ढाँचे-सी हाजरा किसी लड़के को अपनी ओर कैसे आकर्षित कर सकती है। क्या इश्क़ करने वाले ने उसे बिना बुर्के के देखा भी है या नहीं? पर मुझे हाजरा के प्रति अपनी सोच बड़ी बचकाना लगी। प्यार का बुर्के से क्या ताल्लुक। बुर्का है कोई बेड़ियाँ थोड़ी हैं जिससे पहनने वाला प्यार नहीं कर सकता। बहुत ज़्यादा मज़हबी या अल्लाह वाली भी तो नहीं थी हाजरा। उसने मुझे ख़ुद बताया था कि वह रोज़े नमाज़ की पाबंद नहीं है। औरतों के पर्दे वाले सवाल पर मैंने कभी उसे पर्दे की हिमायत करते न देखा न सुना। बस वह एक ही बात-बार बार कहती- "अरे भाई जिसे पहनना है उसे पहनने दो, जिसे नहीं पहनना उसे ज़बरदस्ती मत पहनाओ।"

वैसे भी पर्दा सिर्फ़ हाजरा के जिस्म पर था। दिल या दिमाग़ पर नहीं। पर्दा न तो उसे बैडमिंटन खेलने से रोकने आया न ही क्लास में गीत गुनगुनाने से। फिर भला इश्क़ करने से कैसे रोकता!

ख़ैर हम लोगों ने भी हाजरा के प्यार को स्वीकार कर लिया और यह भी कि एक बुर्के वाली प्यार भी कर सकती है। कुछ दिनों के बाद जो ख़बर मिली उससे तो हम क्या उसके माँ-बाप तक सन्न रह गए। हाजरा ने घर से भाग कर शादी कर ली है वह भी एक हिंदू लड़के से। ताना फ़जीहत, गाली-गलौच पता नहीं फिर क्या-क्या हुआ। माँ-बाप ने बेटी से रिश्ता ख़त्म कर लिया। और हम दोस्तों से ख़ुद हाजरा ने। वह अब अपनी ही दुनिया मे मस्त थी। लेकिन जिस्म पर अब बुर्क़ा नहीं था।

000

शुभम की मुक्ति

दीपक गिरकर

आज एक तारीख है। मैं अपनी पेंशन लेने के लिए बैंक की शाखा में सुबह दस बजकर तीस मिनट पर ही पहुँच गया था; जबकि बैंक की शाखा ग्यारह बजे प्रारम्भ होती है। कमल दस बजे बैंक की शाखा के ताले खोलकर साफ़ सफाई शुरू कर देता है। दस बजकर तीस मिनट तक शाखा प्रबंधक शाखा में आ जाते हैं। आज मैंने देखा कि दस तीस पर एक मैडम शाखा में आई और शाखा प्रबंधक की कुर्सी पर जाकर बैठ गई। मैंने कमल से इस संबंध में बात की तो मालूम हुआ कि पहले वाले शाखा प्रबंधक का स्थानांतरण हो गया है और उनकी जगह यह मैडम आई है। दस पचास तक शाखा में पूरा स्टाफ आ चुका था। मैं पेंशन लेने वाले लोगों की लाइन में सबसे आगे खड़ा था। आज काउंटर वाली मैडम भी नई लग रही थी। मैडम ने मेरे से पासबुक और आहरण पर्ची ली और कंप्यूटर में चेक करने लगी। मैडम ने चेक करके बताया कि मेरे हस्ताक्षर नहीं मिल रहे हैं। मैंने मैडम से कहा मैं कई सालों से इसी तरह हस्ताक्षर कर रहा हूँ। उस मैडम ने मुझ से कहा आप शाखा प्रबंधक के केबिन में आइए। मैं शाखा प्रबंधक के केबिन में जाकर खड़ा हो गया। शाखा प्रबंधक ने मुझे बैठने के लिए बोला। इतनी देर में उस काउंटर वाली मैडम ने मेरी पासबुक और आहरण पर्ची शाखा प्रबंधक को देते हुए कहा इनके हस्ताक्षर नहीं मिल रहे हैं। मेरे चेहरे पर घबराहट देखकर शाखा प्रबंधक बोली-

"आप चिंता मत कीजिए, मैं देखती हूँ।" उन्होंने कमल को पानी और चाय का बोला और मेरी पासबुक देखने लगी। पासबुक पर मेरा नाम पढ़ते ही शाखा प्रबंधक चौंक पड़ी। उनकी पलकें आर्द्र हो उठी थीं। उन्होंने मेरी ओर मुखातिब होकर पूछा- "आप बरही गाँव के रहने वाले हैं क्या?"

मेरे "हाँ" कहने पर उन्होंने सिर पर पल्ला लेकर मेरे पैर छुए और बोली-"बाबूजी मैं आपकी बहू हूँ। शुभम की पत्नी।"

"कौन शुभम?"

"शुभम शर्मा।"

"अच्छा वह शुभम, जो पढ़ने बहुत तेज़ था और किसी बैंक में प्रोबेशनरी अधिकारी के पद पर नौकरी में लगा था।"

"जी।"

"शुभम कैसा है?"

"बाबूजी, शुभम तो नहीं रहे। दो साल पहले एक एक्सीडेंट में उनकी मृत्यु हो चुकी है।"

"अरे...।"

मैंने चाय पी ली थी। तब तक कमल मेरी पेंशन की राशि नए कड़कड़ाते नोटों में ले आया

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016 मप्र
मोबाइल- 9425067036
ईमेल– deepakgirkar2016@gmail.com

था। शाखा प्रबंधक मैडम ने मेरी पासबुक चेक करते हुए मेरा पता पूछा।

"110, संचार नगर। कॉलोनी नज़दीक ही है।"

"बाबूजी, शाम को मैं आपके घर आती हूँ तब विस्तार से बात करेंगे।" शाम को 8 बजे शुभम शर्मा की पत्नी शैलजा अपने दोनों बच्चों शुभांगी और सचिन को लेकर हमारे घर आई। तीनों ने मेरे और मेरी पत्नी के पैर छुए। शैलजा ने पानी पीने के बाद बोलना शुरू किया।

"शुभम ने कहा था मैं बचपन में स्कूल के पास एक ढाबे पर काम करता था और स्कूल नहीं जाता था। रामदयाल जी गुप्ता ढाबे के पास वाले सरकारी स्कूल में प्रधानाध्यापक थे। गुप्ता सर और अन्य शिक्षक ढाबे पर अक्सर चाय पीने आते थें। गुप्ता सर की पारखी नज़रों ने मुझे पहचान लिया था और एक दिन पूछा था कि क्या तुम पढ़ना चाहते हो? मैंने कहा था हाँ सर, मैं पढ़ना चाहता हूँ, लेकिन मेरा इस दुनिया में कोई नहीं है। मैं अनाथ हूँ। गुप्ता सर ने मेरा एडमिशन उसी सरकारी स्कूल में करवा दिया और उन्होंने मुझे अपने घर पर बेटे के समान रखा।

मैं तब से उन्हें बाबूजी के नाम से पुकारने लगा। बाबूजी के सहयोग और मार्गदर्शन से मैं सभी कक्षा में प्रथम श्रेणी में पास हुआ। गाँव में ग्यारहवीं कक्षा तक ही स्कूल था। फिर मैं आगे पढ़ने के लिए जबलपुर शहर आ गया। कॉलेज में मुझे स्कॉलरशिप मिलने लगी थी और मैं पढ़ाई के साथ छोटे बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने लग गया था। बाबूजी रिटायर होकर कटनी के पास के उनके गाँव बरही में जाकर रहने लगे थे। बीएससी करने के बाद मैंने बैंक में प्रोबेशनरी अधिकारी पद के लिए प्रतियोगिता परीक्षा दी थी जिसमें मैं सफल हो गया था और मैं बैंक में भोपाल शहर में नौकरी करने लगा। मैं नौकरी लगने के बाद बाबूजी के गाँव बरही गया था लेकिन गाँव वालों ने बताया कि रामदयाल जी गुप्ता यहाँ से इंदौर शहर चले गए हैं और उनका इंदौर का पता उनके पास नहीं है। शुभम ने मुझे बताया था कि वे आपको ढूँढ़ने इंदौर भी आए थे लेकिन आपका पता उन्हें नहीं लगा।"

जब मम्मी जी को मालूम हुआ कि शुभम नहीं रहा तो उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। मम्मी जी को बहुत बड़ा आघात लगा था। मम्मी जी ने लम्बी साँस ली और अतीत के चक्कर लगाते हुए बताने लगीं-"शुभम बहुत होशियार और मेहनती था।"

"बाबूजी, मम्मी जी, मैंने अभी परसों गुरुवार को ही वैभव नगर शाखा ज्वाइन की है और अभी हम होटल सूर्या में रह रहे हैं। आपकी कॉलोनी में कोई मकान खाली हो तो बताइए।"

"हमारे पड़ोस का मकान अभी 15 दिन पहले ही खाली हुआ है। मकान बड़ा है। तीन बेडरूम, हॉल, किचन है।"

"चलेगा। हमें बड़ा मकान ही चाहिए।"

बाबूजी पड़ोस के मकान मालिक से फ़ोन पर बात करते हैं। मकान मालिक कहता है कि मैं चाबी लेकर मकान दिखाने कल आ पाऊँगा।

"बिटिया, आप लोग यही भोजन कर लो।" मम्मी जी ने शैलजा से आग्रहपूर्वक कहा।

"जी, मुझे शुभम ने बताया था कि आप खिचड़ी बहुत स्वादिष्ट बनाती हो, आज हम खिचड़ी ही खाएँगे।"

स्वादिष्ट खिचड़ी खाकर सभी ने रिश्तों की मिठास महसूस की।

"बच्चों को कोलंबिया कान्वेंट स्कूल में भर्ती करने का विचार किया है। यहाँ से स्कूल भी पास में ही रहेगा। आज मैं बहुत ख़ुश हूँ। मुझे मम्मी-पापा जैसे सास-ससुर और बच्चों को दादा-दादी मिल गए हैं।"

खाना खाने के बाद कल रविवार को सुबह दस बजे आने का बोलकर शैलजा अपनी कार से बच्चों के साथ होटल सूर्या चली गई। रविवार को सुबह दस बजे शैलजा अपने बच्चों के साथ आ गई। पड़ोस के मकान मालिक भी दस पंद्रह पर आ गए। उन्होंने ताला खोलकर पूरा मकान दिखा दिया।

मकान में छोटा सा गार्डन भी है। शैलजा ने बताया कि उसे गार्डनिंग का बहुत शौक है। शैलजा और उसके बच्चों को मकान बहुत पसंद आया। शैलजा और उसके बच्चों को आज एक सुखद अनुभूति हुई। शैलजा ने मकान मालिक से एग्रीमेंट के फॉर्म पर हस्ताक्षर लेकर रख लिया और मकान के नक़्शे के साथ सोमवार को बैंक के क्षेत्रीय कार्यालय को स्वीकृति हेतु भेज दिया। दोनों बच्चे एक ही दिन में बाबूजी और मम्मी जी से बहुत हिल-मिल गए। बाबूजी और मम्मी जी से शैलजा और उसके बच्चों की आत्मीयता उनके चेहरों से झलक रही ख़ुशी के द्वारा इंगित हो रही थी। शैलजा ने सोमवार को कोलंबिया कान्वेंट स्कूल में बच्चों के एडमिशन फॉर्म जमा करके फीस भी भर दी और मंगलवार से सात दिनों के लिए मकान शिफ्टिंग के लिए बैंक से छुट्टी ले ली। शैलजा ने शनिवार को भोपाल अपने घर से ट्रक में सामान लोड करवाकर अपनी कार से बच्चों के साथ शनिवार शाम को बाबूजी के घर आ गई।

बाबूजी ने उनकी कामवाली बाई से पूरे घर की साफ़ सफाई करवा ली थी। रविवार सुबह से शैलजा ने कामवाली बाई, कामवाली बाई के पति और कामवाली बाई के बेटे के सहयोग से पूरा घर व्यवस्थित जमा लिया।

"बाबूजी, मम्मी जी आप दोनों के अलावा हमारा कोई भी नहीं है। मेरे माता-पिता बचपन में ही गुज़र गए थे। मेरे कोई भाई-बहन नहीं है। आप दोनों आज से हमारे साथ ही रहेंगे। आपके मकान का सामान अब इस नए मकान में शिफ्ट कर लेते हैं और आपका मकान किराए से उठा देते हैं।"

"बिटिया, जब तुम्हारा स्थानांतरण इस शहर से दूसरे शहर में हो जाएगा, तब हम क्या करेंगे?"

"बाबूजी मम्मी जी, आज से हम साथ ही रहेंगे। मेरा ट्रांसफर दूसरे शहर में होगा तो वहाँ भी हम साथ में ही रहेंगे।"

बाबूजी और मम्मी जी ने शैलजा और उसके बच्चों को गले लगा लिया। शैलजा का कंधा बाबूजी और मम्मी जी के आँसुओं से भीगने लगा। अब शुभम शैलजा के सपने में नहीं आता है। उसकी आत्मा को मुक्ति मिल चुकी है।

000

हाथों से झरती रेत

प्रवासी पंजाबी कहानी

मूल लेखक : रविंदर सिंह सोढी

अनुवाद : प्रो. नव संगीत सिंह

रविन्द्र सिंह सोढी
रिचमंड, कनाडा
मोबाइल- 001 604 369 2371

प्रो. नव संगीत सिंह,
अकाल यूनिवर्सिटी, तलवंडी साबो-151302 (बठिंडा) पंजाब
मोबाइल- 9417692015
ईमेल- navsangeetsingh1957@gmail.com

जब गुरी की छोटी बहन सैमी घर आ रही थी तब गुरी और नतालिया कार में बैठकर बाहर जा रहे थे। नतालिया के साथ अपने भाई को देखकर उसने नाक-मुँह सिकोड़ा। जब नतालिया की नज़र सैमी पर पड़ी, तो उसने अपना हाथ हिलाया और उसका अभिवादन किया, लेकिन सैमी ने कोई जवाब नहीं दिया और घर के अंदर चली गई।

नतालिया उसके इस व्यवहार से बहुत हैरान हुई और उसने गुरी से पूछा, "गुरी, वाट्ट हैपन्ड टु योअर सिस्टर? आइ वेवड टु हर, बट शी इग्नोरड!"

"फारगेट अबाऊट हर। शी'ज़ मैड!" गुरी ने नतालिया के लिए कार का दरवाज़ा खोलते हुए कहा।

सैमी अभी घर के अंदर ही गई थी जब उसकी माँ ने उसे देखा और ग़ुस्से से कहा, "क्या! तुम आज भी लेट आई हो? क्या तुम समय पर नहीं आ सकती?"

सैमी, जो गुरी और नतालिया को एक-साथ देखकर पहले से ही ग़ुस्से में थी, ने कहा, "मुझे गुरी की तरह कार तो लेकर नहीं दी है। बसों में धक्के खाती आती हूँ। दस-पंद्रह मिनट देर क्या हो जाए, तो पूछताछ शुरू हो जाती है।"

ऐसा उत्तर सुन कर माँ को ग़ुस्सा आ गया और उसने सैमी से कहा, "एक तो चोर, साथ में चतुर भी! जब कमाओगी तब गाड़ी भी ले लेना। तुम तो अभी अपने माता-पिता के सिर पर ऐश कर रही हो।"

"ऐश मैं नहीं, गुरी कर रहा है। वह कहाँ एक जगह टिक कर काम करता है? वह गोरी के साथ घूमने के लिए कभी सौ, कभी दो सौ डॉलर माँगता ही रहता है।"

उसने अपना बैग सोफे पर फेंकते हुए कहा।

"आज किसी से लड़कर आई हो क्या? घर आते ही झगड़ा शुरू कर दिया। झगड़ालू कहीं की! भाई को देख कर जलती है?" माँ सैमी के रंग-ढंग देखकर डर-सी गई।

सैमी ने फ्रिज से जूस की एक बोतल निकाली और एक गिलास में डालते हुए कहा, "यदि सच कहूँ तो झगड़ालू ही समझो। जब गुरी लंडर सी नतालिया के साथ घर आता है तो तुम उन दोनों के आगे-पीछे घूमते हो, तुम भी और डैड भी। क्या तुम्हें पता है, वह गुरी से पहले भी दो-तीन बॉयफ्रेंड्स के साथ रहती रही है! क्या तुमने कभी गुरी को रोका? हर चौथे दिन उसे घर लाने का क्या काम?" सैमी आज बदला लेने के मूड में थी।

दरअसल, कई दिनों से वह अपने मॉम-डैड की पाबंदियों के कारण बहुत दुखी थी। जब भी वह पैसे माँगती थी, तो उसे कई बातें सुननी पड़ती थीं। फार्मेसी की मुश्किल पढ़ाई के कारण वह बहुत ज़्यादा काम नहीं कर सकती थी। वह अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए बैंक से क़र्ज़ लेने की बात करती, तो उसके माता-पिता लड़ने को आते। उनका कहना था कि अन्य लड़कियाँ भी हैं, जो पढ़ती भी हैं और अपना खर्च चलाने के लिए साथ-साथ काम भी करती हैं। वे अपने घर की बेसमेंट में रहने वाली तीन लड़कियों की मिसाल देते कि वे अपनी फीस कैसे भरती हैं? वे खाने-पीने की व्यवस्था भी करती हैं और किराए के लिए भुगतान भी करती हैं। सैमी अपने दिल में सोचती कि वह उनसे पूछें तो सही कि वे अपना समय कैसे व्यतीत करती हैं। वे जहाँ काम करती हैं, वहाँ उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाता है? उन्हें मजबूरी में क्या कुछ नहीं सहना पड़ता। वह कई बार सैमी से अपने दिल की बात कह चुकी हैं कि कनाडा, ऑस्ट्रेलिया जैसे देश विदेशों के छात्रों के लिए क़ैद के समान हैं। यहाँ की तस्वीरें ही अच्छी लगती हैं, असलियत का पता तब चलता है जब कोई व्यक्ति यहाँ आकर फँसता है। ऐसा कौन सा काम है जो यहाँ नहीं करना पड़ता? जो लोग बाप से भी बड़ी उम्र के होते हैं, वे भी अपनी गर्लफ्रेंड बनाने की ज़िद करते हैं। जिनको पशुओं की तरह बेसमेंट में रहना पड़ता है, उनकी ग़ुलामी भी करो। दो दिन किराया लेट हो जाए, तो घर से निकाल देने की धमकी देते हैं। बिजली, हीटर का खर्चा अलग से भरो, लेकिन फिर भी बुड़बुड़ाते रहेंगे। ये आंटियाँ तो तबीयत ख़राब होने का बहाना बनाकर घर का काम भी करवाती हैं। अगर किसी लड़की को कोई परिचित लड़का मिलने आ जाए, तो हंगामा करने से

भी नहीं हिचकिचाती। कहीं ऊँची आवाज़ में बात करो या टीवी चालू करो तो लड़ने को आते हैं। ख़ुद चाहे उनके घरों में सारा दिन महाभारत चलती रहे। कई बार तो यह आंटियाँ ही लड़कियों को ग़लत रास्ते पर डाल देती हैं।

सैमी को पता था कि वह अभी अठारह वर्ष की नहीं थी, इसीलिए वह अपने माता-पिता की सहमति के बिना छात्र-ऋण लेने के योग्य नहीं थी। वह अपने घर के घुटन भरे माहौल से बहुत ऊब चुकी थी।

उसे बहुत खीझ आती जब वह देखती कि उसका बड़ा भाई अपनी गर्ल फ्रेंड नतालिया के साथ सरेआम घूम रहा है और बिना किसी डर के उसे घर भी ला रहा है। उस समय उसके मॉम-डैड के चेहरे की रौनक देखने लायक होती है। वे दोनों उस गोरी के आगे-पीछे घूमते हैं। डैड तो दो-तीन बार गुरी और नतालिया के साथ बैठकर पैग भी ला चुके थे। लेकिन वे यह भी जानते थे कि कुछ गोरी लड़कियाँ देसी लड़कों को इसीलिए अपने जाल में फँसा लेती हैं, ताकि उनके सिर पर ख़ूब ऐश कर सकें। क्योंकि गोरे लड़के तो अपनी गर्लफ्रेंड्स से बराबर का खर्च करवाते हैं। उन्होंने एक-दो बार बातों-बातों में गुरी को समझाया भी था कि कहीं कोई उल्टी-सीधी बात न हो जाए।

डेड ने कभी ट्रक तो कभी टैक्सी चलाई थी, टैक्स चोरी करके दो मकान बनाए थे। गुरी ने शेखी-शेखी में नतालिया को सब कुछ बता दिया। डैड चिंतित थे कि कहीं लेने के देने न पड़ जाएँ। गुरी कॉलेज के अंतिम वर्ष में था और पढ़ाई में भी ठीक-ठीक था, लेकिन नतालिया के प्यार में लट्टू उसे किसी तरह की परवाह नहीं थी।

सैमी अक्सर अपनी फ्रेंड्ज़ से इस बारे में बातचीत करती थी कि उनके अनपढ़ या कम पढ़े-लिखे माँ-बाप लड़का-लड़की में फर्क क्यों करते हैं? इन्होंने अपने लड़कों को तो पूरी तरह से ढील दे रखी है और जब इस ढील की वजह से बात बिगड़ जाती है तो माथे पर हाथ मारकर रोते हैं। यही नहीं, ये अपनी जवान हो रही लड़कियों पर कई तरह की बंदिशें लगाते हैं। खुले-खुले माहौल में पली-बढ़ी लड़कियों को यह समझ नहीं आती कि अगर उनका भाई अपनी गर्लफ्रेंड को घर में ला सकता है तो लड़कियाँ अपने बॉयफ्रेंड को क्यों नहीं? जब वे अपनी हमउम्र गोरी लड़कियों को बेरोक-टोक घूमते देखतीं तो सोचने पर मजबूर हो जातीं कि लड़कियों की आज़ादी के समय उनके माँ-बाप को पता नहीं क्या साँप सूँघ जाता है?

कई गोरी लड़कियाँ तो इसी बात से देसी लड़कियों से नफ़रत करतीं। वह अपनी कई देसी सहेलियों को जानती थीं जिन्होंने अपने पिछड़े घरेलू माहौल कारण बाहर जानबूझ कर पूरी खुलें लीं। शारीरिक खुलों की तो किसी को परवाह ही नहीं थी। कभी किसी बहाने, तो कभी किसी, उन्होंने अपने बॉयफ्रेंड्स के साथ दिन बिताए। अक्सर ही लड़कियाँ ऐसी कुसंगत में चली जाती हैं, जहाँ पर उन्हें नशे की लत लग जाती। ऐसा वे युवा जोश के साथ-साथ उनके अपने माता-पिता से बदला लेने के लिए भी करतीं। नशा पूरा करने के लिए वे घर से पैसे की चोरी करतीं, अवसर मिलने पर माँ बाप के क्रेडिट कार्ड का दुरुपयोग करने से भी न हिचकिचातीं। उस समय परिवार को यह समझ न आता कि वह गहनों या पैसे के डूब जाने का अफसोस करें या समाज में अपनी कटी हुई नाक को बचाने के लिए कुछ करें। यद्यपि सैमी ने अभी तक कोई ऐसा क़दम नहीं उठाया था, तो भी कई बार उसके ज़हन में आता कि वह अपने माता-पिता को उनकी सख्ती का मज़ा ज़रूर चखाए।

वह यह सब कर सकती थी, अगर वह 18 साल की हो गई होती। अब तो वह सिर्फ माँ से ऊँचा-नीचा बोलकर दिल का गुब्बार निकाल लेती थी। उसने अभी तक पिता के सामने अपना मुँह नहीं खोला था, लेकिन एक-दो बार उसने नशे में धुत अपने पिता को ज़रूर खरी-खरी सुनाईं थीं।

एक दिन जब उसके पिता दो-चार पैग लगाकर ऊल-जलूल बकने लगे तो उसने पिता को काफी फटकारा और अपनी भड़ास निकाली। इसी तरह जब एक बार गुरी ने ग़ुस्से में उसके ऊपर हाथ उठाने की जुर्रत की तो सैमी ने उसे ख़बरदार किया कि वह ज़बान से बात करे और यदि उसने उसके ऊपर उठाया तो वह पुलिस बुला लेगी। इससे उसकी माँ डर गई और उसने सैमी को बड़ी मुश्किल से शांत किया। बाद में बेशक, माँ ने सैमी को धमकी भी दी कि अगर उसने फिर से ऐसी बात कही, तो उसे अपनी संपत्ति से बेदखल कर दिया जाएगा। डराने के लिए माँ ने सैमी से यह भी कहा कि वह उसे इंडिया ले जाएँगे और उसकी शादी करके उसे वहीं छोड़ आएँगे। इस तरह की धमकियों को सुनकर सैमी एक बार तो चुप हो गई। उसने इस बारे में अपनी एक बहुत करीबी सहेली से बात की। उसने सैमी को समझाया कि अगली बार जब कभी फिर से उसे कोई इंडिया ले जाने की धमकी दे, तो वह निडर होकर बोल दे कि 'वह लड़के वालों को साफ-साफ कह देगी कि यह शादी उसकी मर्जी के ख़िलाफ़ हो रही है और वह कनाडा जाते ही उसे तलाक दे देगी; शादी तो उसे अपने बॉयफ्रेंड से ही करनी है'।

मौका मिलते ही सैमी ने यह बात अपनी माँ को कह सुनाई। यह सुनकर उसकी माँ ने ग़ुस्से में उसके बाल तो नोचे ही, साथ-साथ उसके थप्पड़ भी जड़ दिए। ग़ुस्से में पागल सैमी ने अपने सेल फ़ोन से 911 नं. डायल कर दिया। शुक्र है कि उस समय उसके पिता घर पर ही थे, उन्होंने बड़ी मुश्किल से दोनों को सँभाला।

अपने कमरे में जाने से पहले सैमी ने अपनी माँ को धमकी देते हुए कहा, "मेरे कामों में ज़्यादा दख्ल-अंदाज़ी करने की ज़रूरत नहीं है। मैं अपना भला-बुरा ख़ुद समझती हूँ। अगर तुमने सख्ती करने की कोशिश की, तो और छह महीनों बाद मैं तुम्हें कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं छोड़ूँगी।" यह कहकर वह पैर पटकती हुई चली गई।

सैमी की माँ सोचने लगी कि इस मुँहज़ोर और ग़ुस्सैल लड़की का क्या किया जाए। वह उन दिनों को पछताने लगी, जब वे लोग कनाडा आए थे। वह सोच रही थी कि कनाडा की धरती पर बच्चों को मिली आज़ादी ने तो उन्हें बर्बाद करके रख दिया है। माँ-बाप तो सिर्फ इनको पालने में ही लगे रहते हैं। आज के

बच्चे तो उड़ने योग्य होते ही अपना घोंसला तलाशने लगते हैं। माता-पिता गिरें किसी कुएँ में, उनकी बला से।

वह इन्हीं विचारों में खोई हुई थी कि कब सैमी का डैड, निहाल सिंह आकर उसके बगल वाले सोफे पर बैठ गया, उसे पता ही नहीं चला। कुछ खाँसते ही उसका ध्यान उसकी ओर गया। अपने पति को सोफे पर बैठा देख आश्चर्य से उसने पूछा, "आज इतनी जल्दी आ गए? कैसे हो? ठीक तो हैं न आप?"

"हाँ, ठीक हूँ, मन कुछ विचलित-सा है। टैक्सी चलाने को मन नहीं किया।" निहाल सिंह ने धीमी आवाज़ में कहा। "लेकिन तुम कहाँ खोई हुई थी। तुम्हें मेरे आने का पता तक नहीं चला। तुम तो बड़ी दूर से मेरे क़दमों की आहट सुन लेती हो!"

"कैसा खोना! ये संतान ही जीने नहीं देती।" उसने सिसकते हुए कहा।

"क्यों, आज ऐसा क्या हो गया?" निहाल सिंह ने कुछ चिंतित होते हुए कहा।

"यदि गुरी को किसी बात से रोकती हूँ, तो वह बाल नोचने को आता है। यदि बेटी को थोड़ा-बहुत समझाती हूँ, तो वह ऊँचा-नीचा बोलती है। मुझे समझ में नहीं आता कि जाऊँ तो कहाँ जाऊँ!"

निहाल सिंह ने इधर-उधर देखा और धीमे-से बोला, "बच्चे घर में ही हैं क्या?"

"वह गोरी के साथ कहीं गया है। सैमी देरी से आई तो मैंने पूछ लिया कि लेट क्यों हो गई? इस वजह से मुझे इस नवाबज़ादी से खरी-खोटी सुननी पड़ीं।"

"सैमी अब कहाँ है?"

"अपने कमरे में।"

निहाल सिंह ने उसे चुप रहने का इशारा किया। वह थोड़ा चिंतित होकर बोला, "सुनो, अब बच्चों को कुछ भी कहने का समय नहीं है। मैं भी पहले-पहल सैमी को बात-बात पर डाँट दिया करता था परन्तु आज की ख़बर सुनकर तो मैं स्तब्ध रह गया।"

"क्या हुआ?" गुरनाम कौर ने घबरा कर पूछा।

"वाहेगुरु वाहेगुरु! आजकल के बच्चों का तो रब ही राखा है। सभी टैक्सी स्टैंड वाले उदास-से बैठे हैं आज तो।" निहाल सिंह ने बताया।

"पर हुआ क्या?" गुरनामो ने निहाल सिंह का चेहरा देखते हुए पूछा।

"वह मेरा दोस्त है न जमरौद वाला पाला सिंह, जो मेरे साथ ही टैक्सी चलाता है।"

"हाँ, जिसकी बीवी कई बार हमें गुरुद्वारे में भी मिली है, उसे क्या हुआ?"

"उसे कुछ नहीं हुआ। उसने अपनी बेटी को किसी बात पर डाँट दिया। शायद दो-चार घूँसे भी मारे होंगे। बेटी ने पुलिस बुला ली और अंदर करवा दिया और ख़ुद घर से निकल कर किसी गोरे के साथ भाग गई।"

"हाय, मैं मर जाऊँ! ऐसी औलाद से तो बेऔलाद रहना ही अच्छा!" गुरनामो के मुँह से निकला।

"कुछ मत पूछो, गुरनामो! मुझे तो यह सुनकर टैक्सी स्टैंड पर बैठने का मन नहीं हुआ। मैं तो सीधे घर चला आया।" उसने सोफे से उठकर एक गिलास पानी पीते हुए कहा।

कुछ देर दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला।

"पाले की बातें सुनकर मैंने तो कानों को हाथ लगाया कि आगे से इन दोनों को कुछ नहीं कहना।"

"बेशक यह हमारे सिर पर मिट्टी डाल दें? अरे, यह क्या बात हुई! इन्हें तो कुछ फ़र्क ही नहीं पड़ता। बच्चों को ग़लत कामों से तो रोकना ही पड़ता है न! नहीं तो ये हमारे सिरों में छेद करेंगे।"

"यह देख लो, बेचारे पाले को बेटी की रोका-टोकी करने पर क्या नतीजा भुगतना पड़ा। इन देशों का तो रब ही राखा है!"

"मारो गोली, साले ऐसे कनाडा को! अपनी जुल्ली-तप्पड़ बेचो, चार पैसे हाथ में करो और वापस गाँव चलते हैं। वहाँ रूखी-सूखी खा लेंगे।" गुरनाम कौर ने अपनी ओर से बड़ी समझदारी की बात की।

निहाल सिंह ने गुरनामो की ओर देखते हुए कहा, "अब वहाँ गाँव में क्या है हमारा! पहले तो भाइयों से कहा-सुनी करके ज़मीन का बँटवारा कर लिया और उसे बेच डाला। तुमने तो टूटे हुए घर के भी पैसे ले लिए थे। अब भाई हमें मुँह नहीं लगाएँगे।"

"साथ ही, वहाँ के हालात अब यहाँ से भी ज़्यादा बुरे हैं। जो लोग वहाँ जाकर आते हैं, वे कानों को हाथ लगाते हैं कि वे फिर से पंजाब वापस नहीं जाएँगे। नशा बाढ़ की तरह बिक रहा है, रिश्वत के बिना कोई काम नहीं होता। वहाँ अब किसी की कोई सुनवाई नहीं होती। यहाँ हम इज़्ज़त की रोटी तो खा रहे हैं।"

"तो क्या अब पाला अंदर बैठा इज़्ज़त की रोटी खा रहा है?" गुरनामो ग़ुस्से में बोली।

"कभी-कभार ठंडे दिमाग़ से भी काम ले लेना चाहिए! हम वहाँ से यहाँ हज़ार गुना बेहतर हैं! दोष तो ख़ुद हमारे में हैं। रहते हम कनाडा में हैं, लेकिन हमारी सोच गाँव वालों जैसी है। हमें ख़ुद को बदलना होगा।" निहाल सिंह ने लंबी साँस भरते हुए कहा।

"हमारी तो जून ही बुरी है। पहले तो मैंने अपने माता-पिता के घर में उनकी डाँटें-झिड़कें सहन की, शादी के बाद तुझ जैसे टेढ़े आदमी से वास्ता पड़ गया, रहती कसर खूँसट सास ने पूरी कर दी। मुई जब तक ज़िंदा रही, मुझे चैन से जीने नहीं दिया।" गुरनामो ने दिल की भड़ास निकालते हुए कहा।

निहाल सिंह ने उसकी ओर कटु दृष्टि से देखा और कहा, "तू तो सारा दिन ख़ुद बेबे के साथ लड़ती-झगड़ती रहती थी। अब मरी हुई का भी पीछा नहीं छोड़ती। बात किस विषय पर हो रही है, यह अलग ही दिशा में चल पड़ी।"

गुरनामो इस बात को और बढ़ाना नहीं चाहती थी, इसलिए वह चुप हो गई।

निहाल सिंह भी कुछ देर की ख़ामोशी के बाद धीरे-से अपनी पत्नी को कहने लगा, "देखो, बुद्धिमान लोग कहा करते हैं कि हथेली में रेत रखकर जितना उसे कसोगे, रेत धीरे-धीरे मुट्ठी से बाहर झर जाएगी। बुद्धिमानी इसी में है कि मुट्ठी खुली छोड़ दो। रेत हथेली पर टिकी रहेगी।"

गुरनामो यह सोचने लगी कि आज के बच्चे भी रेत बन गए हैं, जो माँ-बाप द्वारा मुट्ठियाँ कसते ही हाथों से झरने लगते हैं!"

000

मेरी माँ वैश्या थीं

बांग्लादेश से बांग्ला कहानी

मूल लेखक : मुजफ़्फ़र हुसैन
अनुवाद : नीलम शर्मा 'अंशु'

मुजफ्फर हुसैन बांग्लादेश के समकालीन साहित्य में एक चर्चित और लोकप्रिय कहानीकार हैं। अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद, उन्होंने पत्रकारिता में अपना कॅरियर शुरू किया। वर्तमान में बांग्लादेश की राष्ट्रीय संस्था, बांग्ला अकादमी में अनुवाद अधिकारी के रूप में कार्यरत हैं। मुख्य रूप से कथा साहित्यकार।

नीलम शर्मा 'अंशु'
मोबाइल- 9830293585
ईमेल- rjneelamsharma@gmail.com

लोग मेरी माँ को वेश्या कहते थे। क्यों, पता नहीं। माँ को कभी पर-पुरुष के साथ सोते नहीं देखा। सोचा कि देर रात को कोई आता होगा। मुझे नींद बहुत सताया करती थी हमेशा से। नींद और भूख दोनों बारी-बारी से परेशान करती थीं। चूँकि बहुत कोशिशों के बावजूद मैं किसी रात को जगा नहीं रह पाया। मेरे पिता का कोई रोज़गार नहीं था, अत: माँ मध्यरात्रि को कुछ करती होंगी तो कह नहीं सकता। इस बारे में हमारे घर में बहुत ज़्यादा बात नहीं होती थी। एक बार बड़ी बहन से पूछा था – 'क्या, माँ वेश्या है?'

बड़ी बहन ने डाँट कर कहा था, 'आचू दा, किसी की माँ वेश्या होती है क्या?'

'तो लोग जो कहते हैं?'

'लोग अपनी माँ को वेश्या नहीं कहते। हमारी माँ को कहते हैं न, हमारी माँ तो उनकी माँ नहीं लगती न?'

बहुत गड़बड़ मामला है। बड़ी बहन की इस बात से यह समझ नहीं आया कि माँ वेश्या है या नहीं लेकिन बड़ी बहन वेश्या है यह मुझे मालूम है। लेकिन उसे कोई भी वेश्या नहीं कहता। जिनके कहने की बात है, उनमें से बहुतों के साथ बहन की बहुत अच्छी बनती है। आधी रात को बुलावा आता है, मुझे कभी-कभार जगा कर साथ ले जाती है। नींद के आग़ोश में ही जाता और आता हूँ। सुबह होने पर याद नहीं रहता कि कहाँ गया था, गया भी था क्या? या सपना देखा, यह भी समझ नहीं आता। सुनिश्चित करने के लिए एक दिन बड़ी बहन से कहा भी था, 'रात को क्या तुम मुझे कहीं ले जाती हो?'

'तुझ जैसे रात के अंधे को क्यों ले जाऊँगी भला? मुझे लोगों की कमी है क्या?' वह ऐसा जवाब देकर टरका देती है। सपना ही देखता हूँ, यही मान लिया था। लेकिन एक दिन नींद का असर कम हो गया था। बड़ी बहन ने मुझे मस्जिद में पंखा चला कर बैठने को कहा। नींद आए तो सो जाने को। उसके बाद वह मस्ज़िद के पीछे मोल्लाबाड़ी के भीतर चली गई। इद्रिस मोल्ला की बीवी ने दरवाज़ा खोला। चाँदनी में मैंने स्पष्ट देखा। इद्रिस मोल्ला मुहल्ले के कुछ और लोगों को लेकर छत के चौबारे पर गया था। मुझे भी ले जाना चाहा था, वेश्याबाड़ी का लड़का होने के कारण दूसरों ने आपत्ति की थी। सपना ही मान लेता लेकिन तड़के अज़ान के लिए बिल्लाह हुज़ूर ने मुझे जगा दिया। घर आकर देखा कि बड़ी बहन तख्तपोश पर पड़ी खर्राटे ले रही थी।

000

माँ के साथ मेरी बहुत बनती नहीं थी। अभावों की गृहस्थी, तिस पर मेरा आवारा बाप माँ के गर्भ में बार-बार बीज-वपन करता। गृहस्थी का आकार बढ़ता जा रहा था हर साल, भोजन का संकट भी बढ़ रहा था। मैं उनकी दसवीं संतान था। ग्यारहवीं संतान जन्म के तीसरे दिन गुज़र गई थी। महीनों गर्भ में रह कर भी पुष्ट नहीं हो पाई थी वह संतान।

बाड़ी के नाम पर जो था तीन खाँचों का कबूतरखाना। यद्यपि आस-पास जगह की कमी नहीं थी फिर भी स्वप्न साहब के पिता की दयालुता ही थी हमारे प्रति कि जिनका ऋण माता-पिता भले ही न चुका पाए हों लेकिन काफी हद तक मेरी बहनों ने बराबर कर दिया था।

एक कमरे में मैं, माँ–पिता और दो भाई बहन रहते थे। कभी-कभी मध्य रात्रि को पिता माँ को लात मार कर उठ जाते और हर दिन माँ को समझौता करना पड़ता। वैवाहिक रिश्ते में मुहब्बत न

भी हो तो भी चलता है। विज्ञान कहता है कि संतान के जन्म के लिए मुहब्बत की ज़रूरत नहीं होती। 'बलात्कार करने पर क्या गर्भ नहीं ठहरता?' दरअसल हम सभी एक-एक बलात्कार का ही तो चरम परिणाम थे। इसलिए कोई भी स्वस्थ नहीं था। मन से, शारीरिक रूप से कोई न कोई कमी तो थी ही। वर्ना अक्सर ही सो रही माँ को जगाने में असमर्थ पिता मँझली बहन के काँथा (ओढ़ने की मोटी चादर) में घुस जाता था। मँझली बहन को तो बाधा देते या कुछ कहते नहीं देखा। तलाकशुदा बहन जब गर्भवती हुई, माँ ने तब कहा था- 'तेरे बाप का भी हो सकता है, गिरवा दे।' बहन ने तब चिल्ला कर कहा था – 'कौन मेरा बाप? मैं जब गर्भ में थी, बाप तब जेल में था। मुझे पता नहीं क्या? मेरा असली बाप कौन है, तुम ख़ुद भी नहीं पता पाओगी।' इसके बाद उसने दृढ़ता से कहा था – 'यह गर्भ मैं नहीं गिराऊँगी। तुमने तो मुझे नहीं गिराया? गिरा देती तो पिंड छूटता। तूने जब मुझ पर दया नहीं दिखाई तो मैं क्यों दिखाऊँ? मेरा तन और कितने दिन है? तुम्हारी तरह किसी को पेट में न धरने पर मुझे खिलाएगा कौन?'

इसके बाद सचमुच मँझली बहन के लड़का हुआ। ससुराल में थी तो उसके एक लड़की हुई थी। पड़ोस के गाँव से मध्यवय का एक नाटा सा आदमी हमारे घर आता था। सिर्फ़ कुछ दिन आने के बाद मँझली बहन को ब्याह कर ले गया। एक साल गुज़रने के बाद संतान होते ही संतान को अपनी पहली पत्नी के हवाले कर मेरी मँझली बहन को घर से निकाल दिया। तब से उसे संतान का शौक था लेकिन इस बार लड़के को नहीं बचा पाई। तीन दिनों के भीतर चटाई से बने कमरे के टूटे हिस्से से घुस कर सियार उठा ले गया। जब तक उसे ढूँढ़ पाए, तब तक शरीर का आधा हिस्सा ही बचा था। इसके बाद रो-रो कर मेरी बहन पागल हो गई। रात-रात भर जंगल में सियारों को दौड़ाती फिरती। एक दिन सुबह जंगल में उसकी रक्तरंजित लाश मिली। सियार नहीं, इंसान का कारनामा था।

000

दिव्यांग होने के कारण सँझली बहन की शादी नहीं हुई। बुद्धि-वुद्धि है, लेकिन थोड़ा इधर-उधर होती रहती है। वेश्याबाड़ी की लड़कियों की बुद्धि थोड़ी कम होने पर भी चल जाता है। समस्या यह थी कि उसके मुँह से लगातार लार गिरती रहती थी और शरीर से गंदी बदबू आती थी। इसलिए वह गृहस्थी के किसी काम न आ सकी। पिता ने नशे के लिए दो-तीन लोगों से रुपये लेकर उनके घर में सेट कर दिया था। लेकिन बात बनी नहीं। संग-संग वहाँ से निकल आई। मुझे उस पर बहुत दया आती थी। जिस घर में रात-दिन लोगों की आवा-जाही केवल तन के लिए होती हो, उसी घर में मेरी अब्याहता बहन अतृप्त रह गई। एक दिन गुसलखाने से निकल कर और न सह पाते हुए मुझसे लिपट कर कहा – 'देख भाई सुगंधित साबुन से बहुत देर तक मल-मल कर नहाया है। न हो तो नाक पर कपड़ा बाँध दूँ?' मैं ख़ुद को उसके बाहुपाश से मुक्त करवाने की कोशिश करता हूँ। उसके शारीरिक बल के कारण मैं ऐसा नहीं कर पाया। मेरी लुंगी की गाँठ खोल कर उसने देखा कि सतरह-अठारह वर्षीय एक तन में आठ-नौ साल के शिशु का यौनांग झूल रहा है। जिस तन में यौनेच्छा न जागृत होती हो उसके गुप्तांग को यौनांग कहा जा सकता है कि नहीं मुझे नहीं मालूम। इसके बाद मुझसे लिपट कर वह रोती रही। 'तुम तो फिर भी बच गए। मेरा क्या होगा? मेरा तो अचल नहीं है। इस वेश्याबाड़ी में मुझे कोई नहीं मिला रे...' कह कर रोते-रोते अपने आँसुओं की धारा और अपनी लारों से मुझे भिगो दिया।

000

अक्सर लगता है कि जैसे अभी कल की ही बात हो। मेरी छोटी बहन, तब उसकी उम्र बारह या तेरह होगी। जिस घर में काम करती थी, उस घर के उच्च शिक्षा समाप्त कर लौटे स्वप्न साहब, जिनके नाम पर अपना नाम होने का मुझे बहुत फ़ख़्र होता था, बीस रुपये का लोभ दिखा कर मेरी बहन को बिस्तर पर ले गए। दरवाज़े के इस पार बैठा मैं बीस रुपयों में क्या–क्या खरीदा जा सकता है यह सोच-सोच कर बावला हुआ जा रहा था। उसके बाद जब वह कमरे से निकली तो उसका पाजामा रक्तरंजित था। उसी हालत में हम दौड़े-दौड़े गए बटतला मोड़ के बाज़ार में। निरंतर रक्त स्त्राव होते-होते सात दिनों में ख़त्म हो गई वह। याद आता है, बीस रुपयों में जी भर कर उस दिन बहुत कुछ खाया था। मैंने एक लट्टू खरीदा था। उसने साड़ी वाली गुड़िया खरीदी थी। मैं गुड़िया को क़ब्र में उसके साथ सुलाना चाहता था परंतु हिम्मत करके किसी से कह नहीं पाया। तीन दिनों बाद मैं जाकर क़ब्र के एक कोने की मिट्टी हटा कर गुड़िया को दबा आया था। इसे लेकर भी कांड हो गया। कई दिनों बाद सियार के क़ब्र खोदने पर वह गुड़िया बाहर निकल आई थी। ऐसी ख़बर फैल गई कि मेरी बहन ख़ुद क़ब्र से निकल कर घर से गुड़िया ले गई है। मेरी माँ के अनुसार उसने भी उसके साये को घूमते-फिरते देखा था। इसके बाद कुछ रातों के लिए हमारे घर पर ग्राहकों का आना कम हो गया। हिम्मत जुटा कर किसी को भी मैं सच नहीं बता पाया। लगता भी नहीं कि बताने पर कोई विश्वास कर ही लेता। लेकिन सबसे ज़्यादा मज़ा तब आया था जब जब उसके कब्र से निकल आने की अफवाह सुन कर डर के मारे कुछ दिनों के लिए स्वप्न साहब ने गाँव छोड़ दिया था।

000

मुझे भाई-बहनों की कमी नहीं थी। जबकि अंत में यही कमी सभी कमियों से बढ़ कर हो गई। दिव्यांग बहन ने आत्महत्या कर ली। मुझसे लिपट कर रोने-धोने के पंद्रह दिनों बाद। घर पर रात-दिन इतने लोगों की आवा-जाही लगी रहती थी कि आत्महत्या करने का चारा नहीं था, इसीलिए रात को घर के पिछवाड़े में आम के बगीचे में एक पेड़ से अपने तन की साड़ी फँसा कर फंदे से झूल गई थी। बस तन पर केवल पेटीकोट था। सुबह लाश उतारते समय उन्मुक्त उरोज़ देख कर दो-चार लोग उसके उरोज़ों के बारे में फुसफुसा रहे थे। दो जनों की बातें सुनाई दीं –

'अगर पता होता कि इसके पास ऐसा माल है, तो साँस रोक कर ठोक ही देता।' दूसरे ने कहा – 'अभी भी मौक़ा है। देखो लाश को धुलने के लिए देते हैं या नहीं।'

सँझली बहन की आत्महत्या में मेरा कोई हाथ नहीं था। फिर भी ख़ुद को अपराधी सा महसूस करता। बड़े दो भाई डकैतों के गिरोह में शामिल होने के छह माह के भीतर ही मारे गए। बड़ा भाई मारा गया भीड़ की धुनाई से। डकैती डालने गए, पकड़े जाने पर लोगों ने धुन-धुन कर पहचानने लायक भी नहीं छोड़ा। मुझे अभी लगता है कि तीन जनों में से जिसे हमने बड़ा भाई मान कर लाकर क़ब्र के हवाले किया था, वह हमारा भाई नहीं था। भाई की जाँघ पर कटे का निशान था जो मैंने दूसरी लाश पर देखा था। लेकिन माँ ने पहले ही जिस लाश को देख कर रोना शुरू कर दिया पुलिस ने वही लाश बैलगाड़ी पर लाद दी थी। अपने हिस्से की एक लाश मिलने से ही मतलब था, इसीलिए मैंने कुछ नहीं कहा।

मँझले भाई को उसके गिरोह के लोगों ने ही मारा था। डकैती के माल के बँटवारे को लेकर समस्या हुई थी। कोई कहता है कि बड़े भाई की मौत के बाद वह डकैती का काम छोड़ना चाहता था। तथ्यों का पर्दाफाश हो जाने के डर से उन्होंने माल के बँटवारे का ड्रामा रच कर उसे मार दिया। सँझला भाई जेल में हैं। बॉर्डर से गऊओं की तस्करी करके लाता था। इसके बाद गऊएँ छोड़ कर बोतलें लाने लगा। छोटी चीज़ पर रिस्क कम और लाभ ज़्यादा था। बी एस एफ की गोली लगी दो-दो बार। एक बार कान पर लगी और दूसरी बार जाँघ के माँस पर। एक दिन तड़के दौड़ते-दौड़ते घर आया। माँ के रूदन का स्वर सुनाई दिया। उठ कर देखा कि उसका एक कान झूल रहा था। 'जीवन की माँ को... ' कहकर उसने ख़ुद ही कान खींच कर अलग कर दिया। माँ कटा कान हाथ में लिए रोती रही और वह कपड़े से रक्तारंजित कान दबाए चालान पता करने चला गया। इसके बाद हमें कुछ भी पता नहीं चला। कुछ दिनों बाद लँगड़ाते-लँगड़ाते आया, कहा कि पैर में गोली लगी है। इसके बाद थाने से बुलावा आया - दो-तीन लोगों की गिरफ्तारी दिखानी होगी। ऊपर से दबाव है, लेकिन थाने के भीतर ही रह कर पता नहीं कैसे खून के मामले में फँस गया। हमारा एकमात्र छोटा भाई बच गया। पढ़ाई-लिखाई में अव्वल था। इसके उसके घर रहकर गाँव वाले स्कूल की पढ़ाई पूरी कर शहर चला गया और फिर लौट कर नहीं आया। और रह गया मैं।

माँ भी गुज़र गई पेट दर्द से। उसका जनाज़ा नहीं निकला। नए हुज़ूर ने कहा – वेश्या के जनाज़े में जो शिरकत करेगा वह बिना फैसले के ही दोजख की आग में जलेगा। कोई नहीं आया। समाज के क़ब्रिस्तान में खाक़-ए-सुपुर्द की इजाज़त लेने गया पिता खाली लौट आया। माँ के शव के पास बैठ कर फूट-फूट कर रोना शुरू किया। माँ की मौत सहन करते हुए भी पाखंडी पिता का रुदन मुझसे सहा नहीं गया।

घर के अलावा हमारे पास और कोई जगह नहीं थी कि जहाँ माँ को सुपुर्द-ए-खाक किया जा सके। दूर एक नदी है वह भी सूखी है, वर्ना बहा दिया जाता। शव से दुर्गंध आती देख पिता ने रात को ही आँगन खोदना शुरू किया। मैंने भी कुदाल उठा ली। बहुत गहरा गड्ढा खोद कर माँ को सुपुर्द-ए-ख़ाक़ कर दिया गया। तब मेरी उम्र बीस या इक्कीस थी। पिता ने फिर ब्याह कर लिया। गृहस्थी की इतनी कमियों को सहन करते हुए वे इस एक नुक़्सान को सहन न कर पाए थे। लगभग मेरी हमउम्र एक युवती को घर ले आए। आमदनी-रोज़गार कुछ भी नहीं था पिता का। नशा कर-कर के तन भी खोखला हो गया था। सौतेली माँ जब समझ गई कि तन होते हुए भी मैं अक्षम हूँ तो, मुझे घर पर रहने नहीं दिया गया। पीछे दादी का कमरा था। मैं उसी में रहने लगा। अस्सी वर्षीया वृद्धा, अभावों की गृहस्थी में उसकी इस दीर्घायु होने की मुझे कोई वजह समझ नहीं आती थी। कभी-कभी लगता कि तकिया दबा कर बुढ़िया को मार डालूँ। न मार कर अच्छा ही किया। मुझे एक आश्रय मिल गया। दादी ने मरने से पहले पुलाव खाना चाहा था। पिता ने परवाह नहीं की। प्राय: ही दादी स्वप्न साहब की रसोई के पिछवाड़े जाकर बैठी रहती पुलाव की सुगंध सूँघने के लिए। बैठे-बैठे ही एक दिन उठ नहीं पाई।

दादी की मृत्यु के बाद पिता की भी मृत्यु हो गई। उम्र और बीमारी सब ने धावा बोला। पिता के जनाज़े में समस्या नहीं हुई। पुरुष वेश्या नहीं होता। होता तो मुझे अकेले ही आँगन में मिट्टी खोदनी पड़ती। चाहता था कि जनाज़ा भले हो न हो, दस लोग मिल कर मिट्टी ज़रूर दें। प्रसन्नता की बात है कि सब कुछ अच्छी तरह संपन्न हो गया। मुझे कुछ नहीं करना पड़ा।

एक इतना बड़ा परिवार देखते ही देखते कैसे ख़त्म हो गया। मेरे ज़िंदा रहने, न रहने का कोई मतलब नहीं। मुझसे वंशवृद्धि नहीं होगी। लेकिन इतना समझ गया हूँ कि वेश्याबाड़ी की लड़की के बजाय पौरुषहीन पुरुष बनकर जन्म लेना अधिक श्रेयस्कर है। अनेक असुविधाओं के होते हुए भी सुविधा है। कम से कम ज़िंदा तो रहा जा सकता है। मृत्यु के बाद जनाज़े से वंचित नहीं होना पड़ता।

आँगन में सो रही है माँ। एक कमरे में मैं, बाकी कमरे खाली रहते हैं। रात गहराने पर कमरे से बाहर निकल कर आता हूँ, मेरा बहुत जी चाहता है, अकेली माँ के बगल में लेटने को। बहुत पाप करने को जी चाहता है – वेश्या का पाप।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

दगड़ू मामा

मराठी कहानी

मूल लेखक : उत्तम कांबले
अनुवाद : किशोर दिवसे

उत्तम कांबले
सकाल समूह समाचारपत्र के नाशिक में न्यूज नेटवर्क संपादक रहे।
रचना संसार- 2 उपन्यास, 4 कथासंग्रह, 5 संशोधन परक पुस्तकें, 2 काव्य संग्रह, 5 सम्पादित पुस्तकें, 2 आत्मकथन प्रकाशित।
मोबाइल- 9881099143

किशोर दिवसे
मोबाइल- 9827471743
ईमेल- kishorediwase0@gmail .com

कॉलेज का आख़िरी घंटा बिताकर मैं और मेरा दोस्त हॉस्टल की ओर निकले। अंतिम पीरियड साढ़े ग्यारह को समाप्त होता था। क्लासेस ख़त्म कर हॉस्टल पहुँचने में पौन घंटा लग जाता था। भूख के मारे पेट में चूहे कबड्डी खेलने लग जाते थे। वे पैरों को धकियाते थे जिससे पैरों की रफ़्तार बढ़ जाती थी। अपने हाथ में रखी कॉपियाँ ऊपर नीचे करते हुए या उन्हें अपनी अँगुलियों में घुमाते हुए हम लोग चले रहते। कभी-कभी कॉपियाँ साथ नहीं होती थीं। कॉलेज में दिन भर हुई गतिविधियों पर गप- सड़ाका करते रास्ते की दूरी का पता भी नहीं चलता।

हम लोग पंचगंगा नदी के लक्ष्मी पुल पर पहुँचे। पैर अपने आप ही रुक गए थे। पुल के बाईं ओर भीड़ जमा थी। अक्सर ऐसी भीड़ हमेशा ही नज़र आती थी। पुल पर दो-तीन रोड साइड रोमियो लगातार नीचे देखते हुए दिखाई देते। वे क्या कर रहे हैं यह जानने के लिए तमाशबीन भी इकठ्ठा हो जाया करते। देखते ही देखते भीड़ जमा हो जाया करती। हुजूम बढ़ता देखकर वे आवारा आपस में ही क्या हुआ .. क्या हुआ....कहकर पतली गली से सटक जाया करते। कभी उन्हें घूरकर तो कभी एकाध शब्द पूछकर पता भी किया लेकिन कभी कोई जवाब ही नहीं मिलता। पल पर रुकने वाले हर किस राहगीर को ऐसा ही लगता कि फ़ालतू ही वक़्त जाया किया। ख़ुद पर ही नाराज़ होकर वह अपने रास्ते निकल पड़ता। ऐसी ही भीड़ में मैं ख़ुद भी कई बार दाखिल हुआ था। अनेक बार मैं भी उल्लू बना। इस बार भी भीड़ देखकर पैर अचानक रुक गए; फिर भी मन मानने को तैयार नहीं था। भीड़ के करीब पहुँचते ही दीपक कहने लगा, "अरे यार! चल न, क्या है, देखते तो हैं!"

मैंने कहा,"छोड़ न! मुझे नहीं देखना। भूख लगी है, हॉस्टल पहुँचते हैं।

दीपक ने ज़िद की, "अबे चल न, एक मिनट रुकेंगे।"

"नहीं न यार, मैं कई बार पहले भी फँस चुका हूँ।"

"अबे झंडू! कोई नुक़्सान तो नहीं हुआ न?"

"अरे, लेकिन काहे को यार?" मेरा वाक्य पूरा होने से पहले ही दीपक मुझे खींचते हुए भीड़ की ओर ले गया। भीड़ का एक बड़ा सा सैलाब बन चुका था। ऐसा लग रहा था मानों इंसानों की अनेक परतें एक-दूसरे पर चढ़ गई हैं। पहली परत का इंसान अगली परतें भेद कर जाने की कोशिश कर रहा था। भीड़ से बाहर निकलने वाला कुछ भी नहीं बोल रहा था। मैंने एक-दो लोगों से पूछा भी लेकिन उन्होंने अपने मुँह में मानों दही जमा लिया था। आख़िरकार हम दोनों ने ही भीड़ में घुसने का फैसला किया। हाथ में रखी कॉपी शर्ट की ऊपरी बटन खोलकर भीतर डाल

ली। चींटी की रफ़्तार से भीड़ में घुसने लगे। बीच में ही कोई पीछे से चिल्लाया, "अरे! क्या हुआ,कोई कुछ बताएगा भी ?" किसी के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी, हर कोई चुप रहा। धीरे-धीरे दो चक्के, चार चक्के वाहन वाले भी भीड़ में घुसने लगे। भीड़ में से ही कोई चिल्लाया, "अरे, लाश है लाश ! उसका एक हाथ टूटकर ही बाजू में पड़ा है।"

अब भीड़ की वजह पता चल चुकी थी। लाश देखने के लिए हमारे मन में भी खुजली होने लगी थी। भीड़ के कारण अपने पैरों के नीचे का रास्ता ही न खिसक जाए, ऐसा महसूस होता था। भीड़ का घनत्व अब और बढ़ने लगा था। अंतत: लाश के पास पहुँच गए हम लोग। लाश के सिर पर कपड़ा ढका हुआ था। एक हाथ टूटी हालत में बाजू में ही पड़ा हुआ था। खून का छोटा सा तालाब बन चुका था वहाँ। वह टूटा हुआ हाथ बिना मुंडी के साँप की तरह दिख रहा था। "किसकी हो सकती है वह लाश?" मेरे मन में सवाल उठा। मैंने दीपक से कहा, "क्या रे दिप्या! किसकी होगी यह लाश? किसने इसका मर्डर कर डाला होगा?"

दीपक ने मेरा हाथ पकड़ कहने लगा, "चल यार... अब चलते हैं,मुझसे देखा नहीं जा रहा है।" हम दोनों पीछे मुड़ ही रहे थे कि भीड़ के धक्के से एक बन्दे का संतुलन बिगड़ा। उसका पैर लाश के चेहरे पर पड़े कपड़े पर घिसटा। कपड़े के हटते ही जब लाश के चेहरे पर नज़र पड़ी, चेहरे पर बड़ा सा मस्सा देखते ही वह चेहरा जाना-पहचाना सा लगा। तुरंत ही मेरे मुँह से चीख निकल गई। "अरे ! ये तो..."

दूसरे ही पल मैंने हथेली से मुँह बंद कर लिया। फिर भी दिप्या कहने लगा, "क्यों यार!... तू इसे पहचानता है क्या?" शब्द मेरे मुँह में बर्फ की मानिंद जम गए थे। ऐसा लगा कि गला अवरुद्ध हो जाएगा। दूसरे ही क्षण स्वत: को नियंत्रित करते हुए मैंने कहा, "चल दिप्या... चल, चलते हैं।" भीड़ को तेज़ी से चीरकर हम दोनों बाहर आ गए। वैसे ही दीपक ने कहा,"बता न यार ! तू उस लाश को पहचानता है क्या?"

"छोड़ न यार ! मैं कैसे पहचानूँगा भला?"

"लेकिन तूने तो कुछ कहने के लिए मुँह खोला था उस समय। ...यह तो अपना... इतना कहकर तू रुक गया।"

"हाँ, मैंने ऐसा कहा, लेकिन ऐसी कोई बात नहीं है। चेहरा कहीं देखा हुआ सा लगा पर कुछ सच सा नहीं लगा।"

"तुझे क्या लगता है यार! मर्डर हुआ होगा?"

"पक्का मर्डर ही....पेट और गले पर ज़ख्मों के निशान नहीं देखे ?"

"किसने किया होगा मर्डर?"

"मैं पुलिस विभाग में भर्ती हो जाऊँगा, तब देखूँगा।"

"चुप बे साले ! तू क्या घंटा पुलिस बनेगा? तू तो बस कहीं बाबू ही बनेगा।"

"ठीक है बे! मेरी औकात तो बाबू की है,तू तो बनेगा न साहब! चल.... ठीक है।"

"अबे मेरी जान! तू बहुत जल्दी चिढ़ता है यार।..."

"नहीं यार दीपक !आज मेरा मूड ख़राब है।"

"अरे।..क्या हुआ मूड ख़राब होने को?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही।"

बात करते-करते हॉस्टल आ गया। खोली पर जाने के बदले सीधे मेस में ही चला गया। शर्ट के भीतर रखी कॉपी बाजू वाले टेबल पर रखी। नल पर जाकर हाथ धोए और खाना खाने बैठा। पेट की भूख गले से नीचे निवाला नहीं उतारने की हड़ताल कर बैठी थी। ऐसा लगा मानों भूख मर चुकी है। ले दे कर दो-चार कौर बमुश्किल निगले और उठ गया। कॉपी उठाई और खोली पर जाकर अपने बिस्तर पर पड़ गया। बहुत देर बाद दीपक डकार मारते हुए कमरे में आया। हमेशा की तरह वह भी अपनी कॉट पर पड़ गया।

"मेरी जान! तेरा मूड काहे ऐसा बिगड़ा है, चल अपन पान खाकर आते हैं।" मेरे चेहरे के भाव अपनी बेचैनी छिपाने में नाकामयाब हो चुके थे। दीपक की आँखों ने इसे अच्छी तरह समझ लिया था। विषय बदलने के लिए मैंने कहा, "दिप्या ! चल अपन दो घंटा तान कर सो जाते हैं, फिर चलेंगे पान खाने।"

इससे पहले कि दीपक कोई जवाब दे मैंने अपने मुँह पर चादर ओढ़ ली। मुँह पर चादर ओढ़ लेने से बेचैनी और भी बढ़ गई। चादर की वजह से कोई अपना चेहरा नहीं देख सकेगा, यह भी उसके पीछे एक कारण हो सकता है। पल भर के लिए ऐसा लगा कि उठकर सीधे हॉस्टल के टेरेस पर जाकर ज़ोर ज़ोर से चिल्लाऊँ ... बिलख-बिलख कर रोऊँ ...अपने दिल में जमा ग़ुबार आँसुओं के रास्ते बाहर निकाल दूँ। लेकिन ऐसा मैंने नहीं किया। अपने चेहरे की चादर बाजू सरकाई। दीपक के बिस्तर पर नज़र डाली। उसे नींद आ चुकी थी। गर्भ के शिशु की तरह ख़ुद को सिकोड़कर दीपक चादर में समा चुका था। मैं उठा और कपड़े पहने। हॉस्टल के बाहर आ गया। भाड़े की साइकल ली और ज़ोरों से चलाते हुए निकला। इतनी रफ़्तार से साइकल चलाने का यह मेरा पहला अनुभव था। साइकल पंचगंगा के लक्ष्मी पुल की दिशा से मोड़ दी। पुल सामने आते ही जैसे पैर सुन्न पड़ गए। समूचे पुल पर वीरानी और सन्नाटा था। मैं साइकल से नीचे उतरा। हाथ से ही साइकल को धकियाते हुए पुल पर पहुँचा। दो-चार घंटे पहले जिस जगह पर लाश पड़ी थी वह स्थान खाली हो चुका था। सिर्फ खून के निशान ही दिखाई दे रहे थे। मुझे पता था कि वह पुल बुधवारपेठ पुलिस थाने की सरहद में था। मैंने अपनी साइकल का रुख सीधे उसी तरफ मोड़ लिया।

पुलिस थाने में भीड़भाड़ नहीं थी। साइकल बाहर ही खड़ी कर मैं थाने के गेट पर पहुँचा। थाने के भीतर एक पैर रखते ही दूसरे क्षण पैर वापस खींच लिया। पीछे मुड़कर साइकल उठाई और हॉस्टल में लौटा। दीपक अब भी सोया हुआ था। कमरे में रुकने की बजाय मैं सीधे टेरेस पर गया। बादाम के पेड़ की छाया टेरेस पर पसरी हुई थी। छाँव के बदले मैं धूप में बैठा। ऐसा लगा कि धूप की वजह से दम घुटेगा लेकिन ऐसा हुआ नहीं। मेरे ही सामने वह लाश दिखने लगी। मुझे लगा मानों वह लाश मुझे गालियाँ दे रही हो, "कितना डरपोक है तू!" ऐसा महसूस हुआ कि लाश का टूटा हुआ हाथ मुझे थप्पड़ मार

रहा है। पल भर के लिए मैंने आँखें मूँद लीं और फिर से खोलीं। मैं ही ख़ुद को कोसने लगा। अपनी ही कायरता पर मन ही मन हँसने लगा। चिढ़ने भी लगा। अचानक मेरी पलकें भीगने लगीं जिन्हें धूप की किरणों ने सुखा दिया।

बादाम के पेड़ की छाँव आहिस्ता-आहिस्ता अब मेरी ओर सरक रही थी। मेरी परछाईं भी उस छाया से एकाकार होने लगी। पल भर के लिए मुझे ऐसा लगा मानों प्रतिष्ठित लोगों की दुनिया में, उनकी परछाइयों में इसी तरह ख़ुद को भूल जाते होंगे। अनेक विचारों के बवंडर मुझे अपने बचपन की यादों में उड़ाकर ले गए। वही सुतारवाड़ी, गाँव के बाहर की दलित बसाहटें, उस बसाहट में ठाठ से खड़ा समाज का मंदिर.... ताश के पत्तों के खेल की बैठकें और उसी दरम्यान, दगड़ूमामा की बुलंद आवाज़,"ये रही दस रुपये के लिए मेरी ब्लाइंड".... ताश की बाज़ियाँ खेलते बाकी लोगों में भूचाल सा और वे एक-दूसरे को देखने लगते। एक के बाद एक खिलाड़ी अपने पत्ते नीचे रखने लगता। दगड़ू मामा बगैर पत्ते खोले ही बाज़ी जीत जाता। उसके हाथ जीती हुई रकम समेटते हुए दिखाई देते। उस रकम में से पचीस पैसे का एक सिक्का मेरे हाथ में देकर वह कहते, "चल राजा ... ले यह पैसे, एक बीड़ी का बंडल और माचिस लेकर आ जा। बचे हुए पाँच पैसे तेरे। पेपरमिंट गोलियाँ या भुने हुए मटर ले लेना। ... चल भाग।"

पीठ पर दगड़ू मामा की धौल पड़ते ही मैं दूकान पहुँच जाता। लोग उसे "दगड्या दरोडे खोर" (दगड्या लुटेरा) कहकर बुलाया करते। दगड्या क़द-काठी से दगड़ यानी चट्टान जैसा पहलवान दिखने वाला। ऊँचाई अधिक नहीं लेकिन आँखें छोटी-छोटी। अक्सर उन आँखों में सुर्ख डोरे तैरा करते। उसके चेहरे पर दाहिने गाल पर बड़ा सा मस्सा था। ताश खेलते वक्त दगड़ू मामा इसी मस्से पर कार्ड घिसकर सोचा करता। दोनों गाल फूले हुए रहते। नाक ज़रा नकटा सा। होठों पर ऊपर घूमी हुई रौबदार मूछें। बाएँ गाल पर किसी ज़ख्म का निशान। दोनों हाथों के नाखून बढ़े हुए। गले में लटकता बड़ा सा ताबीज़। देखत ही सामने वाले की सिट्टी–पिट्टी गुम हो जाए ऐसा चेहरा। दगड़ूमामा का न कोई घर न बार। माँ-बाप बचपन में ही स्वर्ग सिधार गए। घर में दगड़ू मामा अकेला ही रहता था। छककर दारू पीता... मटन खाता। दोपहर और शाम को ताश खेलने समाज के मंदिर में जाता। जुआ खेलने के लिए पास अगर पैसे न रहे तो वह उधार पर क़र्ज़ भी देता। तीन पट्टी, पाँच पट्टी और रमी के दाँव में घंटों गुज़ार देता।

डकैती डाला करता। दगड्या का नाम लेते ही शेखचिल्ली बना रहने वाला पाटिल भी भीगी बिल्ली बनकर काँपने लगता। दगड्या ने कभी ग़रीबों को नहीं सताया। फिल्मों के हीरो की तरह वह सिर्फ अमीरों को खुलेआम लूटता। जिसके घर पर डकैती डालनी है उसके दरवाज़े पर टूटी- फूटी मराठी में लिख दिया करता,"आज रात्री दगड्या येनार हाय ...सांभाळून रहा।" घर मालिक चाहे जैसा भी हो और वह कितना भी जागता रहे तब भी दगड्या की डकैती का सफल होना तय। उसके गले में हमेशा गोफन लटकता रहता। दाहिने हाथ में चाक़ू। बाएँ जेब में नुकीले पत्थर रखा करता। चटनी से भरी थैली भी उसके गले में लटकती रहती। डकैती होने के बाद दस दिन तक वह ग़ायब हो जाता, फिर लौटता। उसकी तरफ देखने का साहस किसी को भी नहीं था। सभी गली के बच्चे भी बदहवास भागने लगते। उन्हें भागता देखकर दगड्या हँसने लगता। "अरे रुको न ! पेपरमिंट और चॉकलेट देता हूँ," कभी-कभी वह कहा करता।

दगड्या जब गाँव में घूमता तब गाँव के लोग रास्ता छोड़ दिया करते। दगड्या कभी किसी से ज़बरदस्ती मारपीट भी नहीं करता। वह अण्णा भाऊ साठे के उपन्यास के नायक जैसा लगता था। मरगु बाई की जात्रा के समय दगड्या सारा खर्च ख़ुद ही करता। देवी के सामने बलि चढ़ाने पंडवा भी ख़ुद ही खरीदता। पंडवे का जुलूस निकालते वह हलगी की धुन पर गुलाल लगाकर ख़ूब नाचता। कई दफे तो अपने एक झटके में पंडवे की गर्दन धड़ से अलग कर देता। फिर रक्त में हाथ डूबोकर उसे अपने माथे पर लगा लेता। रात को जब पूरी गली के लोग भोजन के लिए बैठते वह दारु पीकर टुन्न हो जाता। पूरी पंगत में घूमकर खाने का आग्रह भी करता, "ख़ूब हड्डियाँ चबाओ रे बच्चों !" बच्चे उसकी ओर बिना देखे खाने में मशगूल रहते।

दगड़ूमामा से मेरी भेंट उस वक्त हुई जब मेरे माता-पिता जमकर लड़ रहे थे। दारू पीकर आया मेरा बाप, माँ को जानवर की तरह पीट रहा था। मैंने बीच-बचाव किया। मेरी जमकर ठुकाई हुई। जब बाप ने मेरी गर्दन पकड़कर बाहर फेंक दिया, मैं रोते-कलपते समाज मंदिर के पास आया। मेरा रोना सुनकर दगड्या दौड़कर आया। हाथ पकड़कर उसे मैं अपने घर ले आया। बाप ने तब तक माँ को पीट-पीटकर लहूलुहान कर दिया था। मेरा बाप अपने हाथ में रखी लाठी से मेरी माँ के सिर पर मारने ही वाला था, तभी दगड्या ने हवा में ही वह लाठी पकड़ ली और मेरे बाप की पीठ पर ज़ोरदार लात मारी। बाप लड़खड़ा गया और सामने वाली दीवार से टकराया। वह उठने की कोशिश कर रहा था लेकिन दगड्या ने फिर लाठी उठा ली। आख़िरकार माँ ने बीच-बचाव किया। दगड्या ने तब मेरे बाप को चेतावनी दी, "ख़बरदार सीत्या, आज के बाद कभी पत्नी पर हाथ नहीं उठाना। साले, दिन भर दारू पीकर पड़ा रहता है। वह बेचारी घर सँभालती है जिसके भरोसे तू पेट भरता है। उस पर हाथ उठा रहा है? सीत्या कान खोलकर सुन ले! आज से तेरी पत्नी मेरी बहन और तेरा बेटा मेरा भांजा है। ग़लती से भी अगर उनसे मारपीट की, तेरी हड्डियाँ तोड़कर थैली में भरकर कृष्ण नदी में विसर्जित कर दूँगा। समझ गया क्या ? अरे! मर्द का बच्चा है तो डकैती कर मेरी तरह। ... पत्नी पर क्या हाथ उठाता है।"

बस उसी दिन से मेरी माँ की पिटाई बंद दो गई। उसे भाई और मुझे मामा मिल गया। समाज के मंदिर में ताश की बाज़ियाँ शुरू होते ही मैं बेधड़क दगड़ू मामा के पास दिखाई देता। दगड़ूमामा भी ठहरा उस्ताद। "चल तू पहाड़े पढ़। फिर बारहखड़ी भी पढ़ना। पढ़

लिखकर समझदार बनना।" यही दगडू मामा की ज़िद रहती। रात को देर तक ताश चलने का अंदेशा होते ही वह मेरे हाथ पर दस पैसे का सिक्का रखकर कहता, "भाग भोसड़ी के, चल अपने घर जा।" एक बार गुरुजी ने मुझे पहाड़े नहीं बोल सकने के लिए शरीर सूजने तक मारा। उसे यह बात कहीं से पता चल गई। ग़ुस्से में फनफनाते हुए दगडू मामा,स्कूल पहुँचकर गुरुजी पर भड़क गया, "देखो मास्टर जी! मुझे दगडू दरोड़ेखोर कहते हैं। अगर मेरे भांजे को फिर कभी मारा न तब सुबह स्कूल में आग लगा दूँगा और वहाँ की राख तेरे मस्तक पर लगा दूँगा।" दगडू मामा के ऐसा कहने पर गुरुजी की साँस फूल गई। उस दिन से गुरुजी ने मुझे कभी हाथ तक नहीं लगाया। दगडू मामा कभी-कभी मेरे लिए स्लेट पट्टी लेकर आता और स्कूल की तरफ से सैर-सपाटा आयोजित होने पर मुझे पैसे भी दिया करता। अब वह मेरा पसंदीदा मामा और मैं उसका प्यारा भांजा बन चुका था। मेरे घर वाली गली के लोग कुछ भी बोलते थे।

वे कहते, "अपने बेटे को डकैत बनाना है क्या ?" तब मेरी माँ कहती, "चन्दन के पेड़ पर नीम की छाया पड़ने पर चंदन कभी कड़वा नहीं होता। दगड्या तुम्हारे लिए होगा लुटेरा या डकैत। मेरे लिए वह सगे भाई से भी अधिक प्यारा भाई है। मेरा पति जब मेरी जान ले रहा था तब दगड्या ही मुझे बचाने भगवान् बनकर आया। बाकी तुम सभी लोग आँखें खोलकर तमाशबीन बने रहे।" दगडू मामा कई बार मुझे घुमाने ले जाता था। बीच में मेरी पीठ पर स्नेह से हाथ फेरकर कहता, "राजा ! तू बहुत बड़ा बनेगा।"

तब मैं कहता, "बहुत बड़ा मतलब तेरे जितना बड़ा ?"

दगडूमामा कहता, "स्साले ...मुझसे भी बहुत बड़ा।"

"तुझसे बड़ा मतलब समाज के मंदिर की दीवाल जितना बड़ा?"

"अरे गधे !अरे .. ऊँचाई में नहीं, संस्कार और बड़प्पन में।"

"बड़प्पन का मतलब क्या होता है रे मामा?"

"बड़प्पन का मतलब होता है जिनका सभी सम्मान करते हैं।"

"अरे मामा। सम्मान काहे के लिए ?"

"अरे बाबा ! सम्मान होता है न... सम्मान होता है न। ... आइला ! अब मैं इसे कैसे समझाऊँ? देख तू सबसे ख़ूब सम्मान हासिल कर।"

"कहाँ से लाऊँ सम्मान ? तू लेकर आ न मामा कहीं से सम्मान, मेरे लिए लूट कर !"

"मेरे राजा बेटा ! लूट या डकैती करने से रोटी मिल सकती है, इज़्ज़त और सम्मान नहीं मिलता।"

"तब तो मुझे भी रोटी चाहिए न। मैं भी आऊँगा दगडू मामा तेरे साथ डकैती डालने।"

इस पर दगडू मामा चिढ़ गया और उसने मेरे गाल पर एक ज़ोरदार तमाचा जड़ दिया। मुझे चक्कर आने लगा। दो-दो दगडू मामा दिखाई देने लगे। उसने मुझे तुरंत उठाकर अपने सीने से लगा लिया। हम दोनों गप्पें मारते - मारते घर लौटे।

मेरी प्राथमिक पढ़ाई चौथी तक पहुँच गई थी। चौथी की बोर्ड परीक्षा समाप्त हुई और मैं परिणाम लेने के लिए स्कूल पहुँचा। मैं पास हो गया था। दगडू मामा से भेंट नहीं हो सकी। बहुत बुरा लगा। मामा के बारे में पूछताछ की। फिर उनके घर गया। रात को देर तक समाज के मंदिर में रुका भी। ताश की बाज़ी लगी लेकिन दगडू मामा वहाँ नहीं था। माँ से पूछताछ की लेकिन वह भी कुछ बता नहीं सकी।

दगडू मामा दूसरे दिन, तीसरे दिन... कभी गाँव नहीं आया। एक एक कर कई साल बीत गए। मेरी माध्यमिक स्कूल की पढ़ाई भी पूरी हो गई। इसी दरम्यान मेरे बाप ने माँ को फिर ज़्यादा ही तंग करना शुरू कर दिया था। दारू पीकर वह माँ को बेतहाशा पीटने लगा था। माँ दगडू मामा का नाम लेकर गुहार लगाती, "कहाँ चला गया तू दगडू भाऊ?"

दगडू मामा नहीं आया। कोई कहता पुलिस ने उसे कालेपानी की, जेल में पत्थर तोड़ने की, या आजीवन कारावास की सज़ा दी। अफ़वाह यह भी थी कि पाटिल ने दगडू मामा को मार डाला। यह भी ख़बर उड़ी कि दगड्या का मानसिक संतुलन ख़राब हो गया है। वह निर्वस्त्र होकर कोल्हापुर में भीख माँग रहा है। मुंबई में गिरोह बना लेने और किसी शहर में वेश्या के चक्कर में फँस जाने का भी चर्चा उड़ा.... जितने मुँह, उतनी बातें। दगडू मामा को किसी ने भी नहीं देखा।

अमूमन दस -ग्यारह वर्ष बाद दगडू मामा मुझे दिखाई दिया तो लक्ष्मी पुल पर लाश के रूप में। उसके गाल पर मस्सा और छोटी-छोटी आँखें मैंने तुरंत पहचान ली थी। उसका नाम पर भी तत्काल मेरे होटों पर आया, लेकिन मैं उसे निगल गया। दगडू मामा मेरा मामा था अगर यह बात लोगों को पता चल जाती तब लोग मुझे दूर कर देते। लुटेरे और डकैत का भांजा कहकर चिढ़ाया होता। शायद बहिष्कृत भी कर दिया जाता। मैंने दगडू मामा की लाश को भी अपनी पहचान नहीं बताई। मैं जब छोटा था तब दगडूमामा इज़्ज़त और सम्मान ऐसा ही कुछ कहा करता। यह इज़्ज़त शब्द कितना कठोर होता है। ...उसके एहसास में भी तलवार जैसी वह इंसान की भावना भी चीरकर तार-तार कर देती है। कलेजा विदीर्ण कर देती है। तीखी धार होती है ... आँसू पी लेती है। इज़्ज़त सचमुच कितनी बुरी चीज़ होती है.... इंसान को पत्थर और संवेदनहीन तक बना देती है? दगडू मामा मेरे बारे में कितनी बड़ी-बड़ी बातें बोला करता था.... तू बड़ा होकर बहुत बड़ा इंसान बनेगा। आख़िर इस इज़्ज़त को कभी ख़ुद के पैर भी होंगे या ऐसे ही हवा में लटकती हुई.... टेरेस पर बैठकर मुझे फूट-फूट कर रुलाने वाली, सुबकियाँ लेने पर विवश करने वाली और सिसकियाँ निगलने को मज़बूर भी करने वाली।

दगडू मामा को आख़िर किसने और क्यों मार डाला होगा ? मेरे मन में अनेकानेक सवाल के चमगादड़ फड़फड़ाने लगे थे और वे सभी इज़्ज़त या प्रतिष्ठा के पुख्ता इस्पाती परदे के नीचे दम तोड़ रहे थे। "राजा... ए राजा!" एकाएक दीपक की पहाड़ी आवाज़ टेरेस तक पहुँचा। उसके ऊपर आने से पहले मैं स्वत: सीढ़ियाँ उतरने लगा था।

000

साइकिल ने बनाया राणा साँगा

गोविन्द सेन

तब साइकिल का ज़माना था। आने-जाने का मुख्य साधन साइकिल होता था। गाँव में इक्का-दुक्का ही मोटरसाइकिल नज़र आती थीं। बाद में गाँव में एक ट्रेक्टर आया था। लोग पैदल ही अधिक चला करते थे। बचपन में मोटर वाहनों के प्रति अदम्य आकर्षण था। कल्पना लोक में ईंट ही मोटर बन जाती थी। मुँह से भर्र-भर्र...भुर्र...भुर्र की आवाज़ें निकलती जातीं और मोटर यानी बस आगे बढ़ती जाती। धूल पर आड़ी-तिरछी घुमावदार सड़क बनती जाती। उसी निर्धारित सड़क पर बस दौड़ती। बीच में कई स्टेशन नदी और पहाड़ आते। उसमें मामा जी का गाँव राजपुरा (अमझेरा) ज़रूर आता जो मुझे बहुत प्रिय था।

कुछ बड़ा हुआ तो साइकिल चलाने का जुनून सवार हो गया। तब मैं सातवीं या आठवीं में पढ़ रहा होऊँगा। अभी तक तो गुलाटी से बालीपुर पैदल ही चला जाता था। गुलाटी मेरे गाँव का नाम है। तब गुलाटी में पाँचवीं तक ही स्कूल था। छठवीं से बालीपुर पढ़ने जाना होता था। दोनों गाँवों के बीच ख़ास दूरी भी नहीं है। बीच में बस एक खोदरा (छोटी नदी) पड़ता है। लेकिन आठवीं पास करने के बाद नवीं में मनावर पढ़ने जाना था। तब मनावर-गुलाटी के बीच पक्की सड़क नहीं बनी थी, कच्चा गड़वाट का रास्ता था। मेरे गाँव गुलाटी से मनावर पाँच किलोमीटर दूर है। प्राय: सभी पढ़ने वाले लड़के साइकिल से मनावर पढ़ने जाते थे। अत: मेरे लिए साइकिल सीखना बहुत ज़रूरी था।

यहाँ गुलाटी में साइकिल ज़रूर थी, पर बाऊजी उसे हाथ नहीं लगाने देते थे। थी भी वह चौबीस इंच की ऊँची साइकिल। हालत भी उसकी अच्छी नहीं थी। वह सत्रह जगह से वेल्ड की हुई थी। कभी चेन उतर जाती तो कभी ब्रेक नहीं लगता। अत: उससे साइकिल चलाना सीखना ख़तरे से खाली नहीं था। अव्वल तो उसे सँभालना ही मुश्किल काम था, फिर उससे सीखना तो डबल मुश्किल का काम था।

अब एक ही रास्ता था। शीतकालीन अवकाश हो या गर्मी की छुट्टियाँ मैं सीधे राजपुरा पहुँच जाता। वहाँ बाऊजी का डर नहीं था और मनमाफिक करने की पूरी आज़ादी भी थी। एकदम

गोविंद सेन
193 राधारमण कॉलोनी, मनावर-454446,(धार), म.प्र.
मोबाइल- 9893010439
ईमेल- govindsen2011@gmail.com

खुला-खुला वातावरण। नानी जी का लाड़ और मामाजी का मित्रवत् व्यवहार। छोटा भाई जग्गू राजपुरा में ही पढ़ रहा था। वह साइकिल चलाना सीख चुका था। साइकिल चलाने का उसका अभ्यास पक्का हो चुका था। उसे अक्सर साइकिल से अमझेरा दौड़ लगानी पड़ती थी। कभी गेहूँ पिसवाने या कोई सामान लाने-ले जाने के लिए। खेत पर भी जाना पड़ता था। जब भी साइकिल फ्री होती मैं सीखने का प्रयास करता। इस प्रक्रिया में छोटे भाई जग्गू की भी मदद मिलती। आख़िर कुछ-कुछ चलाना सीख ही गया।

गुलाटी आकर अब मैंने अपने घर की जर्जर साइकिल पर अभ्यास करना शुरू किया ताकि मैं पक्के तौर पर चलाना सीख जाऊँ। लेकिन मैं उस ऊँची साइकिल का संतुलन नहीं साध पाता। अक्सर संतुलन बिगड़ जाता। ठीक से सीखने तक मैं कई बार गिर चुका था। छोटी-मोटी कई चोटें मुझे लग चुकी थीं।

एक दोपहर की बात है। मैं गुलाटी से बालीपुर जा रहा था। रास्ता एक खेत की मेड़ से लगा था। खेत की मेड़ थूहर (एक प्रकार का केक्टस) की बागड़ से घिरा था। यह खेत खोदरे के किनारे था। मुझे खोदरा पार करना था। साइकिल सरपट चली जा रही थी। ब्रेक लग नहीं रहा था। लग रहा था कि मैं साइकिल नहीं चला रहा हूँ, बल्कि साइकिल ही मुझे चला रही थी। मैं साइकिल पर अपना नियंत्रण खो चुका था। मैंने ख़ुद को उसके हवाले कर दिया। इसके सिवा मेरे पास कोई चारा भी नहीं था। साइकिल एक पत्थर से टकरायी, संतुलन बिगड़ा और मैं थूहर की बागड़ पर जा गिरा। लगा कि जैसे मुझे उठाकर किसी ने काँटों के ढेर पर फेंक दिया हो। मेरे पूरे शरीर में थूहर के बारीक काँटें धँस गए। आसपास कोई नहीं था। मैं दर्द से बिलबिला रहा था। हताशा में मेरी आँखों से आँसू झर रहे थे। मैं रो रहा था। थूहर के बारीक काँटों को शरीर से निकालना भी मेरे लिए मुश्किल था। जितने काँटे निकाल सका, उतने निकाले। आँसू पोंछे और जैसे-तैसे ख़ुद को खड़ा किया।

साइकिल सीखने के चक्कर में शरीर पर घाव ही घाव हो गए थे। किसी दोस्त ने कहा कि घाव पर बीड़ी के बंडल की पन्नी लगा लो। किसी ने कुछ और लगाने की हिदायत दी। सब किया लेकिन घाव ठीक नहीं हुए। उनमें मवाद भर गया। आख़िर बाऊजी (पिता) मुझे मनावर डेरी (डेहरी) वाले डॉक्टर के पास ले गए। उस ज़माने में आसपास के इलाके में 'डेरी वाले डॉक्टर' मशहूर थे। डेहरी नामक क़स्बे से आकर वे मनावर में बस गए थे। इस कारण उनका नाम ही 'डेरी वाले डॉक्टर' पड़ गया था। डेहरी के ह को लोग खा गए थे। डेहरी सिर्फ डेरी हो गया था।

क्षेत्र में उनके इलाज और नाम का डंका बजता था। वे मुझे सुप्रसिद्ध फिल्मी नायक राजकपूर जैसे दिखते थे। गोरा रंग और वैसा ही डील-डौल। कुछ गदबदे बदन के। मानों स्वयं राजकपूर ही उन डॉक्टर का रोल कर रहे हों।

मुझे टेबल पर लिटा दिया गया। मैं जी कड़ा करने की कोशिश करने लगा था। उन्होंने बेरहमी से मेरे घावों को साफ करना शुरू किया। मैं चीखने-चिल्लाने और ज़ोरों से हाथ-पैर पटकने लगा। मेरे हाथ-पाँव पहले ही पकड़ लिये गए थे। मैं हिल नहीं पा रहा था। बेबस तड़प रहा था। मुँह से डॉक्टर साहब के लिए धाराप्रवाह गालियाँ निकल रही थीं। मैंने अपनी गालियों का पूरा ख़ज़ाना उन पर उड़ेल दिया था। लेकिन उन पर कोई असर नहीं हो रहा था। उनकी बेरहमी में कोई कमी नहीं आ रही थी। एक घाव साफ करते तो दूसरा निकल आ जाता। घावों की विशाल श्रृंखला देख वे मुस्कराकर बोले-'यह तो राणा साँगा की जात का है। घाव ही घाव हैं इसके शरीर पर।'

मेरे लिए साइकिल सीखना किसी युद्ध लड़ने से कम न था। उल्लेखनीय है कि राणा साँगा ने जीवन में सौ युद्ध लड़े। उनके शरीर पर अस्सी घावों के निशान थे। उन्हें इन युद्धों में एक हाथ, एक पैर और एक आँख गँवानी पड़ी थी। मैं ख़ुश किस्मत हूँ कि मेरे हाथ-पाँव अभी सलामत हैं। हाँ, घावों के अनेक निशान शरीर पर ज़रूर मौजूद हैं जो मेरे पहचान चिह्न बने हुए हैं।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 21 मार्च 2023

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

गंगा प्रसाद विमल; शख़्सियत भी ख़ुशबू दे जाती है...

पूनम सिंह

स्मृतियाँ जब अतीत का रुख़ करती हैं तो मेहराब-दर-मेहराब रचते हुए उन जगहों, लोगों को तलाशती हैं, मन और आत्मा ऐसे ख़ास लोगों को अपनी परिधि से बाहर जाने नहीं देती... उन्हें याद करने का यत्न भी नहीं करना पड़ता... स्मृतियों की कौंध, उठती हूक से वे आकाश में बिजली के फूल की तरह खिलते हैं और झरते जाते हैं- उनसे उठने वाली अंतहीन बातों के सिलसिले अँखुआने लगते हैं।... साहित्य अकादेमी की सीढ़ियों पर पाँव रखते ही मेरी सबसे पहली तलाश गुरुदेव प्रोफेसर गंगा प्रसाद विमल की ही होती थी- लाइब्रेरी के स्टडी रूम में दाख़िल होते ही मैं रवीन्द्रनाथ टैगोर के चित्र के ठीक बाएँ कोने पर कब्ज़ा जमाये उनकी पीठ पहचानने की कोशिश करती थी... उस एक टेबल और चेयर को जैसे उन्होंने सारस्वत साधना के लिए पूज रखा हो... अब उस ख़ास कोने, चेयर, टेबल पर व्याप्त उदासी देखती हूँ। एक छटपटाहट, बेचैनी हर बार मेरे मन पर तारी हो जाती है। बेहद आत्मीय उन नम यादों की वजह से मैं अक्सर बिना भूख और चाय की तलब के साहित्य अकादेमी की कैंटीन, अकादेमी के बाहर बस स्टैंड के पास आंटी की चाय पीने जाती हूँ..। थोड़ी देर गुरुदेव की स्मृतियों से ठहर कर बतियाने के लिए। वे जगहें, वे लोग एक खालीपन के साथ हू-ब-हू अब भी वैसे ही हैं जैसे पहले थीं...।

जेएनयू में शोध के दौरान मुझे कवि केदारनाथ सिंह जी, प्रोफ़ेसर ओमप्रकाश सिंह, गंगा प्रसाद विमल जी का सान्निध्य मिला। मेरे स्थापत्य में इन तीनों का योगदान रहा। मूड, मिज़ाज में भिन्न होते हुए भी ये तीनों विद्यार्थियों के लिए मनीषी और हितैषी रहे। शोध के दौरान विमल जी से केवल औपचारिक रिश्ता था, लेकिन बाद के दिनों में वे गुरु से ज़्यादा अभिभावक होते चले गए। इसलिए उनसे रिश्ता मन, विचार, कर्म के साथ गहराता गया। स्वाभाविक रूप से उनसे हर दुख-सुख बाँटने, कह लेने की सहूलियत होती थी। गाँवों, क़स्बों, छोटे शहरों से पढ़ने आए विद्यार्थी अपनी तमाम दुश्वारियों, अभावों के बीच बड़े-बड़े सपने लिए विश्वविद्यालय आते हैं। उन्हें जिस मज़बूत मानसिक और भावनात्मक संबल की आवश्यकता होती है, विमल जी ऐसे विद्यार्थियों के लिए सबसे करीबी शिक्षक थे। ज़रूरतमंद विद्यार्थियों को कहीं अनुवाद का या किसी प्रकाशन में अंशकालिक लिखने-पढ़ने का काम दिला देते। विद्यार्थी जैसे उनकी खेती हों, जिसे सिंचित, पोषित करना वे अपनी ज़िम्मेदारी समझते थे। विद्यार्थियों से उनका रिश्ता बादल और धरती-सा था... निहायत सौम्य व्यक्तित्व, बेहद विनम्र, सहजता से आपूरित- जिसके निकट जाना हर तरह से भरपूर हो जाना था। विमल जी उत्तर आधुनिक दौर में मानवीयता, मनुष्यता की विरल होती पंक्ति के उन्नायक थे। वे अपनी उच्चतम अकादमिक उपलब्धियों के बावजूद अहमन्यता की जकड़ से मुक्त सरल व्यक्तित्व थे। उनके जगजाहिर परिचय के बारे में कहूँ, तो गंगा प्रसाद विमल समकालीन हिन्दी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर अकहानी आन्दोलन के प्रवर्तक, आलोचक, कवि, कथाकार, नाटककार, निबंधकार और श्रेष्ठ अनुवादक थे। साथ ही केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के निदेशक, सुप्रसिद्ध शिक्षाविद्, भारतीय भाषा केंद्र जेएनयू के अध्यक्ष और प्रोफ़ेसर थे। एक ही व्यक्ति, नाम की अनेक छवियाँ, जिसे जोड़ कर सृजनशीलता के विविधवर्णी अक्सों का एक कोलाज तैयार होता है। विमल जी जैसे विविधताओं के पर्याय थे। विमल जी एक ऐसे गुरु थे, जो किताबी दुनिया को ज़िंदगी की आँखों से पढ़ने का हुनर पैदा करते थे। उनकी समूची रचनाधर्मिता मनुष्य को सम्पूर्णता में अन्वेषित करने की अंतर्यात्रा है। उनका मानना था कि '' व्यक्ति और कृति का अटूट संबंध स्वाभाविक है। मैं आदमी और लेखक को दो अलग चीज़ नहीं मानता हूँ। आदमी से लेखक बनता है। इसलिए आदमी को जानना ज़रूरी है।'' (साप्ताहिक पत्र 'कल्पांत' वर्ष 26, 7 फरवरी 1992)

उनके लिए मनुष्य विराट वैचारिक संकल्पना और उदार संवेदनशील मन, अपार धैर्यशीलता का मुख्य पैरोकार है... इसीलिए वे अपने विद्यार्थियों को सर्वोत्तम मनुष्य के रूप में पढ़ाना, गढ़ना जानते थे। उनका समदर्शी स्वभाव सभी विद्यार्थियों को इस मुगालते में रखता कि

पूनम सिंह
शम्भु दयाल पीजी कॉलेज
ग़ाज़ियाबाद, उप्र 201001
मोबाइल- 8860673306

वही एकमात्र उनका अनन्य है। उन्हें अपना हर विद्यार्थी प्रिय था, चाहे वह बेहतर, कमतर, कामयाब, नाकामयाब, बेरोज़गार कैसा भी हो, वे उसे शिक्षकों-सा सम्मान देते, यदि वे सभा समारोह में होते तो अपने आसपास लेखक, मित्रों से परिचय कराते और मिलवाते भी थे। अपने हर विद्यार्थी को भरपूर स्नेह देना उन्हें बाकी प्राध्यापकों से बहुत अलग करता था। वे गुरु-शिष्य संबंधों में उस औपनिषदिक परंपरा के हिमायती थे, जिसमें गुरु साथ-साथ बैठें, पढ़ें और उर्ध्वगामी बनें। आलोचक के तौर पर उनका सबसे बड़ा प्रदेय है- नई कविता, नई कहानी से अकविता, अकहानी को अपने समय, संदर्भ के साथ अलगाना। अपनी कविताओं, कहानियों से उसके अंतर को प्रमाणित और उद्घाटित करना। इन दो युगधर्मों को रचना और आलोचना के स्तर पर व्याख्यायित, स्थापित करना। वे अपने आलोचना कर्म के सिद्धांतकार और विमर्शकार दोनों थे। यही कारण है कि उनकी रचनाशीलता उत्तरोत्तर पुनर्नवा होती रही। गंगा प्रसाद विमल का आलोचक के तौर में योगदान इस रुप में भी महत्त्वपूर्ण है कि वे तत्कालीन कथा आलोचना से समकालीन कथा आलोचना के बरक्स प्रतिरोधी आलोचनाधर्मिता को विकसित करना और कथा आलोचना के समूचे परिदृश्य को संतुलित, संयमित रूप से विश्लेषित करना। वे विवेक की उज्ज्वल लकीर से अतिवादिता को चीर देने में विश्वास रखते थे.. उन्होंने अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद' तथा 'समकालीन कहानी का रचना विधान'(1968) और 'हिन्दी की प्रारंभिक कहानियाँ'(2012) में प्रेमचंद्र पूर्व और परवर्ती महत्त्वपूर्ण कथाकारों के दाय को पूर्वाग्रह मुक्त होकर रेखांकित किया।

दिल्ली में उनका निवास था, लेकिन उनकी आत्मा सदैव हिमालय की प्रकृति, पर्वतों, बादलों में कीलित रही। उनके कवि मन को देवभूमि हिमाचल और उसकी सुन्दर प्रकृति ने निर्मित किया। पहाड़, पर्वतीय अंचल उनके सौंदर्यबोध के प्रेरक, कारक दोनों हैं। उनकी रचनाओं में पहाड़ अदम्य जिजीविषा, संकल्प शक्ति के पर्याय हैं, तो वही चट्टानी जीवन स्थितियाँ भी हैं। पर्वतीय स्थितियाँ स्मृतियों की उच्छृंखल श्रेणियाँ भी हैं। पहाड़ उनका संवेद्य केंद्र हैं, जिसके इर्द-गिर्द उनका मन आजीवन चकरी-सा घूमता रहा। वे उपभोक्तावादी हिंस्र दृष्टि से पर्वतीय संस्कृति और पर्यावरण, परिवेश को बचाये रखने पर बल देते हैं। 2- खंडहरों की खेती- (मैं भी जाऊँगा) (कहानी संग्रह) अपनी उदार और अतिशय विनम्रता के बावजूद वे अपने लेखकीय दायित्व और वैचारिकी के प्रति हमेशा प्रतिबद्ध रहे। वे समय, समाजऔर परिवेश के प्रति बेहद सजग लेखक थे। अकविता के प्रतिनिधि संकलन 'विजप' में संकलित उनकी कविताओं में आक्रोश, विद्रोह, नकार भाव को हम देख सकते हैं। सत्ता, प्रभुता की बारीक-सी चालाकियाँ भी उनसे ओझल नहीं है- सदियों से/ बोलते आदमी को/ चुप करने की साजिश है शांति। (3) हिंदवी साहित्यिक वेबसाइट वर्तमान वैश्विक व्यवस्था के अशांत दौर में शांति वार्ता महज़ एक छलावा है, आडम्बर है। वे वैश्विक संगठनों के कपटपूर्ण मानसिकता पर तंज़ करते हैं- सदियों से / संधियों और वार्ताओं में / शांति के निमित्त बीतता है वक्त / और अशांति / हिंसा के बहाने जगह बदलती रहती है। 4- (पृष्ठ 54, मैं वहाँ हूँ) काव्य संग्रह। उनकी रचनाएँ आधुनिक भारत की आत्मा का प्रतिबिम्ब हैं। वे बतौर लेखक, चिंतक हमारे समय के सभी बड़े प्रश्नों से जूझते हैं। फासीवाद के गहराते संकट के प्रति हमें सचेत करते रहे- और विवेक का अमानुषीपन है/ फासीवाद। /एक बिम्ब/ जो करीब करीब भयासन्न करता है 5- (कविता कोश)

उनका समग्र लेखन मानवीयता, प्रकृति, पर्यावरण, लोक संस्कृति को संरक्षित करने पर बल देता है। नई वैश्विक व्यवस्था मानवीय अस्मिता पर गहराते संकटों की सदी है, जिसकी झलक विमल जी के साहित्य में दिखाई देती है- अभिशप्त/ आदमी नहीं/ कल का वह भय है/ ढोने पड़ेंगे

जब/ भविष्य को कंकाल और मलबे के ढेर 6-(पृष्ठ 53, मैं वहाँ हूँ) काव्य संग्रह उनके अंतिम कहानी संग्रह 'मैं भी जाऊँगा' और काव्य संग्रह 'मैं वहाँ हूँ' और 'मानुषखोर' उपन्यास में नवपूँजीवाद के कारण उत्पन्न नई सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था में राजनीतिक परिदृश्य के सांघातिक प्रभाव दर्ज़ हुए हैं। उनकी चिंता भारत की कृषि संस्कृति को भूमंडलीकृत बाज़ार, सरकार की कृषिगत विरोधी नीतियों, उपभोक्तावादी ताकतों की कुदृष्टि से कैसे बचाएँ?... पर्वतीय पारिस्थितिकी को अनर्थकारी विकास परियोजनाओं, नवपूँजीवादी, उपभोक्तावादी ताकतों के गिरफ्त में जाने से कैसे रोका जा सके? जल, जंगल, ज़मीन मानवीय जीवन के संसाधन हैं। इन्हें पूँजीवादी गिद्ध दृष्टि से कैसे बचाएँ? पर्वतीय संस्कृति को कैसे अक्षुण्य रखें। वे विस्थापन से उत्पन्न सांस्कृतिक, सामाजिक संकट की चिंता करते हैं। गंगा प्रसाद विमल सामाजिक सरोकारों से जुड़े चिंतक और लेखक थे। अपने कथा साहित्य में वे एक सजग, चिंतक और जागरूक कथा नायकों की सृष्टि करते हैं। वे 'सपनों का सच' कहानी की तरह सुंदर मानवीय दुनिया की सृष्टि करना चाहते हैं। वे पहाड़ों में मनुष्यों द्वारा 'खंडहरों की खेती' करने से रोकना चाहते है।

गंगा प्रसाद विमल उन विरलतम लेखकों में से थे, जिन्होंने अपने साहित्यिक योगदान का कभी विज्ञापन नहीं किया। चुपचाप किताबें लिखते, छपते रहे। और तो और अपने लिखे, छपे का हिसाब न रखने वाले लेखक थे। उनके न रहने के बाद हिन्दी की कई बड़ी पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित हुए..वे हिसाब किताब से परे जिस किसी पत्रिका ने उनसे लेखन सामग्री माँगी उसे लिखकर थमा देते.. आज जहाँ हर लेखक अपनी पहचान की मुनादी करता फिर रहा है। वहीं विमल जी चुपचाप छप जाना पसंद करते थे। कभी अपने विद्यार्थियों, पाठकों द्वारा प्रतिक्रिया मिलने पर बस धीरे से मुस्करा कर रह जाते थे। स्मृतियों को कितना भी खँगाल लूँ - एक वाक़या भी ज़ेहन में याद नहीं आता। जब ग़लतियों पर ग़लतियाँ किये जाने के बावजूद विद्यार्थियों ने कभी उनसे डाँट खाई हो। मृदुलता उनका

गुणधर्म था... वे आजीवन मानवीय गरिमा के पक्षधर थे। इसलिए उनका अकादमिक और सामाजिक आचरण दोनों लोकतांत्रिक था।

वे बतरस के धनी थे और गल्प प्रेमी भी। उनके बतरस में सारे आस्वाद-ज्ञान, चिंतन, साहित्य, दर्शन, आलोचना सैद्धांतिकी सब कुछ मौजूद होते थे। क़िस्सागोई उनकी फितरत थी और उनका अंदाज़ेबयाँ दास्तानगोई का था, उनके बातों की गुंजलक में अनंत कहानियाँ पिरोई होती थी। हम सब मंत्रमुग्ध उन क़िस्सों के श्रोता होते। वे महज क़िस्से नहीं, उन्हीं की कहानियों, उपन्यासों के कोई न कोई प्लाट होते... वे गाहे-बगाहे इन गल्प कथाओं का सृजनात्मक उपयोग विद्यार्थियों की समझाइश के लिए भी करते थे। गंगा प्रसाद विमल जितने बेहतरीन इंसान थे, उतने ही बेहतरीन शिक्षक भी।

प्रोफ़ेसर केदारनाथ सिंह के सेवानिवृत्त होने के बाद विभाग ने हम दो विद्यार्थियों को विमल जी के निर्देशन में भेज दिया। हम दोनों को लगा, मामला बिल्कुल बंटाधार होगा। मैं नौकरी के कारण कैम्पस छोड़ चुकी थी। हमारे दूसरे अफलातून सीनियर, जिनकी पीएॅच.डी सिनॉप्सिस दो बार रिजेक्ट हो गई थी। इसके बावजूद वे अपने बनाये टॉपिक, सिनॉप्सिस पर अड़े रहे। दिक्कत यह थी सिनॉप्सिस अप्रूव हुए बिना उनको पीएॅच.डी पूरा करने के लिए एक्सटेंशन, अगले सत्र में रजिस्ट्रेशन मिलना मुश्किल था। उन्हें केवल विमल जी ही सँभाल सकते थे। विमल जी ने इस तकनीकी फाँस से न केवल उन्हें उबारा, अपितु मात्र चार सेमेस्टर के सीमित समय में उनसे पीएॅच.डी भी पूरा कराया। उनमें ग़ज़ब का अनुशासन था। मेरे साथ दूसरे तरह की स्थितियाँ थी। पीएॅच.डी के दौरान मैंने ग़ाज़ियाबाद में नौकरी ज्वाइन की। उस वक़्त दिल्ली में मेट्रो सुविधाएँ नहीं थी। नौकरी के बाद जेएनयू आना-जाना बहुत मुश्किल था।

गुरुदेव ने सबसे पहले मेरी इसी समस्या का निराकरण किया। उन्होंने कैम्पस के बजाय साहित्य अकादेमी लाइब्रेरी में प्रतिदिन एक घंटा तीन से चार बजे का समय नियत कर दिया था। वे नियमित रूप से साहित्य अकादेमी आते थे। जब नहीं आना होता था तो फ़ोन से बता भी देते थे। यह सिलसिला बदस्तूर चलता रहा। पीएॅच.डी के अंतिम सेमेस्टर के दौरान मैं गंभीर रूप से बीमार हुई। जब दिल्ली के बड़े अस्पतालों के इलाज से स्वास्थ्य लाभ नहीं हुआ, थीसिस जमा करने का समय निकट आ गया तो गुरुदेव ने सुझाव दिया- तुम इलाज में यहाँ वक़्त बर्बाद करने के बजाय अपने पति के पास जर्मनी जाओ। वहाँ तुम्हारा हेल्थ इंश्योरेंस है। तुम्हें बेहतर इलाज मिलेगा, तो तुम जल्दी ठीक जाओगी। जब लौटना तो पीएॅच.डी जमा कर देना। जब मैंने गुरुदेव से सवाल किया- क्या ऐसा संभव होगा? उन्होंने कहा- हाँ, ऐसा हो सकता है। लेकिन तुम्हें इसके लिए पहले कुलपति से अनुमति लेनी होगी। कल तुम जेएनयू आकर वाइस चांसलर, रेक्टर, डीन ऑफ स्टूडेंट से अपने मेडिकल रिपोर्ट के साथ मिलकर आवेदन देना कि तुम अपने इलाज के लिए जर्मनी में जा रही हो और वहीं रहते हुए अपना शोध प्रबंध जमा करना चाहती हो। इसके लिए तुम विश्वविद्यालय से अनुमति चाहती हो। मैं तुम्हारी अप्लीकेशन को अग्रसारित करता हूँ। इसमें अपने सारे मेडिकल रिपोर्ट के लगा देना। मैं सब जगह से मिलकर अपना काम पूरा करके भारतीय भाषा केंद्र लौटी तो गुरुदेव मेरी थीसिस का प्रथम पृष्ठ टाइप करवाकर इंतज़ार कर रहे थे। उन्होंने कहा- तुम हस्ताक्षर करो। जर्मनी में स्वस्थ होकर चैप्टर लिखकर जल्दी-जल्दी भेजो। रीता टाइपिंग, बाइडिंग करवा लेगी। (मेरी छोटी बहन रीता वहीं से एमए कर रही थी) मैं भी उसे बताता रहूँगा। गुरुदेव की वजह से में पीएॅच.डी थीसिस नियत तिथि 21 जुलाई को जमा हुई। उन्होंने ईमेल से मुझे बधाई भी दी। क्या ये सब इतना आसान होता यदि गुरुदेव नहीं होते?

वे आजीवन अपने विद्यार्थियों के संपर्क में बने रहने वाले प्राध्यापक थे। प्राध्यापकीय नौकरी छोड़ने के बाद हम लोग न्यूयॉर्क में रहने लगे थे। उन्होंने अपने सातवें विश्व सम्मेलन में न्यूयॉर्क आने की सूचना दी। हम लोग उनसे मिलने न्यूयॉर्क के होटल मिलेनियम गए। वे हम लोगों को देखकर ख़ुश हुए। सबसे ज़्यादा मेरी बेटी को देखकर ख़ुश हुए। वे अपने विद्यार्थियों से ही नहीं; बल्कि उसके परिवार से भी जुड़े रहें..ये अनायास नहीं- हमारी स्मृतियों के गवाक्ष गुरुदेव के आवाजाही के लिए हमेशा खुले हैं.. जब कभी किसी साहित्यिक विमर्श, सिद्धांत को समझने में या कुछ लिखने में मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है तो गुरुदेव बहुत याद आते हैं। हमारी किसी ऐसी अड़चन को दूर करने वाले वे सर्वसुलभ विद्वान थे।

उनसे मेरी अंतिम भेंट 17 नवंबर, 2019 को अमर भारती साहित्यिक संस्थान ग़ाज़ियाबाद के वार्षिक सम्मान समारोह में हुई थी। इस समारोह में विमल जी को भी सम्मानित किया गया था। उस दिन का उनका वक्तव्य, उद्बोधन कमाल का था। मूल बात बस इतनी सी याद है कि 'साहित्य को सत्ता के प्रतिपक्ष में खड़े रहने की आवश्यकता हर देश-काल में होती है। लेकिन उस वक्त सबसे ज़्यादा जब कोई राष्ट्र अपना विवेक खो बैठे।' उन्होंने किसी दस साल के जापानी बाल कथाकार की कहानी का सार सुनाते हुए कहा था कि ये नन्हा कथाकार युद्ध की विभीषिका को, अराजक होते वैश्विक नेतृत्व की चिंता करता है। मैं इस बच्चे, इस नन्हें लेखक से सबक लेता हूँ। मुझे ही क्यों? आप सभी को वैश्विक, सामाजिक, मानवीय सरोकारों के बड़े प्रश्नों, चुनौतियों से जूझना चाहिए। हमें आने वाली पीढ़ी को सत्य के पक्ष में खड़े रहने का नैतिक साहस देना होगा।' सम्मान समारोह के बाद हम लोग उन्हें डिनर के लिए कहते रह गए, लेकिन वे यही कहते रहे- पत्नी के साथ डिनर करूँगा। क्या पता था ये उनसे अंतिम मुलाकात थी। आज भी मन कस्तूरी गंध सा उनकी स्मृतियों के पीछे भागता है। पढ़ने के लिए उनकी किताबें ख़ूब मिल जाएँगी। जो नहीं मिलेगा- वह गुरुदेव का संग,साथ और आर्शीवाद।

गुरुदेव के सुरभित कर्मों, स्मृतियों को याद करूँ तो ज़ेहन में ये चंद सतरें तैरने लगती हैं- हर जगह इत्र ही नहीं महका करते, कभी-कभी शख़्सियत भी ख़ुशबू दे जाती है।

000

व्यंग्य

फूड इंस्पेक्टर की दावत

हनुमान मुक्त

फूड इंस्पेक्टर जैन की शादी की वर्षगाँठ थी। खाने के पंडाल में सैकड़ों तरह की स्टाल लगी हुई थी। हल्का-हल्का कर्ण प्रिय संगीत बज रहा था। पार्टी अपने अंतिम दौर में थी कि अचानक रंग में भंग पड़ गया। सी. एम. एच. ओ. साहब का फ़ोन आया कि कई लोगों को उल्टी हो रही है और वे हॉस्पिटल में पहुँच गए हैं। बॉस का फ़ोन आते ही जैन साहब के शरीर में झुरझुरी सी आ गई। हाथ-पैर फूल गए। इस पार्टी का आयोजन उन्होंने बॉस से छुपाकर किया था, आने वाले उपहारों से हिस्सा बचाने के लिए। हर छह माह में वे इस तरह का आयोजन करते रहते थे।

जैन साहब तुरन्त हॉस्पिटल पहुँचे। देखकर हतप्रभ रह गए। यहाँ वे ही लोग भर्ती थे जो अभी उनकी दावत में से गए थे।

आँखों में खून उतर आया उनके। जब सबसे पहले ही कह दिया था कि इस दावत में सभी सामान शुद्ध काम में लेना है फिर ऐसा कैसे हो गया। सिंथेटिक दूध, मावा इत्यादि का प्रयोग किसी भी हालत में यहाँ नहीं किया जाएगा। ऐसा सबको पहले ही ताकीद कर दिया था फिर ऐसी हिमाकत करने की ज़रूरत किसने कर दी। तुरंत बॉस के निर्देशानुसार दावत वाले स्थान पर पहुँचे। लाल-पीले हो रहे थे वे। आते ही उन्होंने बरसना शुरू कर दिया।

"दूध किस-किसके यहाँ से आया?" सभी दूध वाले हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

"हुज़ूर दूध हमारे यहाँ से आया था।"

"दूध कैसा था। सिंथेटिक?"

"नहीं हुज़ूर! बिल्कुल शुद्ध दूध था। हमारे सामने भैंस का निकलवा कर लाए थे। आज तो बिल्कुल मिलावट नहीं की थी। यूरिया भी नहीं मिलाया था।"

"मावा किस हलवाई के यहाँ से आया?"

"हुज़ूर, हमारे यहाँ से। सौ टंच शुद्ध था। बिल्कुल भी अरारोट, आलू, ऑयल मिक्स नहीं किया था।"

"घी के पीपे किसके यहाँ से आए?"

व्यापारी हाज़िर था। बोला,"साहब मिलावट करके मरना था क्या। शुद्ध घी था। पाम ऑयल, एसेन्स से बने पीपे तो रखे हैं, जो आपको पहले दिखाए थे। साहब विश्वास नहीं हो तो गिनकर देख लो। ये उतने ही हैं जितने परसों की काउण्टिंग के समय थे। तब से लेकर अब तक तो आपके यहाँ लग ही रहे हैं।"

"हो न हो मसालों में मिलावट हो?" पंसारी पन्नालाल हाज़िर हुए।

"कसम पोथी की साहब। भगवान् झूठ न बुलाए। आपके यहाँ आया सब मसाला मेरे घर से आया था। घर पर ही साफ करके, कूट छनवा कर यहाँ मँगाया था। रिक्शे वाले से पूछ लो यह मसाला घर से लाया है या दुकान से। बुरादा, भूसा, गोबर मिला हुआ धनिया, ईंट पाउडर और रंग मिली हुई मिर्च, सेलम पाउडर और रंग मिली हुई हल्दी, बेकार पत्तों को मिलाकर पिसवाया हुआ गरम मसाला सब कुछ दुकान पर ही बेचता हूँ।"

जैन साहब ने सभी को बुलाकर उनसे पूछा, लेकिन सबका एक ही जवाब था। सब सामान शुद्ध काम में लिया गया है। जैन साहब के समझ नहीं आ रहा था, जब सब सामान शुद्ध था तो फिर ऐसा कैसा हो गया? शुद्ध सामान खाने से लोग बीमार कैसे पड़ गए? वे मन ही मन उधेड़बुन में थे।

तभी हलवाई बोला, "ऐसा लगता है साहब इन लोगों ने कभी शुद्ध खाना नहीं खाया। इन्हें मिलावटी खाने की आदत पड़ी हुई है, शरीर एक साथ इतनी सारी शुद्ध चीज़ों को हज़म नहीं कर पाया। अनुकूलन में समय लगता है। आप चाहे तो सबके सैंपल भर लें और उन्हें जाँच के लिए भिजवा दें।"

सुनकर जैन साहब के चेहरे पर मुस्कराहट आ गई। उन्होंने सी.एम.एच.ओ साहब को फ़ोन पर कह दिया, सब कुछ ठीक है। दावत वाले स्थान से सैंपल ले लिए हैं।

000

हनुमान मुक्त
मुक्तायन, 93, कांति नगर, मुख्य डाकघर के पीछे, गंगापुर सिटी- 322201
जिला- सवाई माधोपुर (राजस्थान)
मोबाइल- 9413503841

व्यंग्य

ख़बर की ख़बर

रेखा शाह आरबी

हमारा देश खिलाने-पिलाने वालों का देश माना जाता है। भूखे को भोजन करवाना या शांति से करने देना हम लोगों को बचपन से घुट्टी के तरह घोंट कर पिलाया जाता है। किसी खाते हुए इंसान के खाने के बीच में व्यवधान डालना बेहद बैड मैनर्स माना जाता है और उसकी रोटी या उसके थाली को निहारना यह तो नज़र लगाने वाली बात मानी जाती है। यह भी एक प्रताड़ना की श्रेणी में ही आना चाहिए, इस देश में जब सभी खा रहे हैं तो कोई आपत्ति नहीं तो किसी एक के खाने पर ही क्या आपत्ति करना, जिसकी जैसी पाचन शक्ति, वह वैसा खाएगा बल्कि खा रहा है।

हमारे देश के बुद्धू बक्से से दिनभर फालतू की ख़बरें और प्रवचन झाड़ने वाले ख़बर नवीसों के दिमाग़ पर आजकल ताले पड़ चुके हैं। कहा जाता है खाते समय कुत्ते को भी परेशान नहीं किया जाता है बल्कि उसे भी भरपेट खाने तक परेशान नहीं किया जाता है। खाने के बाद भले उसको दुत्कार दिया जाता है लेकिन यह ख़बर नवीस आजकल हद ही कर रहे हैं जाने कहाँ-कहाँ से ख़बरें निकालकर लाने वाले यह ख़बर नवीस बंदीगृह के खाते हुए क़ैदियों की प्लेट से ख़बर निकाल ला रहे हैं इसके लिए इन्हें ज़रूर ऑस्कर अवार्ड से या नोबेल पुरस्कार से सम्मानित करना चाहिए, आख़िर देश की सबसे बड़ी ख़बर है सारी अर्थव्यवस्था इस ख़बर के द्वारा चलनी है तभी तो न्यूज़ चैनलों के प्राइम टाइम पर यह ख़बर दिखाया जा रहा है जनता को यह समझना चाहिए। जो समझती बिल्कुल नहीं है और इन लोगों को मेहनत करना पड़ता है।

तो यह न्यूज़ चैनल वाले ऐन केन प्रकारेण जिस भी तरह एक दिन एक बंदे के जेल में से.. लगे उसके खाने का लाइव दर्शन करवाने, "जहाँ घाम न बतास वहाँ क्या मधुमास" अब बताइए भला एक तो जेल में बंद दुखी आदमी दूसरे उसके खाने पर भी हज़ार तरह के सवाल उठाने वाले यह न्यूज़ चैनल... इन पत्रकारों की चलती तो यह प्लेट में से गाजर के स्लाइस उठा-उठा कर जनता के मुँह में चखा-चखा कर दिखाते- देखिए इस इंसान को कैसे यह लाल लाल एकदम ताज़ी-ताज़ी गाजर का स्वाद जेल के अंदर लूट रहा है जिस देश में देश की जनता को सड़ी गली बासी रोटी खाने के लाले पड़े हुए हैं उस देश में सरकारी मेहमान नवाज़ी में ताज़े-ताज़े गाजर और ड्राई फूड खिलाने का सबसे घोर अपराध हो रहा है; जो गैरक़ानूनी है क़ानूनन बहुत बड़ा जुर्म है इस पर सरकार को तुरंत एक्शन लेना चाहिए।

लेकिन रुकिए-रुकिए वह लोग ड्राई फ्रूट्स नहीं बोलते.. वे लोग काजू किशमिश बोलते .. क्योंकि बात हर व्यक्ति तक पहुँचानी है और यह इंग्लिश और हिंग्लिश का झमेला भी अलग चीज़ है जिनको इंग्लिश समझ में आती है वह तो सब पहले से ही समझ कर ही इंग्लिश समझने लायक बने हैं तभी तो सब समझते हैं और जिनको हिंग्लिश समझ में आती है असल बात तो उनके ही समझने की है, उनमें से कितने तो ड्राई फ्रूट्स सुनकर कंफ्यूजिया जाते होंगे। इसलिए कम से कम अनपढ़ गँवार जनता काजू किशमिश का नाम तो सुनी ही होगी भले खाने को नसीब न हुआ हो कभी... लेकिन सुना तो ग़रीब से ग़रीब ने भी होगा और सुनकर जीभ पर पानी आ जाए तो बात बहुत देर तक याद रहती अच्छे से याद रहेगा।

कुल मिलाकर जनता को समाचार चैनलों का एहसानमंद होना चाहिए जिनके द्वारा इतने महान् न्यूज़ प्रसारित किए जाते हैं...आख़िर वह भी क्या करें.. देश में कोई समस्या तो है नहीं सारी समस्याएँ तो उड़न छू हो चुकी है सब को रोज़गार मिल चुका है.. ग़रीबी हवा हवाई हो चुकी है.. सारी सड़कें एकदम फिल्मी अभिनेत्रियों के गाल जैसी चिकनी हो चुकी हैं। बहू बेटियाँ सड़क पर एकदम सुरक्षित हैं। भ्रष्टाचार ख़त्म हो चुका है। आज आम आदमी को इंसाफ उसके दरवाज़े पर ही मिल जाता है। स्वास्थ्य व्यवस्था वर्ल्ड क्लास है। देश में भूखे भिखमंगो का नाम निशान नहीं है... इन सब चीज़ों की अनुपस्थिति में न्यूज़ चैनल वालों को खुराफात तो सूझना ही है। थाली के खाने पर नज़र लगाना ही है। बस इतना रहम करें यह न्यूज़ चैनल वाले कहीं आम जनता की थाली पर नज़र न लगा दें.. पहले से ही उस थाली में ज़्यादा कुछ बचा नहीं है और नज़र लगने के बाद जो बचा-खुचा है वह भी अपच न कर दे।

000

रेखा शाह आरबी
भीमसेन, गिरजा इलेक्ट्रॉनिक्स -काशीपुर (हनुमान मंदिर के पास, बलिया -बैरिया हाईवे) जिला, पोस्ट-बलिया 277001 उप्र
मोबाइल- 8736863697

कैसे -कैसे लोग

कादम्बरी मेहरा

(पिछले अंक में यूके की लेखिका कादम्बरी मेहरा ने अपनी भारत यात्रा के दौरान हुए अनुभवों को कैसे-कैसे लोग संस्मरण के अंतर्गत लिखा था। ट्रेन से जुड़े अनुभव साझा किये थे। दूसरी और अंतिम किश्त में लेखिका अभी उसी ट्रेन में बैठीं हैं और अब आगे के किस्से सुने - संपादक)

कादम्बरी मेहरा
35 द एवेन्यू, कीम, सुर्रे, SM 27 QAUK
मोबाइल- 447424736819
ईमेल- kadamehra@googlemail.com

पंजाब हावड़ा मेल अपने निर्धारित समय से शाम को वाराणसी पहुँच गयी। मैंने अपने तीनों अदद सामन चेक किये। सीट से खड़ी होकर नीचे-ऊपर नज़र डाली। सब ठीक था। स्टेशन से बाहर आकर एक रिक्शावाले को अपना स्थान बताया। वह एकदम अनभिज्ञ था। ज़रा सकुचा कर बोला कि सड़क का नाम आदि नहीं जानता अभी। गाँव से नया आया है। पर निशानी बताने से पहुँचा देगा। मैंने बताया कीना बाबा के मंदिर ले चलोगे। वह हाथ जोड़कर कमर से झुक गया और उसी दिशा में दंडवत् आदि करके, गद्‌गद् कंठ, मेरा सामान पैताने सजाकर, भाव विभोर हो रहा। बरसों के बाद रिक्शा में चढ़ी तो संज्ञान हुआ कि उम्र चढ़ गई है। अपनी दादी जी की तरह तीन बार आगे-पीछे हिलने के बाद कमर में सही हरकत हुई और मैं उचक कर बैठ गई। महज़ दस मिनट में घर आ गया। रिक्शावाले को पैसे चुकाए तो उसके पास छुट्टा नहीं था पचास के नोट का। न मेरे पास छोटा नोट। अत: उसको पचास रुपये देकर विदा किया।

माँ के गले लग कर शांति मिली। बहन की परेशानियाँ उसके मुखमण्डल पर व्याप रही थीं। जीजा जी हृदय का ट्रिपल बाई पास करवाकर अभी पंद्रह दिन पहले दिल्ली से लौटे थे। बहन दौड़ी फिर रही थी। मुझको देखकर खिल उठी। अगले दिन अमेरिका से हमारी तीसरी बहन की बेटी आ गई। मिलने आने वालों की आवा-जाही बढ़ गई। बातें। खाना पीना। बनारसी मिठाई नमकीन। ले जाने की फ़ेहरिस्तें। मेरी बहन सब ठन्डे दिमाग़ से भुगताती रही। मैंने नहाने के

कपड़ों के अलावा और कुछ नहीं निकाला होल्डाल से। पर्स एक ओर उपेक्षित पड़ा रहा। तीसरे दिन अमेरिका की सवारी विदा होनेवाली थी। उसका नेकलेस माँ ने उसको दिया। बहन ने बाज़ार जाना था अत: मुझको भी साथ लिया। मैंने पर्स उठाया। चार पाँच सौ रुपये उसकी जेब में पड़े थे। सब आराम से खर्च डाले। घर आकर बहन से कहा कि मेरे पौंड बदलवा दे अपने बैंक से। कुछ साड़ियाँ ले लूँगी।

अब जो लाल वॉलेट देखा तो वह कहीं न मिला। सब ढूँढ़ा पर नहीं। उसमें एक हज़ार पाउंड, मेरा पासपोर्ट, और वापसी की टिकट रखी थी। पल भर में ऊपर-नीचे हो गई। लंदन फ़ोन किया। पासपोर्ट का नंबर आदि पता करवाया। जीजा जी बेहद नाराज़ हुए। साफ-साफ मेरी लापरवाही थी। पासपोर्ट और टिकट संग रखने की कोई ज़रूरत नहीं थी। दूसरी ग़लती यह हुई कि ज़िप वाले बैग में यह सब रखना ही नहीं था। और तीसरी महान् ग़लती टूटियर के डिब्बे में बैठना ही नहीं था।

मैं कैसे बताती कि तीनों मेरी ग़लतियाँ नहीं थीं। आते ही मुझको मजबूर किया कि मैं माँ को लेकर आऊँ जैसे ही भाई को पता चला कि मेरा साड़ियाँ खरीदने का इरादा है। माँ अलग शर्मिन्दा। और मुझे यह क्या पता था कि ए सी में भी पहला दर्जा और दूसरा दर्जा होता है। फाइन देने की बात सुनी तो और डाँटा। कहा कि पल्ला झाड़ लेना था और पता लिखवा कर दे देना था कि यहाँ से पैसे मँगवा लीजिएगा ऑफ़िस का नोटिस भेजकर।

पर हम प्रवासियों को इन हथकंडों का क्या पता ? मैंने कहा कि ज़िप तो मैंने ख़ुद बंद की थी और पर्स गोदी में सिमटा हुआ था। वह बोले, "पर जब आप उठीं तो वह खुला हुआ था। कैसे ? आप भूल गईं तभी न।"

क्या बहस करती।

बहरहाल, लंदन से सारी पड़ताल करके बेटे ने फ़ोन पर बताया कि घटना की पुलिस रिपोर्ट लिखवा लो और जल्दी से जल्दी दिल्ली पहुँचो। उसी दम मैंने कहा कि चलो पुलिस स्टेशन ऍफ़ आई आर लिखवाने। सुनते ही जीजा जी ने मना कर दिया। बीमारी की हालत। उनको और तकलीफ क्यों कर देती। वह कहीं आ-जा भी नहीं सकते थे। बहन को भी उनका पूरा ध्यान रखना था। माँ की आँखों में भी सहमति देखी अत: उसी दिन दोपहर की गाड़ी की दो टिकटें करवाईं। और मैं वापिस लखनऊ आ गई। पास में अधेला नहीं। टिकट माँ ने खरीदी थी। ख़ैर। अगले दिन उन्होंने अपने खाते से दस हज़ार निकलवाए, मुझे दिया। भाई ने भी पाँच हज़ार दिए। दिल्ली में तो कोई उम्मीद नहीं थी। पुलिस के दफ्तर जाने लगी तो भाई ने कहा कि उसने इंतज़ाम किया है। अभी एक अफ़सर घर आकर रिपोर्ट लिखवाकर ले जाएगा। मेरा ब्लड प्रेशर बहुत ऊपर चला गया था। नींबू का शरबत पीकर सो गई। शाम तक सोई रही। शाम को जब भाई घर आया और पूछा तो बताया कि न कोई आया न गया। अगले दिन उसने डी एस पी को फ़ोन किया। आश्वासन तो ख़ूब दिया उसने। मीठी-मीठी करके पूरी कहानी भी उगलवा ली। मगर काम के नाम इल्ले-इल्ले। उसके चक्कर में एक-दो दिन और निकल गए। यह वही दोस्त था जिसने अपने मकान का पूरा नक्शा मुफ्त मेरे भाई से बनवाया था। भाई आर्किटेक्ट था। किस तरह सरकारी अफ़सर अपने काम सरकारी समय और सरकारी जान-पहचान से फ़ायदा उठाकर करवाते हैं यह उसकी मिसाल था।

हारकर चौथे दिन मेरी तबियत कुछ संभली तो मैं ख़ुद रिक्शा में बैठी और पूछती ताछती लखनऊ रेलवे स्टेशन पर बने पुलिस स्टेशन पर पहुँची क्योंकि रेल में हुई चोरी की रिपोर्ट वहीं लिखवाई जाएगी।

अगली सुबह मैं ठीक दस बजे रेलवे स्टेशन पहुँच गई। ढूँढ़ते पहुँचते आधा घंटा और लगा। एक दरवाज़े पर अध्यक्ष जी का नाम पट लगा हुआ था मगर वहाँ ताला बंद था। साथ वाले बड़े कमरे में कुछ वर्दीधारी बैठे थे। सफ़ेद ऑर्गन्डी की साड़ी और काले चश्मे वाली स्मार्ट स्त्री को देखकर सबको अजीब सी हिचक लगी होगी। वर्दी के अतिरिक्त उनका हुलिया एकदम रामू कट था। मूँछों पर बहुत ज़ोर दिया गया था। भाषा में शब्द कम और अपशब्द अधिक। मुझको देखकर वह चौकन्ने हो गए। दो मिनट तक निश्चय नहीं कर पाए की उनमें से कौन बोले। आख़िर एक ने पूछा। क्या बात है। मैंने कहा ऍफ़ आई आर दर्ज करवानी है। पर्स खो गया है। वह ज़रा नरमी से बोला यहाँ यह सब नहीं होता है। बाहर थाने में पुलिस के पास लिखवाओ। मैंने डी एस पी का नाम लेकर समझाया की पर्स क्योंकि रेल में खोया है अत: इसकी रिपोर्ट रेलवे पुलिस ही लिखेगी। अब उसने बैठने को कहा। चाय आदि के जूठे गिलास, धूल की परत वाले सामान को देखते हुए मैंने पानी नहीं माँगा। गला सूख रहा था। गर्मी तेज़ थी। सारा क़िस्सा दोहराया। तो उसने ध्यान से सुना मगर बात ख़तम होते ही बोला कि आप हमारे सीनियर को बता दीजिये। वह आपका काम देख लेंगे।

उसी समय एक अन्य सिपाही आया था। सीनियर था या जूनियर, मुझको उसने कड़ी नज़रों से देखा जैसे मैं कोई अपराधी होऊँ। जब उसे दुबारा से सुनाने लगी तो उसने अपने एक और साथी से कहा की इनको कागज़ ला दो और इनका स्टेटमेंट लिखवा लो। मैंने अपना हाथ का लिखा पन्ना पर्स में से निकालकर उसको दिया, तो उसने उपेक्षा से कहा कि फिर से रजिस्टर में लिखना होगा। तभी शोर गुल करता एक लड़कों का झुण्ड अंदर दाखिल हुआ। दो सिपाही उनको पकड़ लाए थे। वह लोग डॉक्स में खड़ी गाड़ियों को ग्राफिटी से गंदा कर रहे थे। वह रो -रोकर माफियाँ माँग रहे थे मगर पुलिसकर्मी उनको पीटे जा रहे थे वह भी डंडे से। मुर्दा से बैठे अधिकारी वर्ग में भी कुछ हरकत सी हुई। करीब दस व्यक्ति इस काण्ड में जुड़ गए। मेरी अर्ज़ी की बात ही सुनी अनसुनी कर दी गई। बच्चों को पिटते देखकर मेरी आत्मा क्रंदन कर रही थी। मरियल सा प्रतिवाद भी किया मैंने तो पहला वाला अधिकारी हँसा और बोला आपको इनसे सहानुभूति है तो शिकायत क्यों लिखवाने आई हैं। मैंने तंग होकर पूछा अर्ज़ी कहाँ लिखवानी है। रजिस्टर किसके पास है। उसने मेरे तेवर देखे तो कुछ ध्यान दिया। अभी आता है। चाय लेने गया है। मेरी नज़र एक लंबे चौड़े श्यामपट पर अटक गई। बिशेश्वर

प्रसाद सिंह, अर्जुन सिंह, सूर्या नारायण सिंह, परम प्रताप सिंह। शक्ति सिंह, उज्ज्वल सिंह - -आदि आदि। करीब बीस नाम क्षत्रिय जाती के रण बाँकुरों के सुनहरे रंग में चमक रहे थे। यह सब उस दिन की ड्यूटी पर आनेवालों के नाम थे। अध्यक्ष जी का नाम लाल स्याही से सबसे ऊपर लिखा था। मगर वह कोई दीक्षित जी थे। नाम के आगे कई अक्षरों की सूचिका भी थी। यह क्षत्रिय नहीं थे मगर अभी बारह से ऊपर समय हो चुका था और वह अपने ताला जड़ित स्थान पर नहीं विराजे थे।

चाय आई। गिलास यथास्थान अधिकारियों को पहुँचाए गए। तब वह मरियल-सा कारकुन मुझको इशारे से एक स्क्रीन के दूसरी ओर आने के लिए बुलाने लगा। गई। उसके सामने बैठ गई। जितना वह देखने में मरियल था उतनी ही उसकी आवाज़ में दम था। मैंने रजिस्टर देखा। गन्दा पिंदा, कोने मुड़े हुए, कागज़ इतना पतला कि पिछले पन्ने की इबारत पढ़ लो। मैंने अपना लिखा कागज़ निकाला तो वह शरीफ बन्दा बोला कि दुबारा मेहनत मत कीजिये। साब आ जाएँ तो इसी पर साइन करवा लीजिए। हम इसे रजिस्टर में चिपका लेंगे। अंदर मेरे सामने वह चार-पाँच लड़के मार खाकर हँस बोल रहे थे। सिपाही एक झाड़ू का बण्डल उठा लाया और उनको उसी ऑफ़िस की सफाई का दंड दिया।

करीब एक बजे अध्यक्ष महोदय आ गए। जगह दुरुस्त लगने लगी, उन्होंने इस कमरे में आने की ज़हमत नहीं उठाई। उनके साथ जो एक सफ़ेद वर्दी और हैट वाला अर्दली आया था उसने ताला खोला और वह अपनी कुर्सी पर विराजे। मेरा क़िस्सा सुना, दो-चार सवाल पूछे, मसलन क्या किसी ने पर्स छीना था, क्या आपको लगा की ज़िप खोली गई है वगैरह। बहरहाल मामला ब्रिटिश पासपोर्ट के खो जाने का था अत: उन्होंने मेरे लिखे कागज़ पर हस्ताक्षर कर दिया। अंग्रेज़ी में उनको धन्यवाद देते हुए मैंने उसी आदमी से मोहर लगवाई। उसने वही कागज़ मुझको पकड़ा दिया। और मैं राम-राम करती घर आई।

उसी दिन सामान समेटा। सबसे भेंट की और किसी प्रकार ट्रैन की सीट का बंदोबस्त करवा कर अगले दो दिन बाद दिल्ली आ गई। स्टेशन से तिपहिया लिया और अपने आप ननद के घर पहुँच गई। वह देखकर चौंक गई। अरे आपने तो अभी माँ के घर रहना था। आप इतनी जल्दी कैसे ? मैंने कुछ नहीं कहा। घबराहट के आँसू गले में घुटक कर मैंने बस इतना कहा कि पासपोर्ट खो गया। उस घर का नौकर मेरी बहुत इज़्ज़त करता था। नाश्ता आदि ले आया। लगा कि पैरों के नीचे ज़मीन स्थिर है। तैयार होकर मैंने ननद से कहा कि मुझे ब्रिटिश दूतावास में जाना होगा। अगर उसके पति मेरे संग चलें तो ठीक रहेगा। उसने छूटते ही कहा उन्होंने क्या आपका ठेका ले रखा है। आप उनको अपना नौकर समझती हैं। मेरा मालिक है वह। मैंने मिमियाते हुए कहा कि मैं टैक्सी करके जाऊँगी पर कोई तो मेरे संग चले। शहर तो अनजाना है मेरे लिए। मगर उसके तेवर नहीं बदले। भाई के रहते वह सदा मीठी-मीठी बातें करती थी। परन्तु उसके भाई तो लंदन चले गए वापिस। अब तू कौन और मैं कौन। मैं कितने उपहार उसको दिलाती थी। जब भी कहीं जाना होता मैं ही उसकी गाड़ी में पेट्रोल डलवाती थी। हर बार पूरा टैंक। मगर यह तो मरे हुए को मारने वाली चाल चल रही थी। शरमा-शरमी नई बहू को ही फ़ोन किया। वह झट आ गई। चार दिन हम उत्तरी दिल्ली से दक्षिणी दिल्ली नापते रहे। आख़िरकार नया पासपोर्ट मिल गया। देनेवाले अंग्रेज़ अधिकारी ने समझाया कि मुझे उस पर वीसा लगवाना पड़ेगा। अभी मेरे वापिस जाने में चार दिन बाकी थे। एयरपोर्ट पर जब वह मेरी चेकिंग करेंगे तो इस नए पासपोर्ट पर भारत में इन चार छह दिनों का वीसा नहीं होगा। मुझे बड़ी सज़ा भी हो सकती है।

वीसा ऑफ़िस का पता उसी व्यक्ति ने मुझको लिखकर दे दिया। अब मैं बहू को लेकर सीधी वहीं पहुँच गई। दोपहर के दो बजे थे। बारी आते-आते तीन बज गए। जिस अधिकारी से पाला पड़ा वह बहुत तंग आ चुका था दिन भर की चख-चख से। उसने पूरी कहानी भी नहीं सुनी और वापिस भेज दिया कि इसमें लंबा समय लगेगा और उसके घर जाने से पहले नहीं हो पाएगा अत: मुझको अगले दिन आने के लिए कहा। अगले दिन हम ठीक दस बजे वहाँ हाज़िर हो गए थे मगर उन साहब को आने में एक घंटे की देर लगी। हमसे पहले भी अनेक प्रार्थी पहुँच चुके थे अत: हमें लंबा इंतज़ार फिर भी करना पड़ा। अधिकारी जी जल्दी-जल्दी अपना काम निपटाने लगे।

मेरी साथ वाली कुर्सी पर एक बहुत कम उम्र की लड़की बैठी थी जो बार-बार अपनी आँखें पोंछ रही थी। मुझसे रहा नहीं गया। उसने बताया कि वह लंदन से आई थी भारत घूमने। मगर उसका पासपोर्ट खो गया है। उसके संगी-साथी सभी उत्तर की ओर लद्दाख आदि देखने चले गए हैं मगर वह नहीं जा सकती, उसको अपने भारत आने का प्रमाण देकर एम्बेसी से दूसरा पासपोर्ट बनवाना है। वह एकदम अकेली है और उसकी उम्र केवल 19 वर्ष है। मेरी सहानुभूति से वह और पिघल गई। मैंने पूछ ही तो लिया कि कैसे खोया? कहाँ थे तुम लोग? आदि। उसने बताया कि वह लोग बनारस गए थे। अमेठी के स्टेशन पर वह लोग चाय पीने उतरे थे। तभी लगता है कि कुछ हुआ। उसको भीड़ का धक्का लगा था। मैंने तपाक से पूछा क्या उसमें बच्चे भी थे ? वह विस्फारित आँखों से मुझको ताकती हुई बोली 'हाँ'। तुमको कब पता चला ? मैंने पूछा। वह बोली कि दो दिन बाद। ठीक मेरे जैसा ही हादसा ! इतना साम्य कैसे हो सकता है। अमेठी पर खड़े रेल के टिकट चेकर की उपहास भरी गप्पाष्ठी मेरी आँखों में कौंध गई। पर मैं क्या कोई स्पष्ट निष्कर्ष निकालने की स्थिति में थी ?

मेरी बारी आते-आते एक बज गया। शुक्र यह हुआ कि अधिकारी जी ने बुला लिया। अधिकांश लोग लंच टाइम जानकार चले गए थे चाय पीने। अब उन्होंने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। उनको यह दिखाना था कि मैं झूठ बोल रही हूँ। किस्मत से मेरे हाथ में नया पासपोर्ट था। दिखा दिया। पर वह बोले कि ब्रिटिश लोगों का क्या। उन्होंने अपनी खाना पूरी की और आपसे पिंड छुड़ाया। मैंने बताया कि उस सामने वाली लड़की के साथ भी ऐसा ही हुआ

है। वह चिल्लाकर बोला। तो आपने भी वही कहानी गढ़ ली ?

मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। चेहरे पर बारह बज गए। बहूरानी ने प्यार से उनको समझाया कि मम्मी बहुत परेशान हैं और उनका ब्लड प्रेशर बहुत ऊपर चल रहा है। भला वह झूठ क्यों बोलेंगी। हमारे पास तो ऍफ़ आई आर भी है।

वह थोड़ा-सा झुके। कहने लगे आपको नहीं पता कि बाहर से आनेवालों का क्या फंडा है। यह लोग यहाँ ड्रग्स पीने आते हैं। ख़ासकर बनारस, हरिद्वार और ऋषिकेश आदि स्थानों पर। जब पास के पैसे चुक जाते हैं तब अपना पासपोर्ट बेच देते हैं जिस पर छह महीने का वीसा लगा होता है क्योंकि इनको छह महीने तक का मुफ्त बिना नौकरी का भत्ता मिलता है अपनी सरकार से। आप देखिये यहाँ इस कमरे में करीब तीस लोग बैठे हैं, आधे तो सही हैं मगर अगर आधे भी हम निपटाएँ तो क्या भारत में लाखों का यही कारोबार चल रहा है ? लंदन के पासपोर्ट का दाम चोर बाज़ार में दो से पाँच लाख है। आपको करीब दस-बारह दिन हो गए हैं पासपोर्ट खोये हुए। अब तक तो उसकी सर्जरी करके कोई अन्य स्त्री ले उड़ी होगी। क्या पता कौन सी स्टेट से यह काला धंधा चल रहा है।

उसने आगे की कार्यवाही की। एक फॉर्म भरवाया। जिस पर मेरे भारत आने की तारीख पूछी गई थी। बोर्डिंग पास खो चुका था। तबियत सूख रही थी। सिर भारी था। बहुत स्मृति पर ज़ोर डाला तो तारीख बताई। उसने एक रजिस्टर मँगवाया।

चपरासी उठा लाया और मेज़ पर पटक दिया। यह कंप्यूटर से निकाली हुई शीटें थीं जिन पर भारत के अंदर दाखिल होनेवाली उड़ानों के नाम समय आदि लिखे हुए थे। हरेक उड़ान के नीचे उसमें बैठे मुसाफिरों की तालिका थी। हमारी उड़ान का नाम आदि मेरे पास नहीं था। यह बताया कि हम आधे रास्ते अदेन पर उतरे थे और यह एक मुस्लिम देश की प्राइवेट उड़ान थी। इसमें बैठे अधिकांश लोग सिख निरंकारी समुदाय से थे। किन परिस्थितियों में मैं इस जहाज़ में आने को बाध्य हुई थी यह भी बताना पड़ा। बेटे की शादी का हवाला सुनकर वह काफी ध्यान देने लगा। तो यह बहू आपने पसंद की है ? मैंने अपना संयम बनाये रखा। और कोई चारा नहीं था उसके अधिकांश प्रश्न मुद्दे से कोई संबंध नहीं रखते थे। ख़ैर उसने फ्लाइट ढूँढ़ ली। नामों की तालिका में मेरा नाम ही नहीं था। अब वह फिर भड़क गया। फिर उसका लहज़ा बदल गया। मैंने हँसकर कहा भाई मैं कोई अप्सरा तो हूँ नहीं जो पंखों से उड़ती दिल्ली आ गई। उसको और भी ग़ुस्सा चढ़ गया। जाइये यहाँ से। हमारा वक़्त मत ख़राब कीजिये। आपके भारत आने का प्रमाण नहीं है। फिर से बहू रानी ने हाथ जोड़े और उनको मनाया। मुझे अपने सहयात्री नईम और राशिदा की याद आई। मैंने कहा कि अगर वह दोनों इस लिस्ट में दर्ज हैं तो मैं भी इसमें आई हूँ। किस्मत किस क्षण साथ दे जाए पता नहीं होता। देवी माँ की कृपा से वह दोनों मिल गए। मेरी सीट 1 बी थी, उनकी 1 सी और 1 डी। चलो निपटारा हुआ। जान बची तो लाखों पाए। वीसा हासिल करके हम दोनों उठे तो बहू ने टेबल के नीचे से हाथ आगे करके उनको पाँच सौ का नोट पकड़ाया। वह ढिठाई से हँसा और बोला लंदन जा रही हो लड्डू तो बनते ही थे हमारे।

ऑफ़िस से बाहर आकर मैंने बहू से पूछा कि काम तो बन ही गया था फिर यह रिश्वत क्यों। वह बोली- जी यह दस्तूर है। हम अगर पहले ही कहीं रुक कर मिठाई ले लेते और उसमें रखकर रुपये देते तो यह इतना तंग नहीं करता।

घर आकर अभी ज़रा लेटी ही थी कि लंदन से फ़ोन आ गया। कल ही जाकर नई टिकट बनवा लो। कुवैत एयरलाइन्स के ऑफ़िस से बनेगी। फिर बहू को बुलाया। अगले दिन हम बताये पते पर पहुँचे। उत्तर दिल्ली से दक्षिण दिल्ली का सफ़र। पहले बहू ने पहुँचने में समय लिया। फिर हम तीन पहिया वाली सवारी लेकर निकले। ट्राफिक अधिक होने से टैक्सी धीरे चलती है जबकि तिपहिया ऑटो रास्ता बनाता हुआ निकल लेता है। क़ानून गया तेल लेने। नई दिल्ली पार हो गई। मथुरा रोड पर आ गए। जाने किस नए बाज़ार में, शायद नेहरू प्लेस में, एक बिल्डिंग के तीसरे तल पर यह ऑफ़िस था। डेढ़ बजा था। प्यास से गला सूख रहा था। उतरकर एक एक पेप्सी की बोतल पी तो सीढ़ियाँ चढ़ने की हिम्मत आई। ऊपर दफ्तर खाली था। चपरासी ने बैठने के लिए कहा क्योंकि लंच टाइम चल रहा था। बारह से एक। पर अब तो दो बजने वाले थे। चपरासी ने हमारी इल्तिजा कबूल की और वह सम्बंधित अधिकारी को ढूँढ़ लाया। बहू ने ज़ोर देकर कहलवाया था कि हम नृ जात के यानी NRI लोग हैं। (भारतीयों के दृष्टिकोण से वैश्विक आरक्षण प्राप्त।)

सुधीर नामक एक युवक सॉरी-सॉरी कहता हुआ, दिल्लीवाली अंग्रेज़ी की टाँग तोड़ता हुआ हमारे सामने आ बैठा। मुझसे नज़र मिलाये बिना उसने एक नमस्ते हवा में उछाली। परन्तु उसकी दृष्टि मेरी बहूरानी पर जा अटकी। बहू कुँआरे लिबास में थी क्योंकि अभी उसका हिन्दू रीति से विवाह नहीं हुआ था। उसी को ढिठाई से निहारते हुए उसने मेरी समस्या सुनी। केवल एक नई टिकट बनानी थी जिसका सारा मसौदा उसके कंप्यूटर पर मौजूद था। पर वह अपनी वकालत में जुट गया। मेरी बहू से बातें करता रहा। उसने बताया कि उसकी भी शादी की बात चल रही है। हालाँकि अभी उसकी उम्र ही क्या है। सिर्फ पैंतीस साल। मगर अब माँ सबर नहीं कर सकतीं। उसे जल्द ही एक सुघढ़ सयानी लड़की की तलाश करनी होगी। अब तक तो वह पक्की नौकरी नहीं पा सका था। मगर अब और इंतज़ार वह नहीं करना चाहती। उससे अब घर नहीं सँभलता। फिर वह एकदम डायरेक्ट बात पर उतर आया। जब बात बहू के परिचय की आ पहुँची तो मैंने बीच में डंडी घुमाई और बताया कि वह मेरी बहू है। इसकी शादी हो चुकी है।

उसका चेहरा यह सुनकर गंभीर हो गया। बाहर के मुल्क में जाने की बात सुनी तो बोला, अरे साब क्या धरा है बाहर। हमारे देश में भी तो अब बीएमडब्लू मिलने लगी है। इम्पोर्ट खुल गया है। एक दिन मैं भी ले लूँगा। अब बहू ने भी सुनाया कि उसको इन सबका लालच नहीं

है। मैंने कहा देख भाई शादी करवानी है तो माँ के लिए मत करियो और न ही मोटर कार के लिए। जो तुझे इज़्ज़त दे उसे घर में दो कपड़ों से ले आईयो। चल अब मेरा टिकट निकाल। वह झेंपकर हँसा। कुछ खटर पटर की और अँगड़ाई तोड़ता हुआ बोला ऑन्टी अब तो ज़रा देर हो गई है। मुझको भी विकासपुरी जाना है। इसमें तो घंटा लग जाएगा। ऐसा कीजिए आप कल आ जाइए मैं टिकट बना कर रखूँगा। भले ही आप किसी को भेजकर मँगवा लीजियेगा। मुझे बेहद ग़ुस्सा चढ़ आया मगर बहू ने चिकोटी काटी। मैं चुप रही। बन्दा गिड़गिड़ा रहा था। उसने अंतिम बाण छोड़ा, असल में आपको भी निकल जाना चाहिए चार बजे के बाद आपको दूर की वापसी सवारी नहीं मिलेगी।

वही हुआ। नेहरू प्लेस से सिविल लाइन्स तक का रास्ता हमने तीन हिस्सों में पूरा किया। अगले दिन उसका फ़ोन आ गया कि वह छुट्टी पर है अत: हमें शनिवार को अपना टिकट बना हुआ मिलेगा। अब मैंने थोड़ा रौब दिखाया। अपनी उम्र और उच्च रक्तचाप का हवाला दिया। उसकी टालमटोल को निम्नस्तरीय व्यवहार बताया आदि। वह शर्मिंदा होकर बोला आंटी जी मैं ख़ुद आपको प्लेन में बैठा कर आऊँगा। आप मुझ पर यकीन कीजिये।

यकीन करने के अलावा और चारा भी क्या है। कह कर मैंने फ़ोन रख दिया।

अगले दिन शुक्रवार था। अपना सूटकेस मैं आधी रात को लगाती थी। अन्य किसी भी समय मैं एकांत नहीं पाती थी। जब मेरे पति वहाँ थे तो मुझे ऐसी कोई समस्या नहीं आती थी। अपने रिश्तेदारों में बैठकर वह गप्पें मारते थे और मैं शांति से अपनी पैकिंग कर लेती थी। अब मुझे लग रहा था कि जैसे पहरा लगा है। जैसे-तैसे शुक्रवार गुज़रा। शनिवार को मैं घर से आठ बजे चल पड़ी। ठीक दस बजे मैं वहाँ पहुँच गई। एक घंटे बाद करीब ग्यारह बजे सुधीर आ गया। दूर से उसकी रात की गतिविधि का भभका मेरी नाक में बसी अगरबत्ती की ख़ुश्बू को धो गया। मैंने चपरासी से खिड़की खोलने के लिए कहा। उसकी शायद उतरी नहीं थी वह चपरासी पर गुर्राया। मेरी इज़्ज़त का ख़याल किये बगैर उसने दो चार अपशब्दों से उसको नवाज़ा। अपने निरंकुश, शाही / आलसी अंदाज़ में उसने कोई फाइल लाने को कहा। फिर वह टिकट बनाने बैठा। कोई कागज़ ठिकाने नहीं रखा गया था। कंप्यूटर डाउन था। वह मुझसे पूछ पूछकर फॉर्म आदि भरने लगा। किस्मत से मैं तैयार होकर गई थी। बारह बजे उसने कहा कि इस पर मैनेजर के साइन करवाने के लिए ले जाओ। चपरासी बोला जी कोई बैठा है उनके पास। शनिवार को जल्दी छुट्टी हो जाती है। अब सुधीर कुछ जगा। बोला कि उसको ख़ुद जाना पड़ेगा वरना आज भी यह काम नहीं हो पाएगा। मैंने दयनीय होकर कहा कि उसके ऑफ़िस के चक्करों में मैं पूरे पाँच सौ रुपये खर्च चुकी हूँ और अब बचे-खुचे रुपये मुझे पाई-पाई के हिसाब से खर्चने होंगे लंदन वापिस पहुँचने तक।

वह झटके से उठा और फाइल लेकर शायद दूसरे कमरे में चला गया। दस पंद्रह मिनट बाद मेरा टिकट आदि बनवाकर ही लौटा। मैनेजर भी साथ आया। उसने मुझसे माफ़ी माँगी और पेप्सी मंगवाई। "सब सलाम लंदन को!"

मैंने धन्यवाद कहा। राहत की साँस ली। उठने लगी तो सुधीर बोला- मैं चलता हूँ आपके संग नीचे तक। रास्ते में उसने बताया कि उसकी सगाई पक्की हो गई है। इसीलिए वह करनाल गया था। फिर बोला- आंटी जी मैंने आपकी सलाह मानकर अपनी उसको कह दिया सामने-सामने कि मैं न माँ के लिए शादी कर रहा हूँ न ही मुझे कोई कार आदि चाहिए। अगर वह सच्चे दिल से मुझे इज़्ज़त दे सकती है तो ही हाँ करे वरना नहीं। आंटी जी वह तो ख़ुशी से रो पड़ी और झट 'हाँ' हो गई।

मैंने कहा तो अब तुम भी इज़्ज़त के नीचे कोई काम मत करना। और हाँ याद रखना स्पीड इज़ मनी इन वर्क लाइफ। इतना कहकर मैंने उसको पाँच सौ का नोट पकड़ा दिया। वह न नुकुर करने लगा मगर मैंने कहा- यह मेरा आशीर्वाद है। आख़िर तो दस्तूर है न।

000

लघुकथा

अंजाम

मनमोहन चौरे

बहुत भीड़ थी उसके घर के सामने। अपने सात साल के बेटे की लाश के सामने बैठी रमिया का रो-रो कर बुरा हाल था। बाहर मंत्री जी अपने समर्थकों से घिरे थे। बस्ती के लोगों को समझाने की कोशिश कर रहे थे। तो कुछ आपदा में अवसर तलाशते हुए मंत्री जी से अपने काम की गुहार लगा रहे थे।

दूसरी ओर दरोगा रमिया के पति को धमका रहा था। ख़बरदार! यदि किसी से कहा कि बच्चा भूख से मरा है तो अंजाम बहुत बुरा होगा।

रमिया का पति बेटे की लाश की तरफ देखते हुए सोच रहा था इससे बुरा और क्या होगा।

000

मनमोहन चौरे
एस. 21, मंदाकिनी कालोनी, कोलार रोड, भोपाल 462042
मोबाइल- 9893361341
ईमेल- mc406457@gmail.com

ग़ज़ल

ग़ज़लें

अशोक 'अंजुम'

संपादक- अभिनव प्रयास, स्ट्रीट-2 , चन्द्र विहार कॉलोनी, नगला डालचंद, क्वार्सी बायपास , अलीगढ- 202002
मोबाइल- 9258779744
ईमेल- ashokanjumaligarh@gmail.com

फूल ख़ुशबू बहार बस बस बस
अब तेरा इंतज़ार बस बस बस
कुछ तो मुझ में बचा रहे मेरा
छोड़ दे अब तो यार बस बस बस
अब ये नज़रों के तीर रहने दे
हम न होंगे शिकार बस बस बस
ज़िन्दगी तुझसे क्या करें शिकवा
तेरे नखरे हज़ार बस बस बस
वो ही तनहाइयाँ वो बेचैनी
इश्क़ तेरा ख़ुमार बस बस बस
तेरे वादों से आ गए आजिज
क्यों लूटें बार-बार बस बस बस

000

मंच पर मुस्कान थी पर अश्क थे नेपथ्य में
क्या बताएँ ज़िन्दगी क्या-क्या सहे नेपथ्य में
तुमने मेरा हाथ क्या था ना कयामत आ गई
कुछ जले प्रत्यक्ष में तो कुछ जले नेपथ्य में
आँख तक हमने कभी इक बूँद भी आने न दी
ज़िन्दगी भर यूँ बहुत दरिया बहे नेपथ्य में
देख कर खुश हो गए तुम कुछ कलाकारों का फ़न
पारखी है कौन जाकर दाद दे नेपथ्य में
आपने उनसे मेरी नज़दीकियाँ तो देख लीं
पर कभी देखे नहीं थे फ़ासले नेपथ्य में
कर सको तो अब उन्हें मेरे हवाले कर ही दो
उम्र-भर जो मेरी ख़ातिर ख़त लिखे नेपथ्य में

000

मुझ पे तेरी नज़र मखमली मखमली
डाले कैसा असर मखमली मखमली
साथ तेरा मिला इस क़दर हम सफ़र
मेरी शामो-सहर मखमली मखमली
शाम का एक मंज़र था यूँ खुशनुमा
मैं रहा रात-भर मखमली मखमली
देह जैसे अजंता की मूरत हुई
उस पे तेरे अधर मखमली मखमली
तेरे होने से महके है सारी फ़ज़ा
हैं मेरे बामो-दर मखमली मखमली
इश्क़ का ही करिश्मा है जाने जहाँ
मैं इधर, तुम उधर मखमली मखमली
फुर हुए सारे ग़म, खिल उठे सच में हम
उसपे आते हुनर मखमली मखमली

000

हर इक शय में नफ़ासत बोलती है
शरीफों की शराफ़त बोलती है
तेरा माहौल तुझमें बोलता है
नहीं तू ये हक़ीक़त बोलती है
जिसे छू दो वही हो जाय सोना
कभी ऐसे भी क़िस्मत बोलती है
भले कितना भी तू कर होश्यारी
धुआँ उठता है आदत बोलती है
जो अरसे बाद उनको याद आए
समझिएगा सियासत बोलती है
उठा लेती है हाथों-हाथ दुनिया
बुलन्दी से यूँ शुहरत बोलती है
नज़र नीची न कर अंजुम ज़रा भी
कभी सबकी ज़रूरत बोलती है

000

तेरा-मेरा रिश्ता क्या
तूने अब तक सोचा क्या
काग़ज़ भीगा अश्कों से
इससे ज्यादा लिखता क्या
हर मौसम में देखा है
जग में तुमसे अच्छा क्या
मैंने तुझको चाहा है
चाहूँ ऐसा-वैसा क्या
सब रिश्ते वीरान हुए
साथ किसी ने छोड़ा क्या
आँखें भीगी-भीगी हैं
कोई सपना टूटा क्या
वाकिफ़ हूँ मैं सीरत से
अब सूरत पे पर्दा क्या

000

जब देखो तब आनाकानी, हय रब्बा!
बरसे कंबल, भीगे पानी, हय रब्बा!
इक दूजे की आस्तीन में रहते हैं
फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी, हय रब्बा!
रातों को गिद्धों के सपने आते हैं
जबसे बिटिया हुई सयानी, हय रब्बा!
लोकतंत्र में लोक किनारे लगा दिया
तंत्र सदा करता मनमानी, हय रब्बा!
फिर कचरे में कहीं कोई नवजात मिला
ख़त्म हुई फिर प्रेम-कहानी, हय रब्बा!
हर इक घर में ईद मने, खुशियाँ आएँ
बकरों ने दे दी कुर्बानी, हय रब्बा!
बाबर, खिलजी बारूदों के खेल रचें
मारे जाय चचा रमज़ानी, हाय रब्बा!

000

कविता

सुमन केशरी की कविताएँ

अगर मैं खुद को धरती का एक टुकड़ा मान लूँ

अगर मैं ख़ुद को धरती का एक टुकड़ा
मान लूँ
तो कितने प्रहार झेलने की क्षमता होगी
मुझमें?
कोई कितनी बार खेती के लिए मुझे खोदेगा
कितने बीज उगेंगे मुझमें
क्या कभी जंगल उग सकता है मेरी देह
पर?
क्या उसमें बनैले जानवर घूमा करेंगे?
या फिर हिरणों के शावक चरा करेंगे
मुझ पर उगी दूब को?
यह भी तो हो सकता है
कि धरती का वह टुकड़ा
जो कि मैं हौऊँ
चट्टानों से भरा हो
उसमें पेड़ तो क्या
घास की भी गुंजाइश न हो
और दिन भर तपता रहता हो

यह भी तो हो सकता है
कि उसी हिस्से पर
जो कि मैं हूँ
कोई नदी, तालाब या कोई झरना हो
या वह सागर तले की ज़मीन हो
जिस पर
समुद्री मछलियाँ कुछ देर थम कर बैठती हों
रेत में छिपकर

पर यह सोच कर ही रोमांच हो रहा है
कि मैं एक ज़मीन का टुकड़ा हूँ
अज्ञात
जाने किस द्वीप में
पृथ्वी के किस कोने में

मैं ख़ुद को छूती हूँ
तो मिट्टी-सी झड़ने लगती है
इस देह से
इन दिनों!

000

मैं और मेरी सीता

जटायु की तरह गिर गई हूँ
ऊँचे आकाश से पथरीली ज़मीन पर
पर काट दिए गए हैं मेरे

सीता को अपने पंजों में जकड़ लिया है मैंने
वह मेरी रोएँदार देह से चिपकी रो रही है
दो मज़बूत हाथ बढ़ रहे हैं उसकी ओर
मेरे पंख नहीं हैं, घायल मैं भूमि पर पड़ी हूँ
लहू बहाती
छिन-छिन जीवन खोती

कौन है यह सीता?
इक्कीसवीं सदी में जटायु नर से मादा कैसे
हो गया?
यह सपना नहीं है
मैं जाग रही हूँ
हाँ सीने में कुछ दर्द-सा रहता है इन दिनों
और जब साँस पहुँचती है कलेजे तक तब
राहत के साथ
विश्वास होता है कि जीवित हूँ मैं
तभी उसी पल जब मैं साँस की जद्दोजहद
से जूझ रही थी कि
परकटी जटायु बन नीचे आ गिरी
पंजों से सीता को सँभालते

एक कविता फूट रही है मन में
एक बह रही है आँसुओं के संग
एक वीणा-सी झंकृत-अझंकृत होती है साँस
की तारों के साथ
कलेजे में हूक-सी उठती है
बढ़ते हाथों से बचाना है सीता को
नुकीले चोंच तो है
साँस में अभी तक वीणा की झंकार बाकी है
यह देखो उठा लिए हैं कुछ पत्थर सीता ने
हाथों में
निशाना साध रही है वह
एक नई कविता उभर रही है मन में
एक गहरी साँस लूँ तो वाणी फूटे!

000

मैं बचा लेना चाहती हूँ

मैं बचा लेना चाहती हूँ
ज़मीन का एक टुकड़ा
ख़ालिस मिट्टी और
नीचे दबी धरोहरों के साथ
उसमें शायद बची रह जाएगी
बारिश की बूँदों की नमी
धूप की गरमाहट
कुछ चाँदनी

उसमें शायद बची रह जाएगी
चींटियों की बाँबी
चिड़िया की चोंच से गिरा कोई दाना
बाँस का एक झुरमुट
जिससे बाँसुरी की आवाज़ गूँजती होगी...

000

कल

मैंने तथागत से पूछा
क्या तुमने कल को देखा है?
एक हल्की स्मित कौंधी
मैंने तो बस कल ही को देखा है!

000

सुमन केशरी
बी -5 / ए
कैलाश कॉलोनी, नई दिल्ली 110048
मोबाइल- 9810490401
ईमेल- sumankeshari@gmail.com

अरुण सातले की कविताएँ

1

यादों का क्या
वह तो हर वक्त
सफ़र में रहती हैं
न जाने कब
किस मोड़ पर
भटक जाए
और रह जाए हम
अकेले।
000

2

मेरे साथ की यादों को
तुम, थामें रखना
देखना कुछ
यादें मेरी
मेरे ही पाले में
लौटकर वापस न आ जाए।
000

3

अक्सर हम
उम्र के उत्तरार्ध में
स्मृतियों के सहारे ही तो
जीते हैं
स्मृतियाँ हमें
थपकियाँ देकर सुलाती है
जागते ही, लाठी बन
चलते रहने का
इशारा करती है
और हम चलते रहते हैं
स्मृतियों के सहारे ही।
000

4

स्मृतियाँ न होती तो
हम नहीं लिख पाते
कोई गीत, कविता या
कोई कहानी भी
ना ही कह पाते
कल की बात
किसी से आज
दरअसल स्मृतियाँ ही
सँवारती है
हमारे आज को।
000

5

स्मृतियों के बिम्ब
घुमड़ते रहते हैं
हमारे मानस पटल पर
नि:शब्द
शब्द मिलते ही वे
बतियाने लगती हैं
उन बादलों की तरह
जो आकाश में घुमड़ते हुए
यक ब यक
बरसने लगते हैं।
000

गाथा

सबके पास अपने किस्से हैं
किस्सों को साबित करने के
अपने अपने तर्क हैं
सब अपने किस्सों को
सच मानते हैं

एक दिन
आदमी द्वारा गढ़े गए किस्से
किसी किताब की शक़्ल में
तब्दील होकर
दुकानों पर बिकने लगते हैं

किस्सों की तरफ़दारी में
सियासती ठेकेदारों की
अपनी अपनी दुकानें
सजने लगी
इस बाज़ार समय में
हर दुकानदार ख़ुद को
असल किताब बेचने का हक़
अपने को ही मानने लगा

प्रतिस्पर्धा के इस दौर में
किताबी किस्सों के सच से
किसी को कोई मतलब नहीं
हर दुकानदार को
अपने मुनाफ़े के लिए चाहिए भीड़

भीड़ तंत्र के विकास की गाथा
चली आ रही है सदियों से
जो अब भी जारी है।
000

नियंत्रण

चाहे चकमक की
रगड़ से हो वह
चाहे तीली हो माचिस की
वह आग ही है
जिसने हमें सिखाया
जीने का अर्थ

आग जब तक
रही, बंद मुट्ठी में
सब कुछ चलता रहा
मुट्ठी खुली
खाक हो गया
सब कुछ
000

अरुण सातले
ए-13, एल.आई.जी. कॉलोनी
रामेश्वर रोड, खण्डवा 450001
मोबाइल- 9425495481

सुशील स्वतंत्र की कविताएँ

दायरे में युद्ध

तय चालों के बलबूते
चौसठ खानों के रणक्षेत्र में
दी जाती थी शै और मात
राजा करते थे दायरे में युद्ध
इसीलिए मटियामेट हो गया राजतंत्र

तय दायरों में होती थी
जीत या शिकस्त
सिपाही से मंत्री तक
सबकी हदें तय होती थीं
और यह सच छिपाया जाता था
कि जिसकी रक्षा के लिए
जान की बाज़ी लगाई जा रही है
प्यादों की रक्षापंक्ति के पीछे खड़ा
वह राजा स्वयं एक मोहरा है

वज़ीर, हाथी, बिशप, घोड़ा
अपनी-अपनी चालों के क़ैदी होते
एक कदम आगे की चाल वाला प्यादा
आत्मरक्षा के अधिकार से वंचित होता
काले-सफ़ेद राजाओं को
अपने पराक्रम से लड़ने का भ्रम होता
हर बार विजयी वही होता
जो बिसात बिछाता

अपनी चालों की परिधि को
एक बार भी लाँघने का
मोहरों को ख़याल नहीं आया
शतरंज के इतिहास में इसीलिए
कभी इन्कलाब नहीं आया।

000

ये बैसाख है

सालों से जानता हूँ
वह आता है
मैदानों, पहाड़ों, जंगलों में
डाल से बिछड़े हुए पत्तों की
कालीन बिछाता है
यादों के टिकोलों में
वह भरता है रस

दरकता है मन का दरख़्त
झड़ते हैं अटके हुए लम्हे
पीले पत्तों की कालीन में
स्मृति का एक हरा पत्ता चमकता है

देहरी पर पैरों के निशान छोड़
अभी-अभी गया है चैत
पतझड़ है, उजाड़ है
खाली-खाली जग
भरा-भरा मन है
पेड़ से बिछड़ा एक पत्ता
निर्बाध सरसराता है
धूल से पटे मन के आँगन में
एक चेहरा उभर आता है
अधम हवा थमती नहीं है
अब वह महुए की डाल
तक नहीं जाती है
चुन लिया गया है महुआ
झड़ गए हैं पलाश
मुनगा के फूल
सहजन की फलियों में
तब्दील हो गए हैं
धम्म से गिरने वाला है कटहल

कानों में मिश्री और
मन में नश्तर सी उतरती है
कोयल की कूक

एक चटकन सुनता हूँ मैं
फूट पड़ा है सेमल का फल
और रूई के फाहे सा दिशाहीन
उड़ने लगा है मन

सालों से जानता हूँ
ख़ूब पहचानता हूँ
गुलमोहर की गोद
भरने वाला
ये बैसाख है।

000

हल्का लाठी चार्ज

पीठ पर दर्ज़
लाल-लाल लकीरें
मिटने से पहले
उस समय का
दस्तावेज़ लिख देती हैं
जब प्रतिरोध के लिए
सिकुड़ती जगहों में
मुट्ठी बंद किये ज़िंदा लोग
सड़क पर उतरते थे

वायरलेस पर प्रसारित
'स्थिति नियंत्रण में है' वाला संदेश
दमन और शांति
की दो स्थितियों के बीच की
संकरी गली का पता होता है
सीलन और अँधेरे में जहाँ
साँस लेता है वह भ्रूण
जिसकी पीठ
नर्म चमड़ी की चादर नहीं होती
शिलापट्ट होती है
जिस पर उकेरा जाता है
उसके समय का इतिहास।

000

सुशील स्वतंत्र
गीता सदन, अपूर्वा हॉस्पिटल के पीछे
ध्रुव नगर, राँची रोड,पोस्ट - मरार
जिला - रामगढ़, झारखंड
पिन - 829117
मोबाइल- 9811188949
ईमेल- sushilswatantra@gmail.com

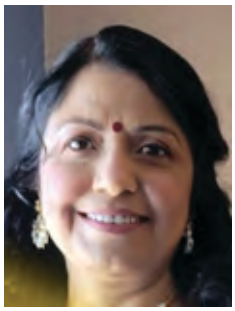

डॉ. शैलजा सक्सेना की कविताएँ

तुम कैसी हो?

अपनी ही परेशानियों के चीथड़ों में
लिपटे लोग
मिलते हैं एक-दूसरे से,
अपने लिथड़ते दुखों में सिमट कर
पूछते हैं जब मेरा हाल,
मैं अटपटा जाती हूँ...
"वे क्या वाकई जानना चाहते हैं मेरा
हाल..?
सचमुच क्या उनकी आँख
में मेरे लिए कुछ झलकता है?
या ख़ुश होना चाहते हैं जानकर
कि मैं उनसे अधिक धँसी हूँ अपने ज़ख्मों
में?
या तरस खाकर संतुष्ट होना चाहते हैं
कि उनके चीथड़े बेहतर हैं मेरे चीथड़ों से?
या केवल शिष्टाचार?
या अपने दुखों से टपकते दर्द को
बातों के कटोरों में भरने का एक
उपक्रम..?
या..एक जानकारी भर लेने का कौतूहल,
जिसे उछाला जा सकता है
दूसरों की बातों के खाली कटोरों में... ?
या वक्त काटने को
बैठेंगे जब
तब काटने को कोई और भी होगा... !!
मैं अटपटा जाती हूँ..
जब कोई
पूछता है, "कैसी हो?"
अपने सारे चीथड़े और लिथड़ते दुखों को
अपनी नज़र से भी छुपाते हुये
कहती हूँ...
"मैं ठीक हूँ"!!

000

क्या बनना चाहती हो मुनिया?

लोग पूछते हैं
कि क्या होना चाहती है बड़े होकर
तो कहती है मुनिया
"माँ!"
"माँ होना" कोई लक्ष्य नहीं"
कहते हैं लोग
समझाने से भी नहीं समझती।
माँ,
सालों से गीली चुन्नी
झटकार कर एकाएक डाल देती है सुखाने
तार पर!
मुनिया के बाल सँवारती है प्यार से
ज्ञान का तेल ख़ूब ठोंकती है सिर में
और गूँथ देती है ढ़ेरों सीखें बालों में
फिर बाँध देती है उन्हें प्यार और क्षमा के
रिबनों से!
'होम-मैनेजमेंट" के अनेक गुण
मुनिया के कपड़ों पर काढ़ देती है माँ!
रसोई की "इन्वेंटोरी" करते हुए
सिखाती है
"कॉस्ट इफैक्टिव" होने के गुर!
"इन्वैस्टमेंट रिसर्च" के सारे पन्ने खोल देती
है माँ उसके आगे
और
बताती है "रिलेशन्स मैनेजमेंट" में
आत्मीयता, मुस्कुराहट, धैर्य, और "प्राब्लम
सौल्विंग"
की सारी "सॉफ्ट-स्किल्स"।
एक-एक कर सिखाती है अच्छे "कुक"
होने की विधा,
उसके "पीपल मैनेजमेंट" से ख़ुश हैं घर के
नौकर-चाकर!
माँ,
धीरे-धीरे
बस्ते में किताबों के साथ-साथ रखती जाती
है
अपने को हिज्जे-हिज्जे!
बहुत दिनों बाद,
दफ्तर जाते हुए सोचती है मुनिया,
वाकई,
पिता बनने से कहीं अधिक कठिन है,
माँ बनना।

000

स्त्री कविता क्या है?

एक स्त्री पूछती है..
एक स्त्री हँस पड़ती है खुली सी हँसी!
आँसुओं से गीली कविता पढ़ने का समय
नहीं है

इस स्त्री के पास!
अपनी दादी-नानियों से लेकर अपने
सारे आँसू दे चुकी है वो समुद्र को..
साफ़ नीले आसमान सी हो गई हैं
उसकी आँखें..!
बादलों को बंद कर के रख दिया है
अपनी अलमारी के आख़िरी दराज में
उसने बहुत पहले!
अपने जूतों की खट-खट से
गुँजाती चलती है ऑफ़िस के कॉरीडोर
मीटिंग पर मीटिंग..
नई योजनाएँ उसके दिमाग़ से निकल कर
फैल गई हैं काग़ज़ों पर।
आदमियों के सर सहमति में हिलते हैं
स्टेशन पर बिकती
मिट्टी की गुड़िया से।
आदेश में गूँजती है उसकी आवाज़
और बंद होने से पहले
पूरे हो जाते हैं काम।
मेहनत और पसीने के बीच बनाती है अपने
इंद्रधनुष
और ख़ूब हँसती है!
वह अपनी मस्ती की
स्त्री-कविता में लिखती है..
'मस्ती भी छूत सी होती है
जिसे होती है
उसे बाक़ी कुछ छूता ही नहीं"!!

000

शैलजा सक्सेना
मोबाइल- 905-580-7341

सुनील गज्जाणी की कविताएँ

मृत्यु

1

पीढ़ी दर पीढ़ी
सौंपती अपनी विरासत
निसंकोच
सृष्टि के जन्म से
विराम तक
अनथक, अनंत
तुम
अपने जन्म से ही
शाश्वत हो,
नश्वर हो मृत्यु !
000

2

-मृत्यु तुम
स्वयं का वरण कब करोगी
पता है तुम्हें ?
शायद नहीं होगा
संभवत: तब
जब कोई जन्म ही
नहीं होगा
तब तुम्हारा
औचित्य कैसा !
000

3

कितनी चतुराई
कितनी ख़ामोशी लिए आती हो
और, दबे पाँव
जब तुम लौटती हो
अपना चाहा काम कर
तब,
भूचाल-सा ला देती हो
तुम मृत्यु !
000

4

तुम्हें जीना चाहता हूँ
अपनी ज़िंदगी की तरह
सुनो,मृत्यु !
पता है मुझे की मैं तुम्हें
जी नहीं सकता
मगर तुम तो जी ही सकती हो ना
मेरे नाम को
जो ज़िंदगी से मुझे मिला है !
000

5

मृत्यु, कितना लंबा
धैर्य रखती है
ज़िंदगी के प्रति
उसका सिर्फ एक क्षण
लेने की खातिर !
000

6

सुनो मृत्यु
तुम इतना उतावलापन
क्यूँ दिखाती हो
जीव हरण के प्रति
तुम्हें पता है ना
तुम में तो विलीन होना ही है
एक दिन जीवन को !
मृत्यु ! एक प्रश्न तुमसे
तुम हर क्षण
जीवन के संग-संग
क्यूँ चलती हो ?
अवसर तो दो उसे जीने का
जो नादान हो
स्वयंवर की भांति
तुम्हें जीतना चाहता है
मृत्यु ! तुम निराकार हो
दुर्लभ तो नहीं
परन्तु जीवन तो है ना !
000

एक लंबी बारिश

झूमता,
गाता,
नाचता,
वो बूढ़ा लोगो की परवाह किए बिना
जनता घूर घूर देखती उसे
पगला गया,
मति मारी गई
गली मोहल्ले वाले उसे
बे-परवाह मस्त अपनी ही धुन में
सड़कों पे भरे पानी में काग़ज़ की नाव
चलाता
भरे खंडों में उछल-कूद
अठखेलियाँ करता
मानों, बचपना ले आई उसका
एक लंबी बारिश
000

भिखारी

कचरे की ढेरी पे,
मानों सिंहासन पे हो बैठा,
जाने किस उधेड़-बुन में,
अपने गालों पे हाथ धरे,
कचरे में पड़े एक आइने में,
अक़्स देखता अपना,
निहारता अपने को,
एक भिखारी।
000

सुनील गज्जाणी
सुतारों की बाड़ी, गुवाड़, बीकानेर,
राजस्थान, 334001
मोबाइल - 9950215557
ईमेल- sgajjani@gmail.com

मुकेश पोपली की कविताएँ

रंग लीला

बहुत से रंग
आ रहे थे
जा रहे थे
उसके चेहरे पर
कभी एकदम नीला
ज्यों शिव बैठे ध्यान में
कभी एकदम काला
जैसे कृष्ण की छतरी बना नाग
कभी साँवला रंग
राम और कृष्ण के समकक्ष
कभी चमकता गेहुँआ
लहलहाता धान खेतों में
कभी सूरज सा तेज
लगता उसका चेहरा
कभी हरा पत्ता जैसे
डाल पे टहनी से लिपटा
तो कभी पतझड़ के
पीले टूटे पत्तों जैसा।
मुझे नहीं
दीख रहा था वो रंग
जिसको देखने के लिए
मैं गड़ाए हुए था
उसके चेहरे पर नज़रें
न वहाँ फैला और न ही
आँखों में छाया लाल रंग
जैसा कि नशे के बाद होता है
अचानक वह मसलने लगा
अपनी बंद आँखों को
मैं संदेह सच होने की आशा में
अपने भीतर ख़ुश होने लगा
लेकिन निर्मूल हुई वो सारी आशंका
जो की गई थी ज़ाहिर
अब वह बिलकुल ठीक था
न कोई नशा
न कोई झगड़ा किसी से
जाते-जाते बहुत देर तक रहा
उसका हाथ मेरे हाथ में।
कह गया था वह मुझसे
अब मुझे कोई फ़र्क नज़र नहीं आता
लाल और सफ़ेद रंग में
आज उसके सेठ ने बदल लिया था
अपना रंग अचानक यह कहकर
अब तुम आज़ाद हो मेरे यहाँ से
पैसों की बात उठी ही नहीं
बहुत देर तक विचरता रहा था वह
जैसे सफ़ेद बगुला पानी में
ढूँढ़ता रहता है अपना भोजन।
मैं पूर्व में बनाई अपनी
सारी उपमाओं को
बदल रहा हूँ सच जानने के बाद
पीला रंग जैसे
भूखे प्यासे बच्चों का
कुम्हलाया चेहरा
हरा जैसे साग का रंग कटोरी में
तेज़ चमकता सूरज जैसे
मेहनत वाले पसीने का
लगातार टपकते रहना
गेहुँआ रंग ज्यों रोटी

साँवला जैसे चूल्हे की ठंडी राख़
काला जैसे खाली तवा
एकदम नीला
जैसे मटके के पानी में
बादलों से उतरती कोई मृगतृष्णा
उसका वो फड़कती आँखों को मसलना
जैसे छा गया
और ठहरा रहा
कुछ देर तक
उस पर बेहोशी का रंग।

000

ख़ुशियों की अर्ज़ी

सुनो
तुम किसी बच्चे की आँखों से
टपकते हुए आँसू
पोंछ देना ज़रूर
मुस्कान लाना उसके चेहरे पर
वहीं छिपा बैठा है
तुम्हारा ईश्वर
और वही कुबूल करेगा
तुम्हारी वह अर्ज़ी
जिसमें तुमने माँगा है अमन
और ख़ुशियाँ
दुनिया भर के लिए।

000

सफ़र

इस दुनिया से
उस दुनिया तक का
सफ़र
शैशव की चंचलता
किशोर अल्हचड़ता
यौवन की मादकता
बुढ़ापे की आश्रता ही
सब कुछ नहीं है
गाना पड़ता है
क ख ग का गीत
पढ़नी पढ़ती हैं
जीवन की रेखाएँ
गिननी पड़ती हैं
पेट की आँतें
माथे की अनगिनत
लकीरों को भी
मिटाना पड़ता है।

000

मुकेश पोपाली
स्वरांग, ए-38-डी, करणी नगर,
पवनपुरी, बीकानेर-334003,
राजस्थान
मोबाइल- 7073888126
ईमेल- swarangan38@gmail.com

आप यह जो पूरे समय लेखक बने रहते हैं न, यह भी आपका एक प्रकार का ईगो ही है

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

आप लेखक हैं, साहित्यकार हैं, यह बहुत अच्छी बात है किन्तु यदि आप पूरे समय लेखक या साहित्यकार हैं, तब आपके लिए चिंता की बात है। आप पूरे समय लेखक ही बने रहते हैं, कभी भी सामान्य इंसान नहीं बनते, तब आपको एक बार सोचने की ज़रूरत है। असल में यह एक मनोरोग है जिसने आपको ग्रस्त कर लिया है। ईगो की परिभाषा को आपको एक बार फिर से समझना पड़ेगा। ईगो की परिभाषा कुछ इस प्रकार है- 'आपका अपने बारे में स्थापित वह झूठ, जिसके बारे में आप सोचते हैं कि सारी दुनिया इसे सच मान कर चले।' असल में तो यह आपकी ही स्थापना है, यह बाक़ी दुनिया की स्थापना नहीं है, फिर कैसे आप सोचते हैं कि बाक़ी की दुनिया इसे सच मान लेगी। और जब दुनिया नहीं मानेगी तो आपको बुरा लगेगा, आपके अंदर नहीं मानने वाले के प्रति कटुता पैदा होगी। यही तो ईगो है। आप यह जो पूरे समय लेखक बने रहते हैं न, यह भी आपका एक प्रकार का ईगो ही है। यह ईगो ही आपको आम इंसान नहीं बनने देता। आप दर्प से दपदपाता हुआ मस्तक, कई किताबों लिख दिए जाने के भावों से तने हुए कंधे और सब जानने का गर्व अपनी भवों में भर कर उनको कमान की तरह तान कर घूमते हैं। यक़ीन मानिए आप बहुत हास्यास्पद लगते हैं। आपको एक रहस्य जानने की आवश्यकता है, रहस्य यह कि आपको कोई नहीं जानता है। यह प्रेमचंद, निराला, महादेवी वर्मा वाला समय नहीं है, जब लोग ख़ूब पढ़ते थे और लेखक को देखते ही उसे पहचान लेते थे। उससे मिलने को दौड़ते थे। अब चूँकि कोई नहीं पढ़ रहा, तो आप इस बात को अपने मन से तुरंत निकाल दीजिए कि आपको सब जानते हैं। आप अपने ही शहर में निकल जाइए, आपको कोई नहीं पहचानेगा। हाँ यदि आप अपने शहर के लोगों के बीच लेखक की बजाय इंसान बन कर रहे हैं, तो उस इंसान को सब पहचान लेंगे। यह बात हुई अपने शहर की, दूसरे शहर की तो बात ही छोड़ दीजिए। वहाँ तो आप पूरा दिन भी घूमते रहेंगे तब भी आपको कोई पहचानने वाला नहीं मिलेगा। असल में कोई भी हमेशा अपनी कला को ओढ़ कर नहीं घूम सकता। गायक हमेशा गीत गाते हुए नहीं घूमता, संगीतकार अपने गले में वाद्ययंत्र लटका कर नहीं घूमता, मगर लेखक हमेशा अपने लिख दिए गए का बोझ अपने सिर पर ले कर घूमता है। कभी उसे उतार कर एक तरफ़ नहीं रखता। कभी भी इंसान बनने की कोशिश नहीं करता। इससे भी आगे का एक मनोरोग होता है, जिसमें लेखक को यह लगता है कि उसके लिख देने से ही दुनिया में बदलाव आ रहा है। वह जिन सरोकारों पर लिखता है, उनको लेकर क्रांति बस आने को ही है। यह पिछले वाले मनोरोग से और ज़्यादा ख़तरनाक रोग है। 'लिख दूँगा, बदल डालूँगा' की धमकी को हमेशा अपनी ज़ुबान पर लिए यह लेखक तने हुए रोष भरे चेहरे के साथ ही हमेशा दिखाई देता है। कभी मुस्कराहट की एक लकीर भी इसके चेहरे पर दिखाई नहीं देती है। बातों में शुष्की होती है, रुखाई से बात करना एक आदत बन जाती है। यदि आपको भी यही ग़लतफ़हमी है कि यह दुनिया आपके ही लिखने से बदल रही है, सुधर रही है, तो जितनी जल्दी हो सके इससे छुटकारा पाइए। अव्वल तो आपका लिखा हुआ पढ़ा ही नहीं जा रहा है। चलो मान लिया कि कहीं कोई आपका लिखा पढ़ भी रहा है तो यह जान लीजिए कि केवल पढ़ा ही जा रहा है, उससे कोई क्रांति नहीं आ रही है कि रातों-रात किसी का हृदय परिवर्तन हो रहा है। यह कि आपने रिश्वत पर कोई कहानी लिखी, उसे किसी भ्रष्ट अधिकारी ने पढ़ा और उसकी आँखों में पश्चाताप के आँसू आ गए और उसने क़सम खायी कि अब आगे से वह इस बुरी आदत को छोड़ देगा। 'हृदय परिवर्तन' कहानियों में आने वाला शब्द है, जो कहानियों के अलावा और कहीं नहीं मिलता। तो कहने का मतलब यह है कि आपको लिखने का शौक़ है, लिखिए, ख़ूब लिखिए, मगर अपने आपको हर समय लेखक बनाए रखने से बचाइए। और अपने को विश्वास दिला दीजिए कि दुनिया अपने आप ही बदल रही है, आपके लिखने का उसमें कोई योगदान नहीं है...। **सादर आपका ही**

पंकज सुबीर

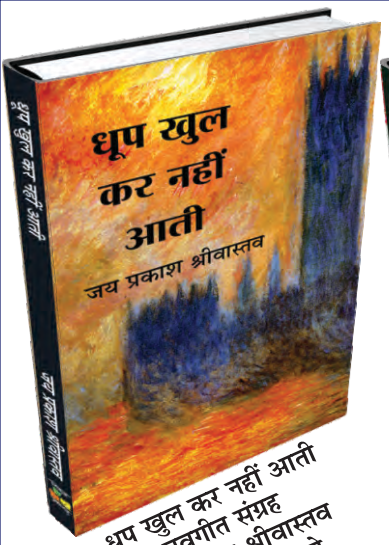

धूप खुल कर नहीं आती
नवगीत संग्रह
जय प्रकाश श्रीवास्तव
मूल्य : 200 रुपये

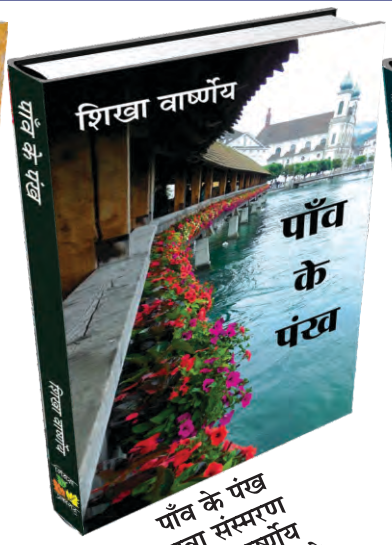

पाँव के पंख
यात्रा संस्मरण
शिखा वार्ष्णेय
मूल्य : 175 रुपये

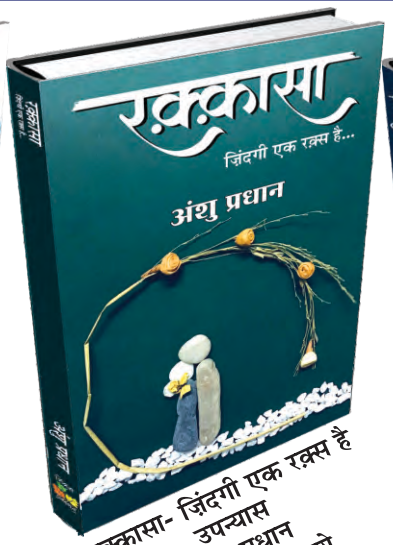

रक़्क़ासा- ज़िंदगी एक रक़्स है
उपन्यास
अंशु प्रधान
मूल्य : 250 रुपये

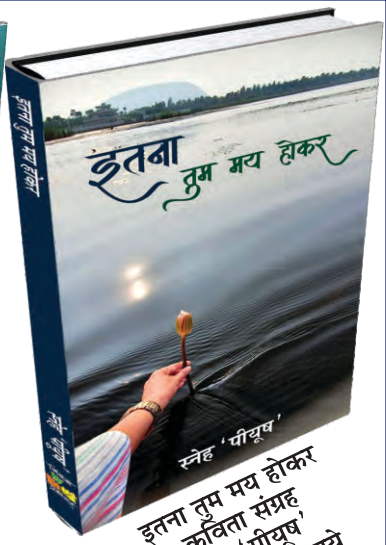

इतना तुम मय होकर
कविता संग्रह
स्नेह 'पीयूष'
मूल्य : 300 रुपये

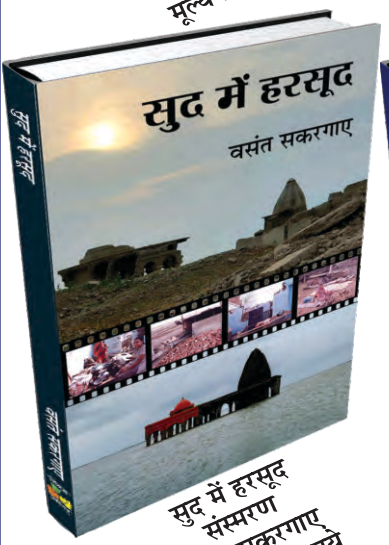

सुद में हरसूद
संस्मरण
वसंत सकरगाए
मूल्य : 200 रुपये

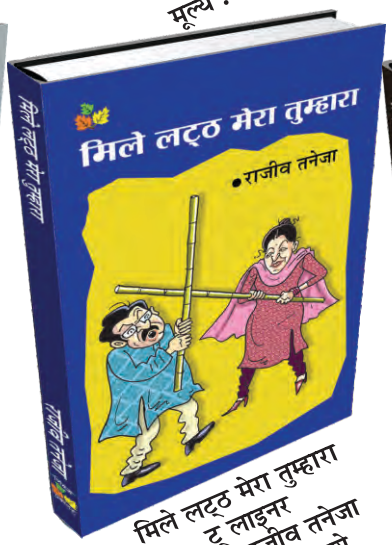

मिले लट्ठ मेरा तुम्हारा
ट्रू लाइनर
संपादन- राजीव तनेजा
मूल्य : 150 रुपये

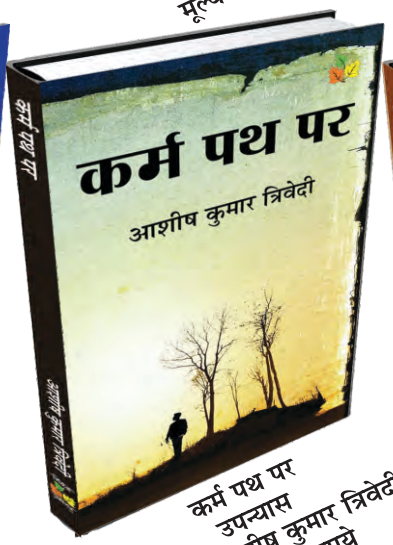

कर्म पथ पर
उपन्यास
संपादन- आशीष कुमार त्रिवेदी
मूल्य : 350 रुपये

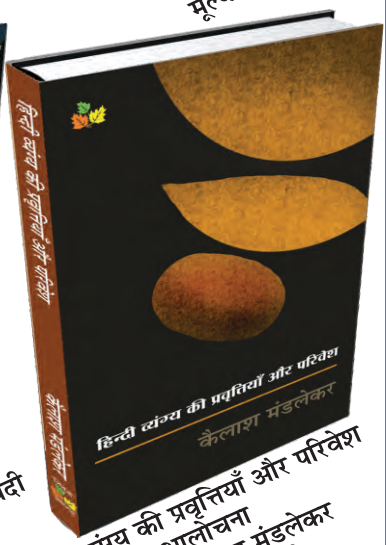

हिन्दी व्यंग्य की प्रवृत्तियाँ और परिवेश
आलोचना
संपादन- कैलाश मंडलेकर
मूल्य : 350 रुपये

हडसन तट का जोड़ा
उपन्यास
प्रबोध कुमार गोविल
मूल्य : 200 रुपये

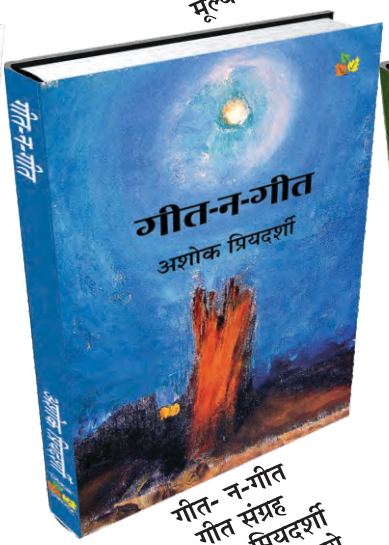

गीत- न-गीत
गीत संग्रह
अशोक प्रियदर्शी
मूल्य : 200 रुपये

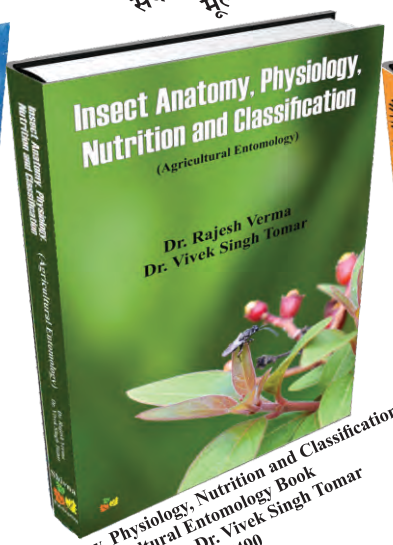

Insect Anatomy, Physiology, Nutrition and Classification
Agricultural Entomology Book
Dr. Rajesh Verma, Dr. Vivek Singh Tomar
Price : ₹490

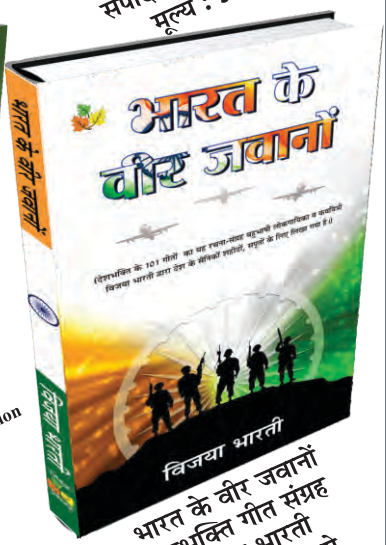

भारत के वीर जवानों
देशभक्ति गीत संग्रह
विजया भारती
मूल्य : 200 रुपये

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
amazon
http://www.amazon.in
flipkart.com
http://www.flipkart.com
Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

Vibhom Swar ● Quarterly ● July-September 2023 ● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

आष्टा में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2021-22 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह प्रवासी कवयित्री सुश्री रेखा भाटिया, पत्रकार आकाश माथुर, समाजसेवी श्रीमती ममता देवी तथा केन्द्र प्रभारी सुरेंद्र सिंह ठाकुर।

आष्टा में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2021-22 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह प्रवासी कवयित्री सुश्री रेखा भाटिया, पत्रकार आकाश माथुर, समाजसेवी श्रीमती ममता देवी तथा केन्द्र प्रभारी सुरेंद्र सिंह ठाकुर।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर प्रवासी कवयित्री रेखा भाटिया की पुस्तक 'मन की नदी से भीगे शब्द' का विमोचन करते ख्यात कवि श्री शशिकांत यादव, नगरपालिका अध्यक्ष श्री प्रिंस राठौर, डाइट प्राचार्य श्रीमती अनीता भालेराव।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर प्रवासी कवयित्री रेखा भाटिया की पुस्तक 'मन की नदी से भीगे शब्द' का विमोचन करते ख्यात कवि श्री शशिकांत यादव, नगरपालिका अध्यक्ष श्री प्रिंस राठौर, डाइट प्राचार्य श्रीमती अनीता भालेराव।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।